CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

डॉ॰ विश्वनाथ प्रसाद वर्म

वैदिक राजनीति शास्त्र

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
पटना-३

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वैदिक राजनीतिशास्त्र

लेखक

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा

एम० ए० इतिहास (पटना), एम० ए० राजनीतिशास्त्र (कोलम्बिया, न्यूयार्क)
पी-एच० डी० राजनीतिशास्त्र (शिकागो)

विश्वविद्यालय प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना

और

निदेशक, लोक प्रशासन संस्थान, पटना विश्वविद्यालय
भूतपूर्व अध्यक्ष, अखिल भारतीय राजनीतिविज्ञान महासंघ

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
सम्मेलन भवन, कदमकुआँ, पटना-३

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

© बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1975

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ-निर्माण-योजना के अंतर्गत भारत सरकार के शिक्षा तथा समाज-कल्याण-मंत्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित।

प्रकाशित ग्रंथ-संख्या : 142

प्रथम संस्करण : अगस्त, 1975

2000

मूल्य : 13·50 (**तेरह रुपये, पचास पैसे**)

प्रकाशक :

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

कदमकुआँ, पटना-800003

मुद्रक
रामनरेश सिंह
वाल्मीकि प्रेस
पटना-४

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रस्तावना

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति संकल्प के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है और मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत सरकार विभिन्न राज्य सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केन्द्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिन्दीभाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अन्तर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ **वैदिक राजनीतिशास्त्र** डॉ० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा की मौलिक कृति है, जो भारत सरकार के शिक्षा तथा समाज-कल्याण-मंत्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-सम्बन्धी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

पटना,
१८।७।७५

अध्यक्ष,
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
तथा
शिक्षामंत्री, बिहार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रकाशकीय वक्तव्य

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा-लिखित यह पुस्तक **वैदिक राजनीतिशास्त्र** हिंदी क्या, किसी भी भारतीय भाषा के लिए गौरव सिद्ध हो सकती है। वेद ज्ञान-भण्डार के रूप में विश्रुत हैं, पर उन तक सामान्य जन की पहुँच अब तक नहीं के बराबर ही है। इस पुस्तक के माध्यम से वैदिक ज्ञान के कम-से-कम एक पक्ष को विद्वान् लेखक ने पाठकों के लिए सुलभ कर दिया है।

ऋग् एवं सामवेद की अपेक्षा राजनीति-विषयक सामग्री यजुः एवं अथर्व वेदों में अधिक उपलब्ध है। ऐसे भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' उच्चरित कर सामवेद के महत्त्व को स्वयं सिद्ध कर दिया है। परन्तु कृष्ण और शुक्ल यजुः तथा अथर्ववेद की 9 संहिताओं में राजनीति-सम्बन्धी जो विषय आए हैं वे वैदिक काल में राजनीति के प्रभाव पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। अथर्ववेद में इन्द्रादि की अभ्यर्थना में जो मन्त्र प्रयुक्त हुए हैं उनसे स्पष्ट होता है कि सैन्य-शक्ति एवं वैयक्तिक शौर्य को उस समय भी काफी महत्त्व प्राप्त था। इस संदर्भ में अथर्ववेद का यह मंत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

अच्छा न इन्द्र यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम॥

इस पुस्तक के माध्यम से हिंदी में एक बहुत बड़ी कमी की पूर्त्ति होगी, इसमें कोई संदेह नहीं। लेखक ने अपने अन्तिम परिशिष्ट के द्वारा प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के सिद्धान्तों तथा वैदिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर पुस्तक की उपादेयता में और वृद्धि कर दी है।

पुस्तक के प्रस्तुतीकरण में जिन लोगों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहायता उपलब्ध हुई है, अकादमी उनके प्रति कृतज्ञ है।

पटना, दिनांक
१७ अगस्त, १९७५

निदेशक,
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समर्पण

परम श्रद्धा से

स्व० वेणी प्रसाद (पितामहाग्रज)

स्व० गोरख प्रसाद (पितृव्य)

स्व० रामचंद्र प्रसाद (पितृव्य-पुत्र)

विश्वनाथ प्रसाद वर्मा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भूमिका

भारतीय धर्म और संस्कृति का मूल होने के कारण वैदिक संहिताओं का माहात्म्य एतद्देश और विदेश में भी रहा है और है। छपरा में जब मैं स्कूल की निचली कक्षाओं का छात्र था, तब अपने ज्येष्ठ चचेरे भ्राता श्री रामनारायण प्रसाद (अब स्वर्गीय) से वेदों का नाम सुना। उन्होंने मुझसे वेद देखने की इच्छा प्रकट की। उसके कुछ वर्षों के बाद गंगा पुस्तकमाला से प्रकाशित होनेवाली ऋग्वेद-संहिता (हिंदी अनुवादसहित) के ग्राहक, पूज्य पिताजी बने और उसके अंकों को हमलोग देखने लगे। मैट्रिक कक्षा में, पं० अयोध्या प्रसाद विरचित "जेम्स ऑफ वैदिक विजडम" पुस्तक गोपालगंज में देखने को मिली। आइ० ए० कक्षा का जब मैं छात्र था तब डॉ० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री ने मुझे स्वामी दयानंद विरचित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़ने की सलाह दी और मैंने यह ग्रंथ खरीदा। स्वामी अभेदानंद सरस्वती (तत्कालीन पं० वेदव्रत वानप्रस्थ) से इस ग्रंथ पर एक आध बार विचार हुआ। हमलोगों के तत्कालीन संस्कृत प्राध्यापक प्रो० हरिशंकर पांडेय से भी इस ग्रंथ के भाष्यकारकृत प्रार्थना-श्लोकों की (स्वा० दयानंद रचित) आलोचना सुनने का अवसर मिला। सन् १९४० से १९४६ तक आर्यसमाज के साहित्य और नेताओं तथा महोपदेशों से संपर्क बढ़ने पर, वेदाध्ययन की गहरी अभिलाषा उत्पन्न हुई। सन् १९४२ में "भारत छोड़ो" आंदोलन के समय ऐसी इच्छा हुई थी कि विश्वविद्यालय में इतिहास का अध्ययन कार्य छोड़कर वैदिक और संस्कृत साहित्य का ही गहन अनुशीलन करूँ। इसी अभिप्राय से पं० ब्रह्मानंद से सन् १९४२ में पूरी अष्टाध्यायी पढ़ गया। सन् १९४५ में, आरा जैन कॉलेज में प्राध्यापक-कार्य करते हुए, वाजसनेयी-संहिता मेरे दैनिक स्वाध्याय का ग्रंथ थी। एम० ए० इतिहास में मेरे विशेष अध्ययन का विषय था प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति। उस समय मैक्डोनल, कीथ, विंटरनीत्ज और ह्वीटने के ग्रंथों के अध्ययन का पूरा अवसर मिला। डॉ० सुविमल चंद्र सरकार हमलोगों को "वैदिक मिथौलोजी" ग्रंथ पढ़ाते थे। बौद्ध दर्शन पर शोध कार्य करने के समय (सन् १९४५-१९४७) भी वैदिक साहित्य के आलोचनात्मक अनुशीलन का अवसर मिला। डॉ० तारापद चौधरी से इस काल में वेदों पर विचारविमर्श होता रहा। सन् १९५५ में तिलक के वेदसंबंधी शोधग्रंथों के विस्तृत अध्ययन का अवसर आया। "ओरायन" और "आर्कटिक होम इन दी वेदाज" के संबंध में एक शोध प्रबंध भी मैंने लिखा जो पीछे "पटना विश्वविद्यालय जर्नल" में प्रकाशित हुआ। फरवरी-अप्रिल १९६४ में स्वामी दयानंद प्रणीत आर्याभिविनय ग्रंथ को अपने निवासस्थान पर साप्ताहिक वेदक्लास में, पटना विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को मैं पढ़ाता रहा। सन् १९६९ के अन्तिम भाग से अबतक वैदिक साहित्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के अध्ययन में लगा हूँ। कुछ शोधछात्र भी मेरे निर्देशन में वैदिक संहिताओं पर शोध कर रहे हैं। आज भी वेद मंत्रों के पाठ से बल और शांति की प्राप्ति होती है। अथर्ववेद में जिन उदात्त शब्दों में अभय का महत्त्वाभिज्ञापन है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

वैदिक राजनीतिक दर्शन की मूल स्थापनाएँ धार्मिक आख्यानों, याज्ञिक विधियों और कविताओं में प्रकट हुई हैं। आज पश्चिमी जगत में विहेभियरलिस्ट (व्यवहारवादी) तथा व्यवस्था-निरूपण समुदाय (सिस्टम्स ऐनिलिसिस) की ख्याति है। संचारात्मक क्रिया शास्त्र (सायबरनेटिक्स) का भी अनुशीलन किया जा रहा है। आज ऐसा स्थापना की जा रही है कि राजनीतिक सत्ता की मीमांसा व्यापक दृष्टि से होनी चाहिए। सत्ता को समझाने वाली और धर्म तथा राजनीति में पारस्परिक संबंधों को बताने वाली सर्वप्राचीन सामग्री वैदिक संहिताओं में मिलती है। तुलनात्मक गाथाशास्त्र का अनुशीलन राजनीतिक परिकल्पनाओं के उदय के बारे में बहुमूल्य निष्कर्ष हमें प्रदान करता है। वैदिक देवतावाद को एक प्रकार से सत्ता के दिव्यीकरण का प्रयास कह सकते हैं और इस दृष्टि से राजनीतिशास्त्र के शिक्षकों और विद्यार्थियों को इसकी जानकारी होनी चाहिए। इसी दृष्टि का अवलंबन कर वैदिक देवताओं के व्यक्त और अव्यक्त आशय को यहाँ स्पष्ट किया गया है। सत्तावाद, दंडवाद, बलवाद, युद्धविजयवाद आदि जिस विराट रूप में वेदों में उद्घोषित हुए हैं उनसे कालिक्लिस, जौजियास, थ्रैसिमाकस, मैकियावेली, हाब्स, हेगेल, बिस्मार्क, ट्रायट्शके आदि भी दुर्धर्ष सत्ताशाही के अनुमोदन में काव्यात्मक प्रेरणा की उपलब्धि कर सकते थे।

दूसरी ओर धर्मशास्त्रों और संस्कृत अर्थशास्त्रों में यह मंतव्य परिपुष्ट किया गया है कि राजसत्ता का औचित्य इसी में है कि प्रजा का सम्यक् पालन हो। पालन का संबंध व्यक्तिवादी राजनीतिक दर्शन से है। पश्चिमी व्यक्तिवादियों, उदाहरणार्थ, आदम स्मिथ, रिकार्डो, बेंथम, स्पेंसर, आदि ने भी यह आशय व्यक्त किया है कि राज्य का मुख्य कार्य आंतरिक और बाह्य सुरक्षा ही है। वैदिक संहिताओं में, उदात्त भाषा में, इंद्र, अग्नि आदि देवताओं से त्राण की कामना की गयी है। यही त्राण और पालन की भावना पीछे राजसत्ताधारियों पर आरोपित हुई और उनसे आशा की गयी कि वे जनता की रक्षा करें। इस प्रकार व्यक्तिवादी संरक्षणमूलक राजनीतिक दर्शन का मूल भी हमें वैदिक संहिताओं में मिलता है।

वैदिक राजनीतिशास्त्र का अब तक आंशिक विवेचन ही हुआ है। जीमर की प्रसिद्ध जर्मन पुस्तक "आल्ट इंडिशेश लेबेन" (१८७९) में इस विषय पर एक बृहत् अध्याय है। लुडविग के "ऋग्वेद के जर्मन अनुवाद और भाष्य" में भी एक अध्याय है। मैकडोनल और कीथ के "वेदिक इंडेक्स" में भी कुछ विवेचन है। वैदिक राजनीति के ऐतिहासिक आधार के लिये यह "इंडेक्स" अतीव महत्त्वपूर्ण है। पाश्चात्य शोधकार्यों का आधार ग्रहण करती हुई प्रफुल्लचंद्र वसु की पुस्तक "इंडो आर्यन पालिटी" ऋग्वेद की राजनीतिक संस्थाओं का

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संयक् संक्षिप्त विवेचन करती है। उपेन्द्रनाथ घोषाल की पुस्तक "हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पब्लिक लाइफ" (प्रथम खंड) संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों आदि में वर्णित राजनीतिक संस्थाओं का अच्छा विवेचन प्रस्तुत करती है। प्राचीन भारतीयशास्त्र के विद्वानों की पुस्तकों के आरंभिक अध्यायों में वैदिक विषयों का कुछ समीक्षण प्रस्तुत रहता है। किंतु यह मेरी पुस्तक वैदिक राजनीतिशास्त्र का सम्यक् विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करती है। वैदिक संहिताओं में वर्णित राजनीतिक संस्थाओं, और विशेषतः विचारों का इतना विशद विवेचन संभवतः संसार की किसी भाषा में नहीं है।

पाश्चात्य वेदज्ञों में सबसे क्रांतिकारी रुडोल्फ रोथ (Roth, १८२१-१८९५) था। उसके शोधकार्यों का संरक्षण विशाल संत पीटर्सबर्ग संस्कृत-जर्मन कोश (१८५२-१८७५) के सात वृहत् जिल्दों में है। यह ग्रंथ ओटोबौटलिंग्क (Otto Bohtlingk) और रोथ द्वारा संपादित है। इसमें लौकिक संस्कृत साहित्य का अर्थ बौटलिंग्क की कृति है और वैदिक शब्दार्थ रोथ की। राथ द्वारा प्रणीत वैदिक शब्दार्थप्रक्रिया का समर्थन हर्मान ग्रासमैन द्वारा किया गया। रोथ-ग्रासमैन प्रक्रिया का अनुमोदन मोनियर विलियम्स द्वारा किया गया। किंतु विलसन, मैक्समूलर, लुडविग और गेल्डनर की भाँति मोनियर विलियम्स भी सायण-पद्धति के प्रति सहानुभूतिशील है। ग्रिफिथ ने रोथ वाली भाषावैज्ञानिक पद्धति तथा सायण-पद्धति, दोनों का प्रयोग अपने वेदानुवाद में किया है। मेरे इस ग्रंथ में भी समन्वयकारिणी प्रक्रिया अपनायी गयी है। जहाँ-तहाँ दयानंद और अरविंद के शोधकार्य का भी इसमें उल्लेख है। रोथ के प्रभूत महत्त्व को स्वीकार कर उसके बृहत् कोश से वैदिक राजनीतिशास्त्र के कुछ प्रमुख मूलशब्दों का जर्मन अनुवाद यहाँ उद्धृत कर दिया गया है। उन जर्मन शब्दों का मैंने हिंदी अनुवाद भी कर दिया है।

इस ग्रंथ के प्रणयन में सबसे अधिक उत्साह मेरे मान्य मित्र और महान् भाषा-शास्त्रवेत्ता डॉक्टर शिवनंदन प्रसाद एम० ए०, डि० लिट० ने दिखाया है। उनकी तत्परता और सतत सस्नेह आग्रह के बिना इस ग्रंथ का लिखना संभव नहीं होता। गृह-प्रबंध के भार से मुझे सर्वथा मुक्त कर मेरी पत्नी प्रो० श्रीमती प्रमिला वर्मा ने भी इस ग्रंथ की रचना में प्रभूत सहयोग दिया है। मेरे अनुज डाक्टर वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा ने भी दृढ़ इच्छा प्रकट की कि ग्रंथ अवश्य लिखा जाय और दो जिल्दों में समस्त वैदिक राजनीतिक शास्त्र का इसमें विवेचन रहे। वैदिक मंत्रों के टंकण-कार्य में श्री जानकी जीवन प्रसाद ने बड़ा परिश्रम किया है। इन सभी का मैं आभारी हूँ।

प्रायः विगत पैंतीस वर्षों में अनेक महानुभावों से वैदिक विषयों पर चर्चा करने के अवसर मिलते रहे हैं। इनमें स्व० स्वामी अभेदानंद, स्व० पंडित अयोध्या प्रसाद, आचार्य ब्रह्मानंद, आचार्य कपिलदेव शर्मा, स्व० डॉक्टर सुविमल चंद्र सरकार, स्व० डॉक्टर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तारापद चौधरी और स्व० गोडबोले, आई० सी० एस० के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। डॉ० देवप्रकाश पातंजल, पं० रामानंद शास्त्री, डा० सीताराम सहगल, पं० रामचंद्र शर्मा (गाजीपुर), स्व० पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, डा० कृष्णदेव प्रसाद, डा० उमाशंकर शर्मा ऋषि, श्री पशुपतिनाथ उपाध्याय एवं श्री श्रीप्रकाश श्रीवास्तव से वैदिक विषयों पर काफी वार्तालाप हुआ है। श्री उमाकांत पांडेय, श्री विश्वनाथ ठाकुर और श्री चंद्रगुप्त अशोकवर्धन पटना विश्वविद्यालय में वैदिक राजनीतिशास्त्र के उत्साही शोधप्रज्ञ रहे हैं और इनलोगों से प्रभूत विचारविमर्श होता रहा है। अंग्रेजी में प्रकाशित मेरे निबंध "प्लेटो एँड वेद" के हिंदी-रूपांतरकरण का प्रारूप तैयार कर प्रो० जयनारायण मिश्र ने मेरी सहायता की है। प्रूफ-संशोधन में आचार्य पं० श्रुतिदेव शास्त्री ने प्रभूत परिश्रम किया है।

—विश्वनाथ प्रसाद वर्मा

राजेन्द्रनगर,
नवम्बर २५, १९७३

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषय-सूची

		पृष्ठ
भूमिका		
प्रथम अध्याय		
विषय प्रवेश	....	१
द्वितीय अध्याय		
वैदिक राजनीति का ऐतिहासिक आधार	....	८
तृतीय अध्याय		
वैदिक राजनीतिशास्त्र का आर्थिक आधार	....	२४
चतुर्थ अध्याय		
वैदिक राजनीतिशास्त्र का सामाजिक आधार	...	३१
पञ्चम अध्याय		
वैदिक राजनीतिक व्यवस्था, व्यवहार और संस्थाएँ	....	४३
षष्ठ अध्याय		
वैदिक राजनीतिशास्त्र में राजशक्तिवाद	....	६३
सप्तम अध्याय		
वैदिक राजनीतिशास्त्र में आदर्शवाद	....	८०
अष्टम अध्याय		
वैदिक देवगाथाशास्त्र और राजनीति	....	९२
नवम अध्याय		
यजुर्वेद में अध्वराश्रित राजनीति	....	१४४
दशम अध्याय		
यजुर्वेद में यथार्थवाद	....	१६२
एकादश अध्याय		
यजुर्वेद में राजनीतिक आदर्शवाद	....	१७३
द्वादश अध्याय		
अथर्ववेद और राजनीतिशास्त्र	....	१८०

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

त्रयोदश अध्याय

वैदिक राजनीतिक व्यवस्था २४१

परिशिष्ट : १

वैदिक राजनीतिशास्त्र का दार्शनिक विवेचन २५२

परिशिष्ट : २

ऋत-संप्रभुतावाद : वेद का विराट् राजनीतिक दर्शन २५८

परिशिष्ट : ३

प्लेटो और वेद २६३

सन्दर्भ ग्रंथों और निबंधों की सूची २७०

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लेखक की अन्य प्रकाशित पुस्तकें

१. राजनीति और दर्शन (उ० प्र० सरकार से पुरस्कृत)
२. भारतीय दर्शन (मालवीय पुरस्कार प्राप्त)
३. विश्वराजनीति
४. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास
५. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन
६. Political Philosophy of Hegel and Marx (कोलम्बिया थिसिस)
७. Political Philosophy of Sri Aurobindo
८. Political Philosophy of M. Gandhi
९. Modern Indian Political Thought
१०. Studies in Philosophy of Education
११. Hindu Political Thought (शिकागो थिसिस)
१२. Early Buddhism and its Origins
१३. Philosophy of Public Administration

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

वैदिक संहिताओं और उपनिषदों का अतिशय श्रद्धास्पद स्थान भारतीय धर्म और सांस्कृतिक इतिहास में रहा है। अथर्ववेद, शौनक संहिता (१९, ७१) में वेदमाता को पावमानी माना है और उससे आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण और ब्रह्मवर्चस् की कल्पना की गई है। अथर्ववेद (४, ३५, ६) में वेदों को विश्वरूप कहा गया है—यस्मिन वेदा निहिता विश्वरूपाः। वैदिक संहिताओं की परम प्राचीनता और शाब्दिक दुर्बोधता ने भी इनके महत्त्व को परिवृंहित किया है। अनेक पर्याय शब्दों द्वारा वैदिक साहित्य का बोध कराया जाता है, उदाहरणार्थ, छंदस्, मंत्र, निगम, श्रुति, वेद, आम्नाय, समाम्नाय आदि। अधीतवेद को अनूचान भी कहते थे, जैसे गार्ग्य बालाकि और आरुणेय श्वेतकेतु को (बृहदा० २, १, १। छां० ६, १, २)।

भारतीय धार्मिक परंपरा में वेदों का अतिशय महत्त्व है।[1] वैदिक वाङ्मय को परमेश्वर का निःश्वास (बृहदा० २, ४, १०) कहा गया। वैदिक साहित्य निखिल धर्मों का मूल और बुद्धिपूर्वा वाक् का संग्रह कल्पित किया गया। वैदिक मंत्रों की फलोत्पादक शक्ति में दृढ़ विश्वास स्थापित हुआ। वैदिक ऋषि साक्षात्कृतधर्मा और मंत्रद्रष्टा माने गये। वेदों का अतिरंजित महत्त्व, स्वामी दयानन्द ने यह कहकर व्यक्त किया कि संहिताओं का ज्ञान सृष्टि के आदिकाल में, प्रायः दो करोड़ वर्ष पहले, स्वयं परमेश्वर ने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा नामक चार ऋषियों को दिया था। कल्पकल्पान्तर में भी वैदिक ज्ञान नित्य एकरस रहता है, ऐसी मान्यता जैमिनि की थी, किंतु दयानन्द वैदिक ज्ञान के महत्त्वाभिज्ञापन में मीमांसा दर्शन से भी आगे बढ़ गये, क्योंकि, भौतिक विज्ञान का मूल भी उन्हें संहिताओं में दीख पड़ा।

दूसरी ओर, प्राचीन काल[2] से ही वेदनिन्दकों का भी एक सम्प्रदाय रहा है। भगवान् बुद्ध ने त्रयी का उपहास किया। जैनों के तीर्थङ्करों को ईश्वर के बदले सर्वज्ञ

---

१. शंकर ने ब्रह्मसूत्रभाष्य (१, ३) में लिखा है—अनेक शाखाभेदभिन्नस्य देवतिर्यङ्मनुष्यवर्णाश्रमादिप्रविभागहेतोरृक्ग्वेदाद्याख्यस्य सर्वज्ञानाकरस्य···।"

२. अथर्ववेद, शौनक शाखा, ११, ७, २४—ऋचः सामानि छंदांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे। यहाँ यज्ञोच्छिष्ट से समस्त वेदों का जन्म माना है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

माना गया। वेदों को निरर्थक कहा गया और वेद, उदरतुष्टि के लिए बनाये गए, भंड, धूर्त और निशाचरों की कृति माने गए।

दार्शनिक और धार्मिक ऊहापोह और आनुपूर्वी नित्य है या अनित्य है, इस तर्कजाल में न जाकर, हमें प्रकाशित वैदिक संहिताओं के तत्त्व का, निरपेक्ष हो, अनुशीलन करना है। ऐतिहासिक दृष्टि का अवलम्बन कर कवियों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश पर दृष्टिपात भी सामञ्जस्यपूर्ण प्रस्ताव है।

वैदिक परम्परा में यास्क, पाणिनि, वेङ्कट माधव, उवट, महीधर और सायण के ग्रन्थ अतिशय मननीय और उत्कर्षवान् हैं और उनकी उपेक्षा करना कदापि ठीक नहीं है। महर्षि दयानन्द और श्री अरविन्द ने वैदिक संहिताओं को गौरवान्वित करने में और उनमें वैज्ञानिक (दयानन्द) और परात्पर (अरविन्द) तत्त्व की बातें खोजने में प्रभूत श्रम किया है और शोधकर्त्ताओं को इनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। बाल गंगाधर तिलक ने पश्चिमी शोधपद्धति और ज्योतिष का आश्रय लेकर वेदों के कालनिर्णय और आर्यों के मूलस्थान का रहस्योद्घाटन किया। मन्मथनाथ दत्त, सत्यव्रत सामश्रमी, मधुसूदन ओझा, लक्ष्मण स्वरूप और कतिपय आर्यसमाजी विद्वानों ने वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन में प्रभूत परिश्रम कर यश प्राप्त किया है।

यद्यपि अट्ठारहवीं शताब्दी में यजुर्वेद का नाम फ्रांस में वाल्टेयर आदि को मालूम था तथापि कोलबुक के वेद पर लिखित निबन्ध के बाद ही, यूरोपीय विद्वानों का ध्यान वेद की ओर गया। वैदिक संहिताओं के सम्पादन, प्रकाशन, अर्थकरण और भाष्यकरण में रोजेन, लैंगलोया, बुर्नोफ, बर्गेन, मैक्समूलर, रोथ, वेबर, वेनफे, लुडविग, ग्रासमैन, ग्रेल्डनर, पिशेल, ओल्डेनबर्ग, ह्विटने, ब्लूमफील्ड, विलसन, मेक्डोनल और कीथ का पुरुषार्थ विस्मयकारी और परम महत्त्वपूर्ण है।

पाश्चात्त्य वैदिक सम्पादकों, गवेषकों, संशोधकों और भाष्यकारों के असीम परिश्रम और उदात्त मेधा का महत्त्व मैं मुक्तकंठ से स्वीकार करता हूँ। किंतु, मानना पड़ता है कि मूल्याङ्कन में वे पूर्णतः तटस्थ नहीं रह सके। मैक्समूलर को वेदों में बालिशमति[१] और जड़-बर्बरता (savagery) के कुछ अंश दीख पड़े।[२] ऐतरेयशतपथादि ब्राह्मणग्रंथों में जड़बुद्धि के प्रलाप (twaddle of idiots} उसकी दृष्टि में हैं।[३] विन्टरनित्ज को भी यजुर्वेद में

---

१. मैक्समूलर : इन्डिया : ह्वाट कैन इट टीच अस, भारतीय पुनर्मुद्रण पृ० ८७ : "That the Veda is full of childish, silly, even to our minds monstrous conceptions, who would deny ?"

२. मैक्समूलर : हिस्ट्री ऑफ ऐन्शियंट संस्कृत लिटरेचर (भारतीय पुनर्मुद्रण), ".....that earlier, lower and more savage, phase of thought which we find in the Veda...."—पृ० ५११।

३. मैक्समूलर : वही, पृ० ३५३।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तत्त्वहीन शब्दाडम्बर के काफी प्रमाण मिलते हैं।[१] श्रोयडर को मैत्रायणी संहिता में बाल्य-बुद्धि (imbecility) के उदाहरण मिलते हैं।[२] कीथ, तपस्या को मूर्खतापूर्ण (foolish asceticism)[३] कहने का साहस करता है। डायसन ही मेरी दृष्टि में भारतीय संस्कृति का निर्मल प्रेमी था। तपस् का अनुवाद कतिपय पाश्चात्त्य शोधक fervour (ताप, उष्णता) करते हैं। तपस् भारतीय संस्कृति का एक विराट शब्द है, उसका कुछ भी महत्त्व fervour शब्द से नहीं व्यक्त होता है। संयम, ब्रह्मचर्य आदि शब्दों पर जो गौरवपूर्ण अवधारण प्राचीन भारतीय साहित्य में है, उस ओर ह्वीटने, ओल्डेनबर्ग आदि नितांत उदासीन हैं। ऋत के विराट महत्त्व का प्रकटीकरण जितना श्री अरविन्द ने किया है उतना मैक्समूलर ने नहीं। अतएव व्यापक, आलोचनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टि अपेक्षित है। एकांगी दृष्टिकोण से हम तत्त्व का यथातथ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। अतः इस ग्रन्थ में मैंने संश्लिष्ट पद्धति अपनाई है।

वेदार्थनिर्णय में हमारा मुख्य लक्ष्य यही होना चाहिए कि मन्त्रकार वैदिक कवियों ने जिस तत्त्व और अर्थ को व्यक्त करना चाहा था, उसे यथातथ जानें। खींचातानी कर वेदों में भौतिक विज्ञान के आधुनिक निष्कर्षों को ढूँढ़ना और बीजगणित और ज्योतिषगणित के सिद्धांतों का पता लगाना असंगत प्रस्ताव मालूम पड़ते हैं। प्राचीन और नूतन ऋषियों का वास्तविक आशय क्या था, यही जिज्ञासनीय है। इस आशय का पता लगाने में वैदिक व्याकरण, पाणिनीय व्याकरण और विशेषतः धातु-पाठ, निघण्टु और निरुक्त हमारे दूर तक मार्गदर्शक हो सकते हैं। वेदार्थ करने में शतपथ, गोपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में अतिरञ्जित कल्पना और शब्दजाल का आश्रय लिया गया है, जिससे हमें सावधान रहना है। पुराने भाष्यकारों में सायण परम महत्त्वपूर्ण है, फिर भी, स्मरण रखना है कि परवर्ती याज्ञिक और धार्मिक साहित्य की दृष्टि से वेदार्थ करने का यत्न सायण ने किया है। अतः सायण आधारभूत मार्गदर्शक है, किंतु निर्भ्रांत नहीं है और उसके भाष्य में भी पर्याप्त संशोधन अपेक्षित है। तुलनात्मक भाषाशास्त्र, तुलनात्मक पुराणशास्त्र (मिथौलोजी) और प्राचीन

---

१. विन्टरनित्ज, भारतीय साहित्य का इतिहास (जर्मन से अंग्रेजी अनुवाद), प्रथम खंड, पृ० १८० : "However, one of the chief causes of the fact that these prayers and sacrifice-formulas often appear to us to be nothing but senseless conglomeration of words, is the identification and combination of things which have nothing at all to do with each other, so very popular in the Yajurveda." अथर्ववेद के कतिपय अंशो में भी विन्टरनित्ज को कल्पना का मूर्खतापूर्ण और तत्त्वहीन खिलवाड़ (foolish and nonsensical plays of fancy) दीख पड़ता है।
—वही पृ० १४९

२. वही, (उद्धृत) पृ० १८२।

३. कीथ : रेलिजन एण्ड फिलासफी ऑफ दि वेद एण्ड उपनिषद्स, खंड २, पृ० ५९४

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इतिहास द्वारा प्राप्त निष्कर्षों का यथावत् अवलोकन कर्त्तव्य है, किंतु ऋग्वेद के अर्थज्ञापन में मध्य एशिया, काकेशशप्रदेश, उत्तरीध्रुव, फारस और अफगानिस्तान के इतिहास और भूगोल का अत्यधिक उल्लेख त्याज्य है। स्मरणीय है कि ऋग्वेद सप्तसिंधु [१] प्रदेश में प्रणीत महान् धर्मकाव्य है।

संहिताएँ लोक-साहित्य नहीं हैं। न केवल इनमें दार्शनिक उत्कर्ष है, अपितु साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से उषःसूक्त आह्लादकारक हैं। यह ठीक है कि यजुर्वेद, सामवेद और ऋग्वेद के अधिकांश सूक्त वैदिकपुरोहितों द्वारा यज्ञात्मक कर्मकांड के निमित्त रचे गये हैं तथापि सुन्दर शब्दयोजना द्वारा भावनाओं को झंकृत करनेवाले और उपमा-उपमेय की मनोहारिणी व्यवस्था करनेवाले सूक्त भी अनेक हैं। न केवल मन्त्रों में धैवत, गान्धार, षड्ज, पञ्चम, निषाद, ऋषभ और मध्यम नामक सप्त स्वरों की व्यवस्था है, अपितु गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति और अतिधृति नामक चौदह छन्दों में पद्य-रचना की गई है। अतः वैदिक संहिताओं का काव्यात्मक महत्त्व स्पष्ट है।

ऋग्वेद की शाकल शाखा में ८ अष्टक, ६४ अध्याय और २००६ वर्ग हैं। एक दूसरी गणना का भी क्रम है, जिसके अनुसार १० मण्डल, ८५ अनुवाक, १०१७ सूक्त, १०५८० ऋचाएँ और १५३,८२६ शब्द हैं। शौनक की अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद की वाष्कल शाखा में आठ और सूक्त थे। आठवें मंडल में ११ सूक्त अधिक हैं, जिन्हें बालखिल्य कहते हैं, वे परिशिष्ट की तरह हैं। ये ११ सूक्त, १०१७ के अतिरिक्त हैं। मैक्समूलर द्वारा संपादित ऋग्वेद-सायण भाष्य में २९ और खैलिक सूक्त छपे हैं, जिनमें देवीसूक्त और रात्रिसूक्त मुख्य हैं, किंतु ये २९ खैलिक सूक्त भाषा की दृष्टि से नवीनतर हैं और इनके भाव भी कुछ तान्त्रिक सम्प्रदाय-जैसे हैं।

ऋग्वेद के ऋषि-परिवारों में निम्नलिखित मुख्य हैं—

परिवार	मंडलनाम
१. आङ्गिरस शौनहोत्र भार्गव गृत्समद और कूर्म गार्त्समद	द्वितीय मंडल
२. गाथी कुशिकपुत्र विश्वामित्र, और ऋषभ वैश्वामित्र और उत्कील कात्य	तृतीय मंडल

---

१. अष्टौ व्यख्यत्ककुभ : पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्। (ऋ० १,३५,७)
× × ×
यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् (ऋ, २,१२,३)
× × ×
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् (ऋ०, २,१२,१२)
× × × ×
पत्स्यावति (ऋ० ८,७२९) संभवतः पूर्वी पंजाब का क्षेत्र है किंतु सायण ने पत्स्य का अर्थ गृह किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

३. वामदेव	चतुर्थ मंडल
४. अत्रि और आत्रेयगण	पञ्चम मंडल
५. भरद्वाज बार्हस्पत्य	षष्ठ मंडल
६. वसिष्ठ	सप्तम मंडल
७. काण्व	अष्टम मंडल
८. अङ्गिरा	नवम मंडल

चतुर्वेदों में ऋग्वेद ही साहित्य, धर्म, इतिहास आदि की दृष्टि से प्राचीनतम और उत्कृष्टतम है। इसमें ऋचाओं (ऋच् धातु तुदादि, परस्मैपद + क्विप् = ऋच्।) का संग्रह है। पुरुष सूक्त[1] (ऋ० १०,९०) में एकेश्वरवाद, हिरण्यगर्भ (ऋ० १०,१२१), नासदीय (ऋ० १०,१०९) और दीर्घतमा (ऋ० १०,१६४) सूक्तों में अद्वैतवाद, अघमर्षणसूक्त (ऋ० १०,१९०) में तपस्वाद आदि इस वेद की दार्शनिक उत्तुंगता के प्रबलतम प्रमाण हैं, किंतु ये सब सूक्त प्रथम और दशम मंडलों में ही मिलते हैं, जो भाषा की दृष्टि से द्वितीय से लेकर सप्तम मंडल के सूक्तों से नवीनतर हैं। आनुषंगिक रूप से इतिहास, समाज और राजनीति की काफी बातें भी ऋग्वेद से मिलती हैं।

ऋग्वेद के राजनीतिशास्त्र और राजनीतिक प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके भूगोल का आंशिक परिचय अपेक्षित है। ऋग्वेद में उल्लिखित नदियों के नाम ये हैं—

सप्त सिन्धु :

१. सिंधु— जलप्रवाह। इसको सरस्वती अर्थात् जलपूर्णा भी कहा है। समुद्र अर्थात् उदक का एकत्रीकरण भी इसकी संज्ञा है। यास्क के अनुसार सुषोमा भी इसका नाम है। सायण (ऋ० ८,७, २९) ने सुषोमा का अर्थ शोभन सोमयुक्ता किया है।

२. सरस्वती[2]

३. वितस्ता[3]—यह झेलम का वैदिक नाम है। इसका अर्थ है विस्तृत। यूनानी नाम Hydaspes है।

४. शुतुद्री— शत धारा वाली सतलज। (पीछे इसका नाम हुआ शतद्रु)

५. आर्जीकिया—(ऋ० ८,६४,११) या विपाट् या विपाश्—बंधनरहित। व्यास नदी। यूनानी नाम Hyphasis है।

६. असिक्नी—चनाब। यूनानी नाम Akesinas है।

---

१. पुरुषसूक्त के लिए वाजसनेयी संहिता (३१) और अथर्ववेद, शौनक शाखा (१९,६) भी।

२. पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्तसिन्धवः। (ऋ० ८,५४,४)

३. ऋग्वेद, १०,७५।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

७. परुष्णी[1]—रावी। पीछे इसका नाम हुआ इरावती। यूनानी नाम Hydraotes है।

अफगानिस्तान में

८. कुभा—काबुल नदी

९. सुवास्तु—स्वात नदी

मध्यदेश में

१०. गोमती—(प्रभूत गौओं वाली)

११. यमुना

१२. गङ्गा

अन्य नदियां

१३. क्रुमु (ऋ० ५, ५३, ९)।

१४. रसा (ऋ० ५,५३,९)

१५. मरुद्वृधा—असिक्नी और वितस्ता के संयुक्त प्रवाह का नाम। (रोथ के अनुसार)

१६. तृष्टामया (ऋ० १०,७५,६)

१७. सुसर्तु (ऋ० १०,७५,६)

१८. श्वेत्या (ऋ० १०,७५,६)

१९. मेहन्तु (ऋ० १०,७५,६,

२०. हरियूपीया (ऋ० ६,२७,५)

२१. यव्यावती (ऋ० ६,२७,६)

२२. वैशन्त (ऋ० ७,३३,२)। संभवतः वैशन्त काल्पनिक नदी है।

२३. श्वेतयावरी वाहिष्ठा (ऋ० ८,२६, १८)

२४. अञ्जसी (ऋ० १,१०४,४)

२५. कुलिशी (ऋ० १,१०४,४)

२६. वीरपत्नी[2] (ऋ० १,१०४,४)

२७. दृषद्वती (ऋ० ३,२३,४)

---

१. 'सप्त सिन्धवः, के ही अर्थ में संभवतः, 'सप्त स्रवतो' का भी प्रयोग है—अहं सप्त स्रवतो धारयम् (ऋ० १०, ४९,९)

२. "अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी वयो हिन्वाना उदभिभरंते" (ऋ० १,१०४,४) पर भाष्य करते हुए सायण ने इन्हें तीन नदियाँ माना है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२८. आपया (ऋ० ३,२३,४)

२९. अनितभा (ऋ० ५,५३,९)

३०. शर्यणावती (ऋ० ८,६४,११)। संभवतः यह कुरुक्षेत्रपार्श्वस्थ एक झील का नाम है। सायण ने कहा है—शर्यणावति कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे शर्यणावत्संज्ञे सरसि।

यह मानने के लिए कि संहितायुग में आर्यजनों का निवासस्थान केवल नदियों के किनारे ही था, पर्याप्त प्रमाण नहीं है। उपनिवेशों की खोज में नदियों के स्थल-अंतराल को पार करना पड़ता होगा और कोई कारण नहीं कि इन मध्यवर्ती स्थानों पर उपनिवेश न बसाये गए हों। सिंधु से लेकर सतलज और पीछे यमुना, गङ्गा तक के स्थल प्रदेश में आर्यजन अवश्य वसे होंगे। सिर्फ नदियों के किनारे ही नहीं।

हिमालय का ऋग्वेद में उल्लेख है—यस्येमे हिमवन्तो महित्वा(ऋ० १०,१२१,४)। पर्वत[१], अद्रि[२], गिरि[३], का भी उल्लेख है। वृत्र अद्रि में ही छिपा माना गया है, किंतु पर्वत-विशेषों का नाम नहीं मिलता है। गिरि शब्द का भी प्रयोग है। दिवोदास अतिथिग्व के लिए इंद्र ने शंबर को गिरि से नीचे कर डाला—अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुगो अवाभरत् (ऋ० १,१३०,७)। वैदिक संहिताओं की राजनीतिक प्रक्रिया की आधारभूता वातावरणात्मक व्यवस्था में, स्थलप्रदेशों, अरण्यों और नदियों का मुख्य स्थान है। पार्थिवसमुद्र का और अंतरिक्षस्थ समुद्र का भी कल्पनामूलक उल्लेख है। अनेक पाश्चात्त्य शोधकों को वैदिक आर्यों के समुद्रज्ञान के विषय में संदेह है। संभवतः अथर्ववेद के ब्रह्मचारीसूक्त में भारत तटवर्ती पूर्वी और उत्तरी समुद्र[४] का वर्णन है।

●

---

१. पर्वतान्प्रकुपितॉ अरम्णात् (ऋ० २,१२,११)
× ×
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम् (ऋ० २,१२,११)

२. नाद्रयः सोमो अक्षाः (ऋ० १०,८९,६)

३. विभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भसा (ऋ० १०,८९,७)

४. स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रम् (अथर्व० ११,५,६)
सलिलस्य पृष्ठे···समुद्रे (अथर्व० ११,५,२६)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्वितीय अध्याय

वैदिक राजनीति का ऐतिहासिक आधार

यद्यपि पाश्चात्य शोधकों ने ऋग्वेद में प्राचीन भारतीय इतिहास की सामग्री खोजने में प्रभूत परिश्रम किया है तथापि ऐसी बात नहीं है कि एतद्देशीय भाष्यकारों को वैदिक ऐतिहासिक तथ्यों का ज्ञान नहीं था। यास्क के निरुक्त में ऐतिहासिक पद्धति का उल्लेख है। स्कंद स्वामी के ऋग्वेद-भाष्य में ऐतिहासिक बातों का यत्रतत्र उल्लेख आता है। ऋग्वेद के एक मंत्र (१,११६,१३) पर स्कंद ने लिखा है—वध्रिमती नाम योद्ध्री संग्रामे शत्रुभिश्छिन्नहस्ता अश्विनौ तुष्टाव। यहाँ 'वध्रिमती[1] नामक युद्ध करनेवाली' का स्पष्ट उल्लेख है। ऋ० मंत्र १,११६,१६, पर स्कंद कहता है—'विशसन्तं ऋज्राश्वं नाम राजपुत्रं पिता शापेनान्धं चकार।' यहाँ ऋज्राश्व के अंधा होने की बात है। ऋ० मंत्र १,११६,२० में मूल मंत्र में ही ऋषि जाहुष[2] का नाम है। ऋ० मंत्र १,११६, ६ तथा १,११७,९ में पेदु[3] राजा का नाम मंत्रों में ही है। ऋ० मंत्र १,८२,२ पर स्कंद ने लिखा है—मातलिना स्वसारथिना। यहाँ मातलि नामक इंद्र के पुराणेतिहासोक्त सारथि का उल्लेख है। ऋ० मंत्र १,९०, ९ के अर्थकरण में स्कंद ने बलिबंधन की बात लिखी है।

उन्नीसवीं शताब्दी के कतिपय पश्चिमी ऐतिहासिक विद्वान् ऐसा मानते थे कि मध्य एशिया से आर्यों की एक शाखा भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में गई थी। बीसवीं शताब्दी के पश्चिमी विद्वान् आर्यों के मूलस्थान को स्कैनडिनेभिया, आस्ट्रिया, दक्षिणी रूस आदि प्रदेशों में मानते हैं। पाश्चात्य शोध-पद्धति का अनुसरण करते हुए बाल गंगाधर तिलक ने उत्तरी ध्रुव के पास आर्यों का मूलस्थान माना और ऋग्वेद के उषः सूक्तों में ध्रुवप्रदेश की दीर्घकालीन उषा की आर्ष स्मृति उन्हें दीख पड़ी। स्वामी दयानन्द देवभूमि तिब्बत (त्रिविष्टप) को आर्यों का मूल स्थान मानते थे। अविनाशचन्द्र दास और संपूर्णानंद सप्त-सिन्धु प्रदेश को ही आर्यों का मूल स्थान मानकर आर्यों द्वारा भारत पर आक्रमण के अनुमानाश्रित पश्चिमी सिद्धांत को नहीं स्वीकार करते हैं। याद रखना है कि समस्त संस्कृत साहित्य में कहीं भी आर्यों के भारतेतर स्थान से आने का जरा भी स्पष्ट निर्देश नहीं है।

---

१. सायण ने वध्रिमती को किसी राजर्षि की पुत्री कहा है।
२. सायण ने जाहुष को राजा का नाम माना है।
३. सायण ने भी पेदु को स्तुतिकर्त्ता का नाम माना है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वैदिक संस्कृत से जेन्द, ग्रीक और लैटिन ध्वनियों के सादृश्य पर ही तुलनात्सक भाषाशास्त्र की नींव पड़ी तथा धातु और शब्द सादृश्य के आधार पर आर्य नस्ल की कल्पना खड़ी हुई। हजारों वर्ष पुरानी घटना के विषय में निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, पश्चिमोत्तर प्रांत में अनेक परवर्ती आक्रमणों की घटनाओं को ध्यान में रखकर यदि आर्य आक्रमण की बात मानी भी जाय तो वह नितांत अनर्गल नहीं कही जा सकती।[१] मैं भारतदेशेतर स्थानों से आये आर्यों द्वारा सप्तसिन्धु पर आक्रमणप्रतिपादक सिद्धांत को विवादग्रस्त ही मानता हूँ।

वैदिक संहिताओं और विशेषतः ऋग्वेद के ऐतिहासिक तथ्यों का कुछ उल्लेख इस अध्याय में किया जा रहा है। इन्हीं आधारभूत सामग्रियों के संदर्भ में वैदिक राजनीति-शास्त्र का प्रणयन हुआ था।

ऋग्वेद और अंशतः अन्य संहिताओं के युग में राजनीतिक प्रक्रिया युद्धों के माध्यम से अपना रौद्र रूप प्रकट करती थी। निघण्टु के अनुसार संग्राम के ४४ नाम हैं—रणः। विवाक्। विखादः। नदनुः। भरे। आक्रंदे। आहवे। आजौ। पृतनाज्यम्। अभीके। समीके। मम-सत्यम्। नेमधिता। सङ्काः। समितिः। समनम्। मी ∞ हे। पृतनाः। स्पृध। मृधः। पृत्सु। समत्सु। समर्ये। समरणे। समोहे। समिथे। सङ्ख्ये। सङ्गे। संयुगे। सङ्गथे। सङ्गमे। वृत्रतूर्ये। पृक्षे। आणौ। शूरसातौ। वाजसातौ। समनीके। खले। खजे। पौंस्ये। महा-धने। वाजे। अज्म। सद्म। संयत्। संवर्त। यह सूची, वैदिक राजनीति में युद्ध का कितना महत्त्व था और कवि संग्राम को काव्य का विषय बनाने के लिए कितना आतुर था, इसका ज्वलंत प्रमाण है। सायण (ऋ० ७, १९,४) ने देववीति का भी अर्थ संग्राम किया है।

(१) दस्यु और असुर

ऋग्वेद में आर्य और दस्यु (दस् + युच्) के युद्धों का अनेक बार उल्लेख है। ऋग्वेद में दस्युजूत (६,२४,८), दस्युतर्हण (९,४७,२), दस्युहत्य (१,३१,५,३। १,१०३,४। १०, ९९,७), दस्युहन् शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। अग्नि को, मन्धाता के लिए, दस्युहन्तम् कहा है—मन्धातुर्दस्युहन्तमग्निम् (ऋ० ८,३९,८)। दस्यु शब्द का जेंद (प्राचीन फारसी) भाषा में जाति, मनुष्य आदि अर्थ में प्रयोग होता है। दस्यु संभवतः आर्य-धर्म की परिधि से बाहर थे। ऋग्वेद में अव्रत, अन्यव्रत,—अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम्। ऋ० ८,७०,११, अश्रद्ध, अयज्ञ, अयज्यु, अपृणत्, शिश्नदेव, आदि व्यंग्यात्मक उपाधियाँ इन्हें दी गई हैं। किंतु दस्युओं को द्राविड़ और कोल नस्ल का मानने का पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है। नस्लके अभिमानी पाश्चात्त्य शोधकर्त्ताओं ने आर्य और दस्यु युद्ध को बाहर से आये गौरांग

१. यथावशं नयति दासमार्यः। (ऋ० ५,३४,६)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उत्तुंगनास आर्यों और इस देश के पुराने कृष्णत्वच् निवासियों के बीच युद्ध के रूप में कल्पित किया है। मैक्समूलर ने ऋग्वेद में सिर्फ एक बार प्रयुक्त अनासः[१] शब्द पर बड़ा जोर दिया और माना कि दस्युगण की नासिका इतनी छोटी थी कि नासिकाभिमानी वैदिक कवि ने उन्हें अनासः कह डाला। समस्त भारतीय आदिवासियों के पूर्वजों को अनासः, नासिकाहीन, अथवा चिपटी नाकवाला वही कहेगा जो ठीक से अंगों का पारखी नहीं है। मैक्समूलर तो कभी भारत आया भी नहीं था।[२] भारत के समस्त आधुनिक आदिवासियों की नाक चिपटी नहीं है। अतः अनासः का अर्थ चिपटी नाकवाले करना युक्तिसंगत नहीं है। काले और गोरों के बीच वैदिक युद्ध पर पाश्चात्त्य विद्वान् बहुत बल देते हैं। किंतु परवर्ती इतिहास से पता चलता है कि भारतीय संस्कृति के प्रबलतम उन्नायक, राम, कृष्ण, व्यास आदि श्यामवर्ण ही थे। यदि प्राचीन वैदिक साहित्य में वैसा वर्णवाद था, जैसा आज दक्षिण अफ्रिका में है तो फिर, वह कैसे समाप्त हुआ? आधुनिक अंतरराष्ट्रीय राजनीति के नस्लवादी पूर्वाग्रहों से ऋग्वेद का ठीक मूल्यांकन नहीं हो पाता है। नस्लवादी विचारधारा के अनुकुल ऋग्वेद के अनुशीलन में पाश्चात्त्य विद्वानों ने बड़ा परिश्रम किया है और उन आर्यों को क्रूर, बर्बर, गोधाती, सुरापायी आक्रांता साबित किया है, जिन्होंने यहाँ के आदिवासियों को या तो जंगल में जाने के लिए विवश किया या दास बनाया या मौत के घाट उतार दिया। सायण के भाष्य से इस नस्लवादी व्याख्या-प्रणाली का समर्थन नहीं होता है। वह मृध्रवाचः (ऋ० ५,२९,११) का अर्थ करता है "हिंसितवागिन्द्रियान् असुरान्"।

ऋग्वेद में दस्यु, दास, असुर[३] या आर्येतर अन्य प्रमुख नेताओं और जनों के नाम अक्षरानुक्रम से निम्नलिखित हैं—

१. अज—ऋ० ३,४५,२। अजासः—ऋ० ७,१८,१९

---

१. प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सात्
यान्यद्वरिवो यातवेऽकः
अनासो दस्यूंरमृणो यधेन नि दुर्योण
आवृणङ् मृध्रवाचः (ऋ० ५,२९,१०)

सायण ने अनासः का अर्थ किया है अन् + आस अर्थात् "आस्यरहितान्। आस्यशब्देन शब्दो लक्ष्यते। अशब्दान्मूकान्"।

२. कीथ भी कभी भारत नहीं आया था। वह भी 'कैम्ब्रिज भारतवर्ष का इतिहास' खंड १ (पृ० ७९) में लिखता है कि वर्तमान भारतीय द्रविड़-जैसे ही प्राचीन आदिवासी अनासः थे।

३. इन्द्र के चार असुर्य नाम का निर्देश ऋग्वेद, १०,५४,४ में है—चत्वारि ते असुर्याणि नाम।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२. अर्नशनि—यः सुबिन्दमर्नशनिप्रिपुं दासमहीशुवम्
वधीदुग्रो रिणन्नपः (ऋ० ८,३२ २)

३. अहीशुव—ऋ० ८,३२,२

४. अर्बुद—अन्तरिक्षस्थानीय दानव—
न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः (ऋ० २,११,२०)
× ×
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे (ऋ० २,१४,४)

५. इलिबिश—ऋ० १,३३,१२ । निरुक्त ६,१९

६. उरण—अध्वर्ययो य उरणं जघान नव चख्वासं नवतिं च बाहून् (ऋ० २,१४,४) । उरण ९९ बाहू थे ।

७. और्णवाभ दानव—धिष्वा शवः शूर येन
वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् (ऋ० २,११,१८)

८. किमीदिन—द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने । (ऋ० ७,१०४,२)

९. कृष्ण—अंशुमती नदी के किनारे कृष्ण का वासस्थान था । अपने दश हजार अनुयायियों के साथ उसने आर्य जनों को त्रस्त कर रखा था ।
कृष्ण शब्द के प्रयोग के लिए द्रष्टव्य, ऋग्वेद, १,७३,७ । ४,७,९ । १,५८,४ । ७,८,२ । १,१४६,३ । १,११५,५ । १,१४०,५ । ८,७३,१८ । अथर्ववेद ६,२२,१ । ९,१०,२२ । १०,२०,९ ।

१०. कुयव—निदुर्योण कुयवार्च मृधिश्चेत् । (ऋ० १, १७,४)
इन्द्र ने कुत्स आजुर्नेय के सहायतार्थ कुयव और दास शुष्ण को पराजित किया ।—दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् । (ऋ० ७,१९,२)

११. चुमुरि—सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् (ऋ० ६,२०,१३ । ऋ० ६,२६,६ । ६,१८,८ । २,१३,९ । ७,१९,४)

१२. तुग्र—(क) तं तुग्रं वेतसवे सचाहन् (ऋ० ६,२६,४) ।
(ख) भुज्यु के पिता तुग्र से पहला तुग्र भिन्न है ।

१३. ततुजि—ऋ० ६,२०,८

१४. तुरुक्ष—ऋ० ८,४६,३२

१५. दशोणि—ऋ० ६,२०,८

१६. दृभीक—यो दृभीकं जघान (ऋ० २,१४,३)

१७. द्रुह— महो द्रुहो अप विश्वायु धायि (ऋ० ६,२०,५)

१८. धुनि—स्वप्नेनाभ्युप्य चुमुरिं धुनिं च । (ऋ० २,१५,९)
सायण के अनुसार धुनि जलप्रतिरोधकारी असुर था । (ऋ० १,१७४,९)

१९. नमुचि—शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् (ऋ० ५,३०,८)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२०. नववास्त्व—ऋ० १,३६,१८ । ६,२०,११ । १०,४९,६ ।

२१. पिप्रु—अरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् (ऋ० ५,२९,११)

× × ×

त्वंपिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरःप्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ।
(ऋ० १,५१,५)

२२. बल्बूथ—शतं दासे बल्बूथे विप्रस्तारुक्ष आददे । (ऋ० ८,४६,३२)
इलिबिश, चुमुरि और बल्बूथ निश्चित ही आर्येतर नाम प्रतीत होते हैं ।

२३. वृषय—अवातरितं वृषयस्य शेषः (ऋ० १,९३,४)

× × ×

मायी वृषय की समस्त प्रजा को आहत करने (निबर्हय) के लिए सरस्वती से प्रार्थना है (ऋ० ६,६१,३) ।

२४. बृहद्रथ—अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वातिं दस्यवे सहः ।
(ऋ० १,३६,१८)

२५. मृगय—ऋ० ४,१६,१३ । ८,३,१९ । १०,४९,५ ।

२६. रुधिका—ऋ० २,१४,५

२७. वर्चिन्—सायण के अनुसार वर्ची के १५०० अनुचर इन्द्र द्वारा मारे गये ।

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः ।
अधि पञ्च प्रधीरिव । (ऋ० ४, ३०, १५)

× × ×

यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपत् (ऋ० २,१४,६ । ७,९९,५)

× × ×

अहन्दासा उदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च । (ऋ० ६,४७,२१)
सायण ने शम्बर, शुष्ण और वर्ची को असुर माना है । दास = असुर ।

२८. वल—भिनद्वलस्य परिधीन् (ऋ० १,३२,५)

× ×

सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ।
(ऋ० १,६२,४)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२९. विशिशिप्र—यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय (ऋ० ५, ४५, ६)

३०. विश्वरूप—त्वाष्ट्र के पुत्र त्रिशिरस् विश्वरूप (ऋ० २, ११,१९)

३१. वृषशिप्र—विष्णु ने मायावी दास वृषशिप्र को मारा

दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुः (ऋ० ७, ९९, ४)

३२. वेश—ऋ० १०, ४९, ५

३३ व्यंस—यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् (ऋ० २, १४, ५)

३४. शम्बर (शम्ब+अरच्)—कुलीतर के पुत्र दास शम्बर।

अहं पुरो पन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य

(ऋ० ४, २६, ३)

× × × ×

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि। अवाहन्निन्द्र शम्बरम्।

(ऋ० ४, ३०, १४)

३५. शुष्ण (शुष्+न=शुष्ण)—इन्द्र ने उसे माया से मारा।

उत शुष्णस्य धृष्णुया प्रमृक्षो अधि वेदनम्।

पुरो यदस्य संपिणक्। (ऋ० ४, ३०, १३)

× × × ×

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः (ऋ० १, ११, ७)

३६. स्मदिभ—इन्द्र वैकुण्ठ ने कुत्स के लिए स्मदिभ, तुग्र और वेतसूओं को मारा।

अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम्।

(ऋ० १०, ४९, ४)

३७. स्वश्न—ऋ० २, १४, ५

३८. सृबिन्द—ऋ० ८, ३२, २

प्राक्-आर्य आर्जीकों का नाम ऋग्वेद में मिलता है—

य आर्जीकेषु कृत्वसु (ऋ० ९, ६५, २३)

सायण ने ऋजीक को देशवाची माना है—ऋजीका नाम देशाः

(ऋ० ८, ७, २९)

कीकट भी संभवतः आर्येतर जनों का निवासस्थान था। यह दक्षिण बिहार का वाचक है—

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं द्रुहे न तपन्ति घर्मम्।

आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धयानः

(ऋ० ३, ५३, १४)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कीकटों में तुम्हारी गौवें क्या करती हैं ? प्रमगन्द का धन ले आओ। संभवतः प्रमगन्द कीकटों का नेता रहा हो।

आर्य-दस्यु युद्ध के अनेकशः उल्लेख ऋग्वेद में हैं। निस्सदेह यह युद्ध बड़ा लोमहर्षक हुआ होगा। आर्य-दस्यु-असुर युद्ध में मृतकों की संख्या का कुछ निर्देश मिलता है—

(१) अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः दासानां इन्द्रो मायया।

(ऋ० ४, ३०, २१)

दभीति के लिए इन्द्र ने ३०,००० दासों को सुला दिया अर्थात् उनका हनन किया।

(२) उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः। अधि पंच प्रधींरिव।

(ऋ० ४, ३०, १५)

इन्द्र ने वर्ची के १००,००० योद्धाओं को मारा या हटा दिया।—शतं वर्चिनः सहस्रं च साकंहथो अप्रत्यसुरस्य वीरान्। (ऋ० ७, ९९, ५)

× ×

यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै

(ऋ० २, १५, ६)

(३) पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा विदर्दः।

(ऋ० ४, १६, १३)

पचास हजार कृष्णवर्ण के मारने का यहाँ उल्लेख है।

तीनों का जोड़ :—

१.	३०,०००
२.	१००,०००
३.	५०,०००
	१८०,०००

भीषण आर्य-दस्यु-युद्ध के विषय में निम्नलिखित मंत्र विचारणीय है—

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन दुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परितृडहाअशेरन्॥

(ऋ० १। १३३। १)

ऋत के द्वारा मैं द्यौ लोक और पृथिवी को पवित्र करता हूँ। जो इन्द्र का विरोध करनेवाली दानवियाँ हैं, मैं उन्हें जलाता हूँ, जहाँ शत्रुगण तुम्हारे हाथ से दबाये जाकर मारे गये और मृत्युकूप (वैलस्थान) में मारे जाकर छिन्नभिन्न हो, सो रहे थे।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(२) पञ्च जनाः :—

वैदिक राजनीतिशास्त्र और उसके ऐतिहासिक आधार को समझने के लिए पंचजन को जानना आवश्यक है। ऋग्वेद (१०, ५३, ४-५) में 'पञ्चजनाः' का उल्लेख है—

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम।
ऊर्जादे उत यज्ञियासः पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्॥
पञ्चजना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान्॥

अपनी वाणी का पूर्व भाग मैं बोलूंगा, जिससे हम देवगण असुरों को शांत कर सकें। ऊर्जस्वी (भोजन) खाने वाले और यज्ञ प्राप्ति के योग्य पंचजनों! हमारे होत्र से प्रसन्न हो। पंचजन, तथा गौ से उत्पन्न और यज्ञ प्राप्ति के योग्य, हमारे होत्र से प्रसन्न हों। पार्थिव कष्टों से पृथिवी हमारी रक्षा करे और द्यौ लोक के कष्टों से अंतरिक्ष त्राण करे।

इन दो मन्त्रों में पञ्चजनाः का एक धर्म-संश्लिष्ट अर्थ लिया गया है, क्योंकि होत्र प्राप्ति के लिए यज्ञीय पंचजनाः का आह्वान है। किंतु उन्हें सरस्वती नदी के पार्श्ववर्ती कहने वाले मंत्र से ऐतिहासिक निर्देश पुष्ट होता है—**पञ्चजाता वर्धयन्ती** (ऋ० ६, ६१, १२)

पाञ्चजन्यः (ऋ०,१,१००,१२। ९,६६,२०), पाञ्चजन्यम् (ऋ० १,११७,३। ५, ३२,११), पाञ्चजन्या (ऋ० ८,६३,७), पाञ्चजन्यासु (ऋ० ३,५३,१६) तथा पाञ्चजन्येन (ऋ० ७,७२,५। ७,७३,५) आदि ऋग्वेद में प्रयोग मिलते हैं।

उषा का पञ्चजनों के स्थान पर जाने का उल्लेख है—पञ्च क्षितीः परि सद्यो जगाति (ऋ० ७,७५,४)। अथर्ववेद, १८,४,५५ में पञ्च मानवाः का प्रयोग मिलता है—**यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्चमानवाः।**

पञ्चजन शब्द का तात्पर्य भाष्यकारों और आलोचकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त किया है। ऐतरेय ब्राह्मण, यास्क और सायण के मंतव्य समान हैं—

ऐतरेय ब्रा०	यास्क	सायण[1]
१. गन्धर्व और अप्सरस्	१. गन्धर्व	१. गन्धर्व
२. पितृगण	२. पितृगण	२. अप्सरस्
३. देव	३. देव	३. देव
४. मनुष्य	४. असुर	४. असुर
५. सर्प	५. राक्षस[2]	५. राक्षस

१. द्रष्टव्य, सायण भाष्य, ऋ० १,१००,१२।

२. ऋग्वेद १०,१५,५ में दानवों का उल्लेख है। शिरिम्बिष्ठ भारद्वाज कवि प्रार्थना करता है कि काणी विकटा अरायी दानवों के साथ (सदान्वे) पहाड़ में चली जाय।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सायण के अनुसार चार वर्ण और निषाद को जोड़कर भी पञ्चजन संज्ञा सार्थक होती है।

जीमर-जैसे पाश्चात्त्य वेदज्ञों के अनुसार अनु, द्रुह्यु, पुरु, तुर्वश और यदु नामक पांच आर्य जनों का ग्रहण पाञ्चजन्य, पञ्चजनाः आदि शब्दों से किया जाता है। संभवतः ययाति के पाँच पुत्रों के नाम पर इन पाँच जनों का नामकरण हुआ था। ययाति ऋषि का नाम ऋग्वेद (१,३१,१७, ययातिवत् सदने) में है। नहुष्य ययाति (ऋ० १०,६३,१, ययातेर्ये नहुष्यस्य) का भी उल्लेख है जो संभवतः राजा था किंतु पंचजनों के मूलपुरुष उसके पुत्र थे। इसका समर्थन ऋग्वेद से नहीं होता है। यदि जन को कबीला (tribe) का समानार्थक मानें तब ऐसी कल्पना करनी पड़ेगी कि ययाति के पुत्रों-जैसे विशिष्ट शक्तिधरों का नेतृत्व इतिहास में पहले व्यक्त हुआ और जनता को शक्तिशाली माननेवाला जनसंस्था-वाद परवर्ती राजनीतिक विकास का सूचक है। ये पांच आर्यजन शक्ति की दृष्टि से कम-जोर सिद्ध हुए। कोई ऐतिहासिक कारण नहीं मालूम पड़ता कि इनकी अतिरंजित प्रशंसा क्यों की जाय [१] ? पंचजन शब्द को इन तुर्वश, यदु, पुरू आदि विशिष्ट जनों का बोधक मानने का जीमर का प्रस्ताव मुझे पूरा संगत नहीं प्रतीत होता है। पञ्चजन से मिलता-जुलता शब्द 'सप्तमानुषः' है, जो अग्नि के लिए प्रयुक्त है—यो अग्निः सप्तमानुषः (ऋ० ८,३९,८)।

(३) ऋग्वेद की वंशावली

राजसत्ता का परिवारविशेष में केन्द्रीकरण और आनुवंशिक क्रम से उसका विस्तार जनता की प्रमादशीलता और राजनीतिक अकर्मण्यता का बोध कराते हैं। ऋग्वेद में वंशपरंपरा के कुछ उदाहरण ये हैं—

(क) त्रित्सु

१. देववन्त (ऋ० ७,१८,२२)
|
२. वद्ध्र्यश्व
|
३. दिवोदास अतिथिग्व
|
४. पिजवन (ऋ० ८,६८,१६,१७ के अनुसार इन्द्रोत अतिथिग्व का पुत्र है।)
|
५. सुदाः पैजवन

---

१. यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वनिर्पोस्या (ऋ० ६,४६,७)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऋग्वेद (७, १८, २५) में सुदास् का पिता दिवोदास है—दिवोदासं न पितरं सुदासः।

(ख) पुरुवंशी राजा

१. दुर्गह (ऋ० ४,४२,८)

।

२. गिरिक्षित् (गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नुसश्चे। (ऋ० ५,३३,८)

।

३. पुरुकुत्स

।

४. गैरिक्षित पौरुकुत्स्य त्रसदस्यु

|

५-८. त्रासदस्यव तृक्षि (ताक्ष्याश्वारोही)। संभवतः बीच में त्रिवृषन्[1] और अरुण थे। (कितनी पीढ़ियाँ बीच में थीं, यह अनिश्चित है।)

|

९. मित्रातिथि (ऋ० १०,३३,७)

|

१०. कुरुश्रवण (परशुओं द्वारा पराजित)। (ऋ० १०,३२,९। १०,३३,४)

|

११ उपमश्रवस् (अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि। (ऋ० १०,३३,७)

(ग) सृञ्जय

सृञ्जय-जन का प्रसिद्ध राजा देववात था (ऋ० ४,१५,४)। सृञ्जय-जन की परवर्ती वंशावलि यों है :—

१. सहदेव

|

२. कुमार साहदेव्य सोमक (ऋ० ४,१५,७-१०)

|

३. प्रस्तोक

|

४. वीतहव्य (भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन्—(अथर्व० ५,१९,१)

१. ऋग्वेद (५,२७,१) में त्रिवृषन् के पुत्र त्रैवृष्णश्यरूण का उल्लेख है। संभवतः प्रसिद्ध त्रसदस्यु का ही वंशज श्यरूण त्रैवृष्ण है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(घ) प्रभूत दानदाता (ऋ० ८,१,३२-३३)

१. प्लयोग

|

२. प्लायोगी आसङ्ग (यदुवंशीय। उसकी पत्नी का नाम शश्वती था। ऋ० ८,१,३४)

|

३. स्वनद्रथ

४. अतिथिग्व

रोथ के वृहत् संस्कृत-जर्मन कोश के अनुसार वैदिक साहित्य में तीन अतिथिग्व का वर्णन है—

(क) दिवोदास अतिथिग्व, जिसे देवों ने शम्बर की हत्या में सहायता दी (ऋ० १, ११२,१४। १,५४,६। १,१३०,७। ६,४७,२२)। शम्बर ने दिवोदास को पूरा परीशान किया और अपने क्षेत्रों की रक्षा के लिए बराबर लड़ता रहा।

(ख) करञ्ज और पर्णय का शत्रु अतिथिग्व (ऋ० १,५३,८ और १०,४८,८)।

(ग) वह अतिथिग्व, जिस पर तूर्वयाण ने विजय प्राप्त किया था (ऋ० १,५३,-१०)। सत्य आङ्गिरस ऋषि कहता है कि कुत्स, अतिथिग्व और आयु को इन्द्र ने सुश्रवस तूर्वयाण के लिए मारा।

तुर्वश, यदु और पुरु जनों से दिवोदास अतिथिग्व का बृहत् युद्ध हुआ था। दिवोदास के अन्य नाम प्रस्तोक (ऋ० ६,४७,२२), अश्वत्थ (ऋ०, ४७,२४) और सार्ञ्जय (ऋ० ६,४७,२५) भी हैं। पणि, पारावत और बृसय जन से भी अतिथिग्व की मुठभेड़ हुई थी। ब्राह्मण-युग में पारावत लोग यमुना के किनारे रहते थे।

(५) परुष्णीयुद्ध—दाशराज्ञ युद्ध

पुरोडा इत्तुर्वशो चक्षुरासीद्राये
मत्स्यासो निशिता अपीव।
श्रुष्टि चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च
सखा सखायमतरद्विषूचोः॥ (ऋ० ७,१८,६)

आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः।
आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगान्युधा नॄन्॥
(ऋ०७,१८,७)

त्रित्सु कुलोत्पन्न सुदास् का निम्नलिखित दश जनों से युद्ध हुआ था—

१. पक्थस् (वहु० पक्थासः)
२. भलानस् (वहु० भलानसः)
३. अलिनस् (वहु० अलिनसः)
४ विषाणिन् (वहु० विषाणिनः)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

५. शिवस् (बहु० शिवासः)

६. अनु
७. द्रुह्यु
८. तुर्वश } पञ्चजनाः
९. यदु
१०. पुरु

विश्वामित्र ने सरस्वती और परुष्णी की अंतर्वर्तिनी दो नदियों विपाश् और शतद्रु से प्रार्थना की थी कि उनकी धारा का वेग कम हो जाय, जिससे सेना पार कर जाय। कुशिकपुत्र विश्वामित्र ने ऋग्वेद (३,३३) में विपाश् (व्यास) और शतद्रु (झेलम) नदियों को मातृतमा और स्वसा कहकर उनकी अभ्यर्थना की है। उसकी कामना है कि जबतक भरत जन के लोग पार नहीं कर जाते तबतक नदियाँ अपना प्रवाह शिथिल करें, उसके बाद पुनः वेगवती हो जायँगी। ऋग्वेद (३,५३) में विश्वामित्र का कथन है कि वह पहले सुदास् का यज्ञकर्मपुरस्कर्ता था।[१] पीछे वह पुरुओं और भरतों[२] से मिल गया। त्रित्सु[३] जनोत्पन्न प्रतापी सुदास् का पौरोहित्य वशिष्ठ ने किया।[४]

दाशराज्ञ युद्ध में भारत-जन-समर्थक विश्वामित्र[५] त्रित्सु सुदास् का विरोधी था। सरस्वती नदी के किनारे सुदास् की वाहिनी थी। परुष्णी के उत्तरी ओर दाशराज्ञ युद्ध के लिए संगठित जनों की विशाल सेना थी। सुदास् अपनी सेना के साथ परुष्णी के दक्षिणी किनारे पहुँच गया और विरोधी सेना के सेनानियों को नदी में ही जगह मिल सकी।

---

१. विश्वामित्रो यदवहत्सुदासम् (ऋ० ३,५३,९)

\+ + +

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्रमुञ्चता सुदासः (ऋ० ३,५३,११)

२. विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् (ऋ० ३,५३,१२)

\+ + +

इमं इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वम् (ऋ० ३,५३,२४)

३. त्रित्सु नाम कुछ अस्वाभाविक लगता है। इससे मिलता जुलता वैदिक देव हैं त्रित आप्त्य।

४. एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वशिष्ठाः। (ऋ० ७,३३,३)

५. नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः।

\+ + + +

यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुः।

\+ + + +

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।

(ऋ० ३,३३,९-११-१२)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

काफी संख्या में लोग डूब गये और लाखों लोग मौत के घाट उतारे गए। दाशराज्ञ युद्ध में सुदास् विजयी हुआ और विरोधी दशजनों की सेना की रावी नदी के किनारे भयंकर क्षति हुई। दाशराज्ञ युद्ध में अनु और द्रुह्यु के छह लाख छियासठ हजार, छियासठ (६,६६,०६६) आदमी मारे गए थे।

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा
षष्टिर्वीरासो अधिषद् दुवोयु विश्वदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि।
(ऋ० ७,१८,१४)

मालूम पड़ता है कि अशोक के कलिंग-युद्ध से कई गुना भीषण और हत्याकारी वह युद्ध हुआ होगा। इस दाशराज्ञ युद्ध से इन्द्रप्रेरित त्रित्सुओं और उनके राजा सुदास् का मनोबल बहुत बढ़ गया और वे अब सप्तसिंधु के पार यमुना के तटवर्ती प्रदेश पर आक्रमण करने लगे (ऋ० ७,१८)। पुरु राजा पुरुकुत्स भी संभवतः सुदास का बंदी बना।[1]

परुष्णी नदी के किनारे दाशराज्ञ युद्ध में सुदास् के विजय की गाथा कुछ असंगत मालूम पड़ती हैं, क्योंकि जब दशजन एक साथ सुदास के आक्रमण का विरोध कर रहे थे तब इतने विराट् संगठन का पराजय कैसे हो गया? यह ठीक है कि त्रित्सु लड़ाकू थे, किंतु यदि सचमुच दाशराज्ञ युद्ध में दशजनों का पराजय हुआ रहता तो वैदिक साहित्य में 'पञ्चजनाः' का, जो अन्य पाँच जनों के साथ दाशराज्ञ युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ रहे थे, इतना गौरवपूर्ण वर्णन नहीं हुआ रहता। यह भी विचित्र बात है कि क्यों विजयी सुदास् वैदिक साहित्य का एक उपेक्षित पात्र ही है।

(६) सुदास्-भेद युद्ध (ऋ० ७, १८, १९)

दाशराज्ञ युद्ध में विजयी होने पर सुदास् को एक अन्य विकट युद्ध करना पड़ा। अज (अजासः), शिग्रु (शिग्रवः) और यक्षु (यक्षवः), इन तीन जनों ने राजा भेद के नेतृत्व में संगठित हो यमुना किनारे सुदास् की सेना पर आक्रमण कर दिया। किन्तु भाग्य ने दूसरी बार भी सुदास् का साथ दिया और महती क्षति के साथ यमुना नदी के किनारे सुदास् ने भेद[2] और अन्य तीन जनों की सेना को पराजित कर दिया।[3] अज (बकरा) और शिग्रु (अश्व के भोजनार्थ मूली) नाम से प्रतीत होता है कि संभवतः ये दोनों जन आर्येतर थे।

---

१. दौर्गहे बध्यमानो (ऋ० ४,४२,८)

२. अथर्ववेद, शौनक शाखा (१२, ४, ४९-५०) में उल्लेख है कि देवताओं ने गाय के बारे में और भेद के विषय में चर्चा की और इस कारण भेद पराभूत हुआ (पराभवत्)। इन्द्र के याचना करने के बावजूद भेद ने गाय न दी, अतः देवताओं ने उसे नष्ट कर दिया—तस्मात्तं देवा आगसोवृश्चन्नहमुत्तरे।

३. आवदिन्द्रं मनुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि। (ऋ० ७, १८, १९

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पश्चिमी शोधकर्त्ताओं ने दाशराज्ञ युद्ध में और यमुना-तट पर हुए भेद के साथ युद्ध में महान् पराक्रम दिखाने वाले सुदास् का महत्त्वाभिज्ञापन किया है, किंतु आश्चर्य है कि करिश्मासंपन्न (Charismatic) नेता सुदास् का भारतीय जनमानस पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं रहा और न किसी कवि ने उसकी यशःप्रशस्ति में अपनी वाणी का सदुपयोग किया। हाँ, अप्सरा उर्वशी के पुत्र ऋषिवर वशिष्ठ[1] ने उसका पौरोहित्य संपादित कर राजनीतिक सत्ता को यज्ञात्मक और धार्मिक आधार प्रदान किया।

(७) कतिपय प्रकीर्ण ऐतिहासिक वृत्तांत

आयु, कुत्स और अतिथिग्व की द्वेषपूर्ण शत्रुता के बावजूद (ऋ० २, १४, ७) पक्थजनोत्पन्न तूर्वयाण (ऋ० ६, १८, १३) ने घोर राजनीतिक कर्म किये।

(ऋ० १, ५३, १०)।

पुरुवंशियों ने भी राजसत्ता को हस्तगत और प्रशस्त करने का उद्योग किया था। पुरुकुत्स के बंदी होने पर पुरुकुत्सानी ने इन्द्रावरुण को हव्य प्रदान किया और फलस्वरूप उसे शत्रुहन्ता अर्धदेव त्रसदस्यु की प्राप्ति हुई—अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् (ऋ० ४, ४२. ९)। यहाँ अर्धदेव (ऋ० ४, ४२, ८, ९) शब्द का प्रयोग त्रसदस्यु के आंशिक देवत्वलाभ को स्पष्ट बताता है। अग्नि की स्तुति करते हुए सोभरि काण्व ने सम्राट् अग्नि को त्रसदस्यु का मित्र कहा है—सम्राजं त्रासदस्यवम् (ऋ० ८, १९, ३२)। त्रसदस्यु उदारतम (मंहिष्ठ), अर्य और सत्पति माना गया और कवि कहता है कि उसने दान में पचास दासियाँ कवि को दीं। (ऋ० ८, १९, ३६)।

सृञ्जय दैववात (ऋ० ४, १५, ४) ने तुर्वश जन पर विजय प्राप्त किया, यद्यपि वृचीवन्तों ने भी तुर्वशों की सहायता की थी—स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् (ऋ० ६, २७, ७)।

देवश्रवस और देववात भरतों के मुख्य नरपति थे। दृषद्वती, आपया और सरस्वती के तट पर इनका वासस्थान था। इनके कतिपय वैदिक उल्लेख हैं—

अमन्थिष्टां भरता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम्। (ऋ० ३, २३, २)

: : : : : : : : : : : :

अग्निं स्तुहि देववातं देवश्रवो योजनानामसद्वशी (ऋ० ३, २३, ३)।

: : : : : : : : : : : :

दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दीदिहि। (ऋ० ३, २३, ४)

संभवतः भरत और त्रित्सु संबंधी थे।

---

१. उतासि मैत्रावरुणो वशिष्ठोर्वश्याः (ऋ० ७, ३३, ११)

÷ ÷ ÷

अप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः (ऋ० ७, ३३, १२)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अर्ण और चित्ररथ (ऋ० ४, ३०, १८) से तुर्वश-यदु-जन का युद्ध हुआ था (ऋ० ४, ३०, १८)।

पार्थव उपाधिधारी अभ्यावर्ती चायमान ने वरशिख को परास्त किया (ऋ० ६, ३७, ५, ८)। ऋग्वेद (६, ३७, ८) में अभ्यावर्ती को सम्राट् की संज्ञा दी है और बताया है कि उसने ऋषि भरद्वाज बार्हस्पत्य को विजय की खुशी में वधुओं से भरे दो रथ और बीस गायें दीं।

चेदी[1] = ब्रह्मातिथि काण्व की एक दानस्तुति में चेदी-जन और इसके राजा कशु का नाम आता है। कवि कहता है कि उसने दश हजार गायें और एक सौ ऊँट प्राप्त किये (ऋ० ८, ५, ३७)। समस्त योद्धा चैद्य के द्वारा पराभूत हुए—

अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितोजनाः (ऋ० ८, ५ ३८)

उशीनर-जन की राज्ञी का भी उल्लेख ऋग्वेद (१०, ५९, ५०) में है। सायण ने 'उशीनराण्याः' का अर्थ तन्नामिका ओषधि कर ऐतिहासिक प्रकरण की उपेक्षा की है।

रुशम-जन के राजा ऋणञ्चय का भी दानदाता के रूप में उल्लेख है। (ऋ० ५, ३०, १४—ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम्)। वभ्रु नामक ऋषि ने रुशमों की सहायता की थी, जिसके लिए चार हजार गायें उसे मिलीं। (ऋ० ८, ३, १३। ८, ४, २, । ८, ३, ९। रुशमाः के लिए ऋग्वेद ५, ३०, १२। ५, ३०, १५।)।

क्रिवि नामक जन का भी ऋग्वेद में उल्लेख है—

याभिर्दशस्यथा क्रिविम् (ऋ० ८, २०, २४)।

: : : : : : : :

याभिः क्रिविं वावृधुः (ऋ० ८, २२, १२)।

अन्यत्र भी उल्लेख हैं (ऋ० १, ३०, १। ८, ८७, १। ९, ९, ६)। किंतु जनवाचक अर्थ सर्वत्र नहीं अभिप्रेत है।

इक्ष्वाकु नाम भी ऋग्वेद में मिलता है—

यस्येक्ष्वाकु रुप व्रते रेवान्मराय्येधते (ऋ० १०, ६०, ४१। द्रष्टव्य अथर्व० १९, ३९, ९)।

ऋग्वेद (१०, ९८, २, ५) में आष्टिषेण देवापि ऋषिका वर्णन है। ऐसा कहा गया है कि वह स्वर्लोक (उत्तरस्मात्) से दिव्य जल को ले आया—समुद्रमपो दिव्या असृज-द्वष्यी अभि। देवापि के भाई शंतनु का भी उल्लेख है—शन्तनवे वृषाय (ऋ० १०, ९८, १)। निरुक्त (२, १०, ११) में ऋष्टिषेण के पुत्र देवापि का नाम आता है। महाभारत के अनुसार प्रतीप का पुत्र देवापि राज्य छोड़कर अरण्यवासी हुआ और तपस्या के बल पर उसने ब्राह्मणत्व लाभ किया।

ऋग्वेद (६, २६, ८) में भरद्वाज बार्हस्पत्यनामक ऋषि कहता है कि वृत्रों (शत्रुओं) के हनन में और धन की प्राप्ति में प्रतर्दन का पुत्र प्रातर्दनि श्रेष्ठ क्षत्रश्री था—

---

१. माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदयः (ऋ० ८, ५, ३९)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रातर्दनि क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम्। सायण ने क्षत्रश्री को प्रतर्दन का पुत्र माना है, जो भ्रामक है।

मुद्गल भार्म्यश्व प्रणीत इन्द्र देवता की स्तुति (ऋ० १०, १०२) तत्कालीन राजनीतिक संकटों के समाधानार्थ, युद्ध में शत्रुओं के पराभव के निमित्त, जोरदार उद्घोष है—रथ्या जयेम सुमङ्गलम् (ऋ० १०, १०२, ११)। शत्रुओं को धनुभक्ष कहा गया है—अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाध्ये धनुभक्षेषु नोऽव (१०, १०२, १)। मघवा इन्द की सहायता से मुद्गल युद्ध में विजयी हुआ और सैकड़ों हजारों गौऐं उसे हाथ लगीं—येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु (१०, १०२, ९)। इस प्रधन में केशी[1] ने सारथि का काम सम्हाला। मुद्गलानी भी स्वयं युद्ध में भाग ले रही थी—रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ (१०, १०२, २)। युद्ध में मुद्गल द्रुघण (गदा) लेकर चल रहा था और महोक्ष के साथ, इसी ने शत्रुओं के स्थानों का उसे पता बताया था।

दानस्तुति के प्रसंग में निंदिताश्व, प्रपर्थी और परमज्या नामक विशिष्ट नरों का उल्लेख है (ऋ० ८, १, ३०)।

(८) पणि :

वैदिक राजनीति में पणियों का भी भागग्रहण होता था। कतिपय लेखक वैदिक पणियों का संबंध फोयनिशियन लोगों से बताते हैं। टायर और सीडन इन लोगों के मुख्य नगर थे। प्राचीन जाति के रूप में प्लेटो के 'रिपब्लिक' में भी फोयनिशियन लोगों का उल्लेख है। पणि दान देने में बड़े कृपण थे, किंतु दूर-दूर तक वाणिज्य के लिए जाते थे।

सरस्वती को पणियों की नष्टकारिणी कहा है—या शश्वंतमाचखादावसं पणिं (ऋ० ६, ६१, १)। पणियों को अक्रतु (अयज्ञ), ग्रथी (जल्पक), मृध्रवाचः (हिंसितवाक्), श्रद्धारहित, देवतायज्ञविरहित और यज्ञहीन कहा है। उन दस्युओं को अग्नि ने दूर तक खदेड़ दिया है। इन्द्र समस्त वैकनाट पणियों से शक्ति में जबर्दस्त है (ऋ० ८, ६६, १०)। वह पणियों को आक्रांत करता है—समीं पणेरजति भोजनं मुषे (ऋ० ५, ३४, ६)।

पणियों में श्रेष्ठ बृबु को महादानी (सहस्रदातमं और सहस्रसातमम् (ऋ० ६, ४५, ३३) कहा है।

---

१. सायण के अनुसार मुद्गलानी को ही केशी कहा है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तृतीय अध्याय

वैदिक राजनीतिशास्त्र का आर्थिक आधार

१. रयि

वैदिक संहिताओं में रयि ($\sqrt{रा}$) का अतिशय-महत्त्व है। इस शब्द के अनेक रूप मिलते हैं। रयिः, रयिम्, रयीणाम्, रय्या, रयिभिसूः, रय्य, आदि शब्द प्राप्त होते हैं। रयिवो (ऋ ६,४४,१), रयिदो (ऋ. ३,५४,१६), रयित्तमो (ऋ. ६,४४,१) रयिपति, रयिमत्त (ऋ. १०,३६, १०), रयिवत्, रयिविद् (ऋ. २,१,३/३,७,३), रयिवृधः (ऋ. ७,९१,३), रयिषाच् (सम्पत्तिवान्), रयि'ठा, रयिस्थान (ऋ. ६,४.,९), रयीयत्, रयीषित् आदि शब्द वैदिकसंहिताओं के युग के समाज के आर्थिक आधार की ओर इंगित करते हैं।

प्रस्कण्व, उषा से, रयि की कामना करते हुए कहता है—

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुगयम्।
(ऋ० १, ४८, १३,)

उषा, जिसकी कल्याणकारी रश्मियाँ, चारो ओर तेजस्विनी दिखती हैं, हमें समस्त अच्छी चीजों की (विश्ववारं), सुन्दर (सुपेशसम्), अल्पश्रमप्राप्य (सुगयम्) रयि प्रदान करे। वामदेव, इन्द्राबृहस्पती से सौ गायोंवाले और हजार घोड़ेवाले (रयि) की कामना करता है—रयिं धत्तं शतग्विनम्। अश्वावन्तं सहस्रिणम्। (ऋ० ४, ४९, ४)। वसिष्ठ, इन्द्र से संगृहीत धन मांगता है—नो भर संभरणं वसूनाम् (ऋ०७, २५, २)। द्युम्न और रत्न का भी वह अभिलाषी है—द्युम्नमधि रत्नं च धेहि (ऋ० ७, २५, ३)। अपने को रायस्वाम भी कहता है (ऋ०, ७, ४२, ६)। अम्बराष या ऋजिष्वा सोम से रयि की कामना करता हुआ कहता है कि रयि अत्यन्त बलप्रद (वाजसातमम्), अनेकों का स्पृहणीय (पुरुस्पृहं), अनेकपोषणयुक्त (सहस्रभर्णसं), प्रभूतयशोयुक्त (तुविद्युम्न) और शत्रुओं का अभिभविता (विवासहं) है (ऋ० ९, ९८, १)। रयि सहस्रगुण (सहस्रिणं रयि) और सैंकड़ों रूपवाला (शतात्मानं) कहा गया है। (ऋ० ९, ९८, ४)।

अग्नि को रयि का धारक भी माना है—श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम् (ऋ० १०, ४५, ५)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इन्द्र प्रभृति रयि का देनेवाला है—अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः (ऋ० १०, ४७, ७, ८)। तैत्तिरीय संहिता (७, १, ६) में, अश्वमेध-प्रकरण में, प्रजावान्, पशुमान्, रयिमान् शब्दों का प्रयोग है।

(२) रिक्थ और रेक्णस्

दाय के अर्थ में रिक्थ शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में है—

न जामये तान्वो रिक्थमारैक् (ऋ० ३, ३१, २,)।

पुत्र ने भाई के लिए हिस्सा नहीं छोड़ा। सायण ने इसका अर्थ यह किया है कि औरस पुत्र भगिनी के लिए पित्र्य धन नहीं छोड़ता है।

ऋग्वेद में रेक्णस् (रेक्णस् = √रिच् + नस्। √रिच वियोजन संपर्चनयोः) का दायप्राप्त धन, संपत्ति, हिरण्य के अर्थ में प्रयोग मिलता है। जैसे—

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति (१, १६२, २)। सायण के अनुसार रेक्ण धन का नाम है।

सुदामं तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः (ऋ० ६, २०, ७)। महान् दाता इंद्र! तुम यज्ञकारी ऋजिश्वन् को अनश्वर धन देते हो।

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णः नित्यस्य रायः पतयः स्याम (ऋ० ७, ४, ७)। शत्रु की संपत्ति परिश्रम से प्राप्य है, हम अपनी संपत्ति के स्वामी बनें।

ऋग्वेद में रेक्णस्वत् भी धनी के अर्थ में प्रयुक्त होता है—

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति (ऋ० १०, ६३.१६)। श्रेष्ठ स्वस्ति, धनपूर्णा (रेक्णस्वती), जो अच्छा है, वहाँ दूरवर्ती मार्ग से आती है।

(३) क्षेत्र[1] और सीता[2]

वैदिक राजनीतिक विचारों और संस्थाओं का उत्पादनात्मक आधार कृषि थी। क्षेत्रपति के स्तवन में वामदेव ने (ऋ० ४, ५७) कृषि में प्रयुक्त वस्तुओं और पात्रों का उल्लेख किया है—जैसे लाङ्गल[3] (हल), वाह (बैल), फाल (भूमिविदारकलौह उपकरण)। कृषिकार को ऋग्वेद में कीनाश कहते हैं। सायण ने कीनाश (क्विश् + कन) का अर्थ बलिवर्दरक्षक किया है। शून (√श्वि + क्त) और सीर (√सि + रक्) तथा सीता[4] का कृषि को पुष्ट करने के लिए आह्वान किया गया है।[5] शूनासीर का, सायण के अनुसार,

---

१. क्षेत्र = √क्षि + ष्ट्रन्।
२. √सि + त = सीता।
३. लाङ्गल (√लग् या √लङ्ग + कलच्)।
४. वाज० सं० १२, ७० में सीता को मधुघृत से पूरित कहा है।
५. वाज सं० १२, ६९ में उल्लेख है—शुनं सुफाला वि कृषन्तु भूमिम्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इन्द्रवायू या वाय्वादित्य अर्थ है। यहाँ सायण ने अंशतः यास्क[1] का अनुसरण किया है। अथर्ववेद (६, ३०, १), में इंद्र को सीरपति और मरुतों को कीनाश कहा है।

वैदिक आर्थिक व्यवस्था कर्षकाश्रित थी। अतः उसमें गौ, महोक्ष (वृषभ या अनड्वान्), महिष, अजा आदि आदि का विशेष महत्त्व था। शंयु बार्हस्पत्य इंद्र से स्तुति करता है कि तुम गाय की कामनावाले के लिए गाय हो और घोड़े की कामना वाले के लिए घोड़ा बनो—गौरसि वीर गव्यते। अश्वो अश्वायते भव (ऋ० ६, ५४, २६)। गायों (गव्यन्तः) और घोड़ों (अश्वायन्तः) के लिए युद्ध करते जाते हुए कविगण, इंद्र का आवाहन करते थे (ऋ० ७, ३२, २३)। उषा, गौ, अश्व और रथ देती है—गोमदश्ववद्रथवच्च राधः (ऋ० ७, ७७, ५)। कृषि (या सीता-कर्म) प्राकृतिक वर्षा पर आश्रित थी। वर्षा का बड़ा महत्त्व था, अतएव जल को रोकना वृत्र का बड़ा दुष्कर्म माना गया था और वृत्रहत्या के बाद विमुक्त जल का अजस्र प्रवाह सुष्टुत, परम प्रशंसनीय काम माना गया।

(४) वैयक्तिक संपत्ति, पितृवित्त और दाय

वैदिक अर्थशास्त्र वैयक्तिक संपत्ति पर आधृत है। वैदिक संहिताओं में और यदि हरप्पा मोहंजोदारो अवशेषों को प्राक्-वैदिक या वेद समवर्ती माना जाय तो उनमें भी सामूहिक संपत्ति का कोई अवशेष नहीं मिलता है। हरप्पा-मोहंजोदारो की नगर-सभ्यता प्राथमिक कम्यून के आधार पर निर्मित ही नहीं हो सकती थी। इस सभ्यता के अवशेष आवश्यकता से अधिक उत्पादन की ही सूचना देते हैं, क्योंकि, वाणिज्यमूलक सभ्यता सिर्फ आवश्यकतानुसार उत्पादन से नहीं निर्मित हो सकती। दूसरी ओर, वैदिक संहिताओं में सामूहिक अर्थव्यवस्था का कोई भी स्पष्ट प्रमाण नहीं है।

हिरण्य (√हृ+ल्युट्+यत्) का नाम संहिताओं में है। सविता के रथ की धुरी सोने की है—रथम् हिरण्यप्रउगं वहन्तः (ऋ० १, ३५, ५)। सोने के शिरस्त्राण (हिरण्ययी शिप्राः ऋ० ८, ७, २५), हिरण्य पाणिभिः—(ऋ० ८, ७, २७), सोने के आयुध (हिरण्यवाशीभिः-ऋ० ८, ७, ३२) और सोने के रथ (हिरण्यवर्तनी—ऋ० ८, ८, १) तथा सोने के अलङ्कार (हिरण्यपेशसा—ऋ० ८, ८, २) का भी उल्लेख है। किंतु हिरण्य का मुद्रा के रूप में उपयोग हो, ऐसा उल्लेख नहीं है। रत्न (√रम्+न) शब्द का भी अनेक वार प्रयोग है (ऋ० १, ३५, ८)—दधाति रत्नं विधत्ते सुवीर्यम् (ऋ० ७, १६, १२)। महो नो रत्ना विदधे इयानः (ऋ० ७, १७, ७)। सात रत्नों का भी उल्लेख है—दमे दमे सप्ते रत्ना दधाना (ऋ० ६, ७४, १)। गाय, मापकरण का भी कार्य करती थी। संभवतः, आर्थिक विनिमय में उसका प्रयोग होता हो।

पणि (√पण्+अप्+इन्) वाणिज्य का कार्य करते थे, किंतु अभी विस्तृत सामुद्रिक व्यापार और वाणिज्य नहीं होते थे। व्यापार नदियो के सहारे होता था। इस सरल आर्थिक व्यवस्था के आधार पर ही वैदिक काल की राजनीतिक व्यवस्था आधृत थी।

---

१. शुनो वायुः। शुइत्यन्तरिक्षे। सीर आदित्यः सरणात्। (निरुक्त ९, ४०),। सीर का अर्थ हल भी है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऋ० ४, २६, २, में इन्द्र कहता है—अहं भूमिममदामार्याय—अर्थात् आर्यों के लिए मैंने भूमि दी है। इससे सामूहिक संपत्ति का तत्त्व समर्थित करना संभव नहीं लगता। सायण ने 'आर्याय' का अर्थ 'मनवे' कर दिया है।

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने
ये वक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः। (वाज०सं० ११, ७९)

इस मंत्र में अग्नि से पुरोहित कहता है कि जो मलिम्लु (लुटेरा), स्तेन (चोर), तस्कर (डाकू) और अघायु (पापी या अपराधी) हैं, उनका नाश हो। इससे मालूम होता है कि व्यक्तिगत संपत्ति के प्रति प्रचंड दृढता से अनुराग बढ़ा हुआ था—त्वया जेष्म हितं धनं (ऋ० ६, ४५, १२) और—जेषि जिष्णो हितं धनम् (ऋ० ६, ४५, १५)। व्यक्तिगत संपत्ति की संस्थाबद्धता निस्संदेह राजनीतिक सत्ता को भी परिपुष्ट करती है।

संपत्ति की वंशानुगत प्राप्ति वैदिक युग में होती थी। पिता से लब्ध धन के समान अग्नि अन्नदाता है अर्थात् जैसे पैतृक धन अन्नप्रद है वैसे अग्नि अन्नप्रद है (रयिनं यः पितृवित्तो वयोधाः—ऋ० १,७३, १)। ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरः (ऋ० १, ७३, ९)—अर्थात् पित्रादि की परंपरा से प्राप्त धन के स्वामी विद्वद् गण— इस मंत्रांश में भी वैयक्तिक संपत्ति के वंशानुगत लाभ की बात स्पष्ट कही गयी है। इससे भी प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के युग में सामूहिक संपत्ति की कल्पना निराधार है।[1] समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति—सर्वत्र ही पारिवारिक प्रणाली का महत्त्व स्वीकृत है। अथर्ववेद (शौनक संहिता, १९, २६, १-२) में हिरण्य को सूर्यवर्ण और आयुर्द कहा है। ऐसा भी कहा है कि पूर्व के लोग अपनी प्रजा के साथ इसकी कामना करते थे—प्रजावंते मनवः पूर्व ईषिरे।

दाय (√दा+घञ्) का अर्थ है—हिस्सा, टुकड़ा या पृथिवी का टुकड़ा। ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग है—

श्रमस्य दायं विभजन्त्येभ्यः। (ऋ० १०, ११४, १०)।

ये अपने परिश्रम का दाय प्राप्त करते हैं।

संपत्ति के विभाजन के वर्णन के लिए निम्नलिखित मंत्र उल्लेखनीय हैं—

गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त॥ (ऋ० १, ७०, ५)।

१. परिवार संपत्तिधारक निगम नहीं था। मैक्डोनल और कीथ, वेदिक इन्डेक्स, पृ० ५२९।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पराशर ऋषि अग्नि से कहता है—तुम हमारी गौओं [१] और जंगलों पर मूल्य (प्रशस्ति) स्थापित करते हो । सभी लोग हमारे लिए बलि ले आवें, प्रकाश के पास । मनुष्यों ने अनेक और विविध प्रकार से तुम्हारी सेवा की है (सपर्यन्) । वृद्ध पिता (जिन्रेः=जीर्णात्) के धन का, मानो, विभाजन करते हुए । सायण ने इसका अर्थ यों किया है–जैसे पुत्र वृद्ध पिता से धन हरते है (हरन्ति) ।

५. ऋण

ऋण (√ऋ + क) की प्रथा भी, वैयक्तिक संपत्ति का वैदिक युग में सर्वथा प्रचलन था, इसको स्पष्ट करती है (ऋ०२, २७, ४) । कवष ऐलूष अक्षकितव के संबंध में व्यसनी कितव का घोर कष्ट व्यक्त करते हुए कहता है कि वह बद्ध हो जाता है और पिता, माता, भ्राता, उस बद्ध पुरुष को पहचानते भी नहीं (ऋ० १०, ३४. ४) । ऐसा ऋणग्रस्त पुरुष भयार्त हो रात्रि में चोरी भी करता है—ऋणावा बिभयद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति (ऋ० १०, ३४. १०) ।

ऋणादान विषय (सन्नयामसि) पर ऋग्वेद का निम्नलिखित मंत्र है—

'यथा कलां यथा शफं यथऋणं संनयामसि । (ऋ०८, ४७, १७ = अथर्व, ६, ४६, ३) । पाश्चात्त्य शोधकों के अनुसार शफ = १/८ हिस्सा और कला = १/१६ हिस्सा । यह स्पष्ट नहीं है, ये हिस्से मात्र ऋण के हैं या मूलधन के भी ।

ऋग्वेद (ऋ० ८/६६, १०७) में प्रयुक्त वेकनाट शब्द का निवर्चन करते हुए यास्क कहता है कि सूदखोरों को वेकनाट कहते हैं, क्योंकि वे अपने धन को किसी प्रकार दूना कर लेना चाहते हैं—द्विगुणकारिणो वा, द्विवगुणदायिनो वा, द्विगुण कामयन्त इति वा (नि० ६. २६)।

६. बलि

ऋग्वेद में वलि (√बल् + इन) का प्रयोग मिलता है—

भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः (ऋ० १, ७०, ५)

सभी जन प्रकाश को बलि ले आते हैं ।

तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अंतित ओत दूरात् । (ऋ० ५, १, १०) हे यविष्ठ (युवतम) अग्ने, तुम्हारे लिए मनुष्य (क्षितयः) नजदीक और दूर से बलि ले आते हैं । सायण से यहाँ बलि का अर्थ हविर्लक्षणा पूजा कर दिया है ।

: : : : : : : : : : : :

बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि । (ऋ० ७, १८, १९) युद्ध में मारे गये घोड़ों के शिर को बलि के रूप में ले आये (जभ्रुः) ।

---

१. गाय के महत्त्व के लिये—

प्र हि व्रजं गोमन्तम् (ऋ० ६, ४५,२४)

गोमद्भिर्गोपतेधृषत् (ऋ०६, ४५,३१)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सायण ने ऋ० १०,१००, ९में बलि का अर्थ उपहार किया है। ऋ० १,७०, ९ में सायण ने बलि का उपायनरूप धन यह तात्पर्य लिया है।

रोथ के बृहत् जर्मन कोश में बलि के अर्थ हैं—Steuer (कर, राज्य का देय), Abgabe (कर) Tribut (कर, देय)।

७. दक्षिणा और दानस्तुति

ऋग्वेदकालीन राजनीतिक प्रक्रिया में दान और दक्षिणा (√दक्ष + इनन् + आच्) का भी महत्त्व था। निघंटु में दान के दश नाम हैं—दाति, दाशति, दासति, राति, रासाति, पृणक्षि, पृणाति, शिसति, तुज्जति, महंत। ऋग्वेद में राधस् दक्षिणा का वाचक है। दान और दक्षिणा के द्वारा राजनीतिक सत्ता को धार्मिक औचित्य प्राप्त होता था। यज्ञ आदि की पूर्णाहुति के बाद दान और दक्षिणा दी जाती थी, अतः दाता और ग्रहीता समान धार्मिक कर्म में संलग्न माने जाते थे। कह सकते हैं कि इस प्रकार समानमन्त्रात्मक सयज्ञात्मक [१] औचित्य सत्ता को प्राप्त होता था।

राजसत्ताधारियों के अतिरिक्त वणिक् और इभ्य भी दान-दक्षिणा में प्रवृत्त होते होंगे। ऋग्वेद, (६,६३,९-१०) में पुरय, सुमीढ, पेरुक, शाण्डा, पुरुगन्था आदि दातृगणों का उल्लेख है, जो घोड़ियाँ, घोड़े, भोज्य-पदार्थ आदि का दान करते हैं। ऋग्वेद(४,३४,९) में अग्निवेश शत्रि के पुत्र आग्निवेशि शत्रि का दानदाता के रूप में यशोगान किया गया है।

वशोऽश्व्य ऋषि ऋग्वेद के आठवें मण्डल (८,४६,२१-२४) में कानीत (कनीतपुत्र) पृथुश्रवस् की दानस्तुति करते हुए अपने द्वारा प्राप्त प्राणियों की संख्या बताता है, जिससे तत्कालीन आर्थिक अवस्था पर प्रकाश पड़ता है, यह जानते हुए भी कि कवित्व और दक्षिणातुष्टि ने आर्थिक यथार्थवाद को अवश्य अभिभूत किया होगा—

१. ६०,००० घोड़े
२. २०,००० उष्ट्र
३. १०,००० गायें
{ १००० श्यावी रंग की
{ १००० त्र्यरुषी रंग की
४. १० श्याव रंग के रथवाहन घोड़े
५. हिरण्य का रथ

१-५ का जोड़ ९००११

कृश काण्व ने दान में प्राप्त अपनी वस्तुओं और प्राणियों की सूची (ऋ० ८,५५,४-५, बालखिल्य) में दी है, जिससे ऋग्वेदकालीन अर्थव्यवस्था पर काफी प्रकाश पड़ता है—

---

१. यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिम वहन्ति
(ऋ० ८,५८,१, बालखिल्य)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१. १०० उजले बैल
२. १०० बाँस (वेणु)
३. १०० कुत्ते
४. १०० म्लात चर्म
५. १०० बल्वज (घास) के बोझे
६. ४०० घोड़ियाँ (अरुषीणां)

१.६ का जोड़ ९००

पृषघ्र काण्व ने भी इसी प्रकार की सूची बताई है, जो उसे पौतक्रत दस्यवेवृक से प्राप्त हुई (ऋ० ८,५६,३, बालखिल्य)

१, १०० गर्दभ
२. १०० ऊनवाली भेड़ें (स्त्री०)
३. १०० दास (शतं दासाः)

१-३ का जोड़ ३००

पहले मंत्र में (ऋ० ८,५६,२) कवि कहता है कि दस्यवे वृक ने अपनी संपत्ति (नित्यादायः) में से दस हजार (दश सहस्रा) उसे दिये।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चतुर्थ अध्याय

वैदिक राजनीतिशास्त्र का सामाजिक आधार

वैदिक अर्थव्यवस्था और समाजव्यवस्था के विषय में कतिपय आलोचकगण दो प्रकार के पूर्वाग्रहों से आविष्ट रहने के कारण अपसिद्धातों का ही प्रणयन कर सके हैं। कुछ पाश्चात्त्य शोधकों ने रोमीय क्यूरिया[1] से विशः का, यूनानी फेट्री[2] से जन का और अमरीकी आदिवासियों के जेन्स[3] से गोत्र का प्रभूत साम्य मानकर तदनुरूप ही वैदिक भारत का चित्र खींचा। जर्मनी के बर्बर अरण्यवासियों की जनसभा से वैदिक समिति का साम्य माना गया। इस प्रकार वैदिक सामग्री को स्वतंत्र यथास्थित रूप में न देखकर यूनानी, रोमीय और जर्मन सामाजिक व्यवस्था की पृष्ठभूमि में उसका मूल्यांकन हुआ। इस कारण जीमर, मैक्डोनल और कीथ के वैदिक राजनीतिशास्त्र विषयक कतिपय मंतव्य भ्रमग्रस्त हैं। दूसरी ओर, ऐतिहासिक भौतिकवाद के चक्र में बद्ध शोधकगण ऋग्वेद के यज्ञों में प्राथमिक कम्यून का अवशेष देखना चाहते हैं। यज्ञीय कर्मकांड के यज्ञोच्छिष्टवितरण में पुरातन सम्पत्तिविहीनता का रूप उन्हें दीख पड़ता है। वे अतिरंजित कल्पना का आश्रय लेकर, यह भूल जाते हैं कि इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोम आदि की प्रार्थनाओं में, दानस्तुतियों में और वैदिक यज्ञों में वैयक्तिक सम्पत्ति की जबर्दस्त ध्वनि है। जन या विशः के पास ही सारी संपत्ति का स्वत्व कभी रहा था, इसका कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता है।

(१) वैदिक युग और असमानता

संहिताओं के उत्तरवर्ती स्थलों में यत्र-तत्र, समानता (अथर्व० ३,३० और साम्य तथा समान संकल्प (ऋ० १०,१९१) आदि के पोषक कतिपय मंत्र अवश्य मिलते हैं तथापि

---

१. रोम्यूलस ने तीन रोमीय ट्राइब को दश-दश(अर्थात् कुल जोड़ ३ × १० = ३०) क्यूरिया में बाँटा था।

२. अथेंस में ट्राइब या फायल (Phyle) के उपविभाग को फेट्री (Phratry) कहते थे।

३. गेन्स या जेन्ज (Gens), क्लैन (Clan) या सेप्ट (Sept) को कहते हैं जिसमें अनेक परिवार, जन्मतः, अपना एक मूल मानते हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्यापक रूप में वैदिक संहिताओं के धार्मिक और राजनीतिक विचारों का निर्माण और उनमें वर्णित संस्थाओं का उदय असमानतावाद के संदर्भ में ही हुआ है। असमानतावाद की स्थिति को ऋग्वेद का नैचाशाख (ऋ० ३,५३,१४) शब्द पुष्ट करता है। सायण के अनुसार शूद्रयोनि में उत्पादित पुत्रपौत्रादि परंपरा वाले को नैचाशाख कहते हैं। ग्रिफिथ ने नैचाशाख का अर्थ अधमज (lowly born) किया है। असमानता के चार मूल आधार थे—(१)प्रथम, शारीरिक शक्ति में वैषम्य। शारीरिक और प्राणात्मक स्तर पर वैषम्य, वैदिक संहिताओं में सुविदित है। वैदिक साहित्य बल की उपासना से भरा हुआ है और मूल बल शारीरिक ही है।[१] अतः जो मानव अधिक सहस्वान् और शक्तिमान् था, उसका जागतिक प्रभाव अधिक हुआ होगा। (२) असमानता का दूसरा आधार था आर्थिक। रायस्पोष, वसु, वेदस्, श्री आदि के क्षेत्र में असमानता व्याप्त थी। परम्परागत धन का दायभाग, वंशानुगत, होने का ऋग्वेद में उल्लेख है। व्यापार और कृषि के क्षेत्र में भी असमानता थी। अतः धनसंबंधी वैषम्य असमानता का दूसरा आधार था। (३) इन दो प्रकार की असमानताओं—शारीरिक और संपत्तिमूलक—को तीसरी, अर्थात् राजनीतिक असमानता ने संगठनात्मक और अंशतः वैधिक आधार प्रदान किया। राट्, स्वराट्, अधिराट् विराट्, सम्राट्, सर्वराट् आदि शब्द इस बात की सूचना देते हैं कि राजनीतिक सत्ता के स्तर कितने दृढ़ संस्थाबद्ध होते जा रहे थे। सत्ता की संस्थाबद्धता, मानव-समानतावाद के बदले राजकीय प्रभुता को परिपुष्ट करती है। सभी मनुष्य राजनीतिक अधिकारोपलब्धि की दृष्टि से समान हैं, इस प्रकार का आशय वैदिक संहिताओं में कहीं नहीं मिलता हैं। उस समय, राजनीतिक सत्तावाद, सैन्यवाद के विकास के कारण भी अधिक परिपुष्ट हो रहा था। इषुधि, इष्, ज्या, वर्म आदि के संबंध में ऋग्वेद के मंत्र (ऋ०६,७५), आयुधास्त्रों की बढ़ती

---

१. प्रजामपत्य बलमिच्छमानः (ऋ० १,१७९,६)

: : : : : : : :

अस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय (ऋ० १०,१८,९)

: : : : : : : :

बलानि तन्वः (ऋ० १०,२८,११)

: : : : : : : :

संशितं वीर्यं बलम्।

संशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः॥

उदेषां बाहूऽअतिरिमुद्वर्चोऽअथो बलम्। (वा० सं० ११,८०,८१)

मेरी ब्रह्मशक्ति, मेरा वीर्य, बल तीक्ष्ण है, जिसका मैं पुरोहित हूँ। उस (यजमान) का विजयी क्षत्र तीक्ष्ण है। इन पुरुषों के बाहु को उनके वर्चस् (तेज) और बल को मैंने उत्थापित किया है। यहाँ पर स्पष्ट ही शारीरिक बल की दृढ़ कामना तत्कालीन समाज में बल की महत्ता की सूचना देती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हुई मजबूती और जटिलता के प्रमाण हैं। इस संदर्भ में वध करनेवाले शस्त्रास्त्रों से हीन जो साधारण जनता थी, उसका अधिकार-रहित होना स्वाभाविक ही था। वर्म और इषुधि से लैस, अर्वन् या वाजी या हाथी पर सवार योद्धाओं के समक्ष, सप्तसिंधु, मध्यदेश और कीकट (कीकट—ऋग्वेद, ३,५३,१४), मगध आदि की जो साधारण जनता रही होगी, उसे अपने को शक्तिहीन अनुभव करना ही पड़ता होगा। दाशराज्ञ युद्ध-जैसे भीषण समरों के समय तथा शंबर के ९९ दुर्गों को तोड़ने के समय जनता की अन्न की राशि या खेतों में लगी हुई फसल जरूर नष्ट होती होगी। अतः राजनीतिक-सैनिक सत्तावाद द्वारा शारीरिक और आर्थिक शक्तिवैषम्य से प्रजनित असमानता को पुष्टि मिलती थी। (४) इन तीन प्रकार की असमानताओं के अतिरिक्त संहिता युग में धार्मिक असमानता भी जोरों से बढ रही थी। यज्ञात्मक कर्मकांड और देवशास्त्र के विकास ने धार्मिक असमानता को परिपुष्ट किया। वरुण, मातरिश्वा, अहिर्बुध्न्य, ब्रह्मणस्पति, अज एकपात्, इन्द्र[1] आदि देवों से जनता का सीधा संपर्क नहीं हो सकता था। अग्नि-चयन, दर्शपौर्णमास, सौत्रामणि, अश्वमेघ आदि समय-सापेक्ष और अर्थसाध्य यज्ञों की व्यवस्था श्रीसंपन्न लोग ही कर सकते थे और प्रभूत दक्षिणा देने पर ही दानस्तुतियाँ लिखी जा सकती थीं। कुछ आलोचक कह सकते हैं कि ऋग्वेद में पठित लोगों के धर्म का वर्णन है और अभिचार, कृत्या, माणे, तक्मन् आदि पर आश्रित जनधर्म के लिए अथर्ववेद को देखना चाहिए। किंतु यदि यह माने भी कि अथर्ववेद में जादूटोने की प्रधानता है तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कर्मकांडात्मक धर्म के लिए, जैसे, होता, अध्वर्यु, उद्गाता आदि की आवश्यकता थी उसी प्रकार अभिचारात्मक कर्मों के लिए भी दक्ष, ओझा आदि रहे होंगे। जादूटोना (मैजिक) को धर्म का प्राथमिक रूप मानने पर भी यह मानना होगा कि चालाक और ठग लोग ही इनका अनुसरण कर सकते हैं और जनता को अपना अनुयायी बना सकते है। अतः चाहे पौरोहित्यमूलक यज्ञ हो अथवा जादूटोनामूलक तक्मन् की पूजा हो, दोनों ही अवस्था में, धर्म का विकास धार्मिक कृत्यों में दक्ष एक अलग वर्ग को जन्म देता था और साधारण जनता इस वर्ग की बात मानने को बाध्य होती थी। अतः असमानता के चौथे कारण—धार्मिक, को भी एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में परिगृहीत करना चाहिए।

इन चार कारणों से संहिता-युग में असमानता परिपुष्ट हो रही थी। यह असमानता क्यों है, इस पर सैद्धांतिक विमर्श संहिताओं में नहीं मिलता है। असमानता हिरण्यगर्भ या प्रजापति या विश्वकर्मा धाता के संकल्प के कारण है अथवा मानवों के कृत (कर्म) के अनुसार विराट् ऋत का विधान है, इस प्रश्न पर कोई संगठित विचार संहिताओं में नहीं है।

---

१. अ० १,८४,१९ में पुरोहित कवि गोतम राहूगण कहता है—हे भगवन्, तुम्हारे सिवा ऋण रक्षक (मर्डिता) नहीं हैं, मैं तुम्हारी वाणी बोलता हूँ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऋग्वेद के सामाजिक विकास को जानने के लिए दास, इभ्य, उपस्ति, वेश, वर्ण आदि शब्दों का विवेचन अपेक्षित है।

(२) दासप्रथा

ऋग्वेद में दास (√दास् + अच्) शब्द के अनेक उल्लेख हैं। निरुक्त में दास का अर्थ है—वह जो कार्य समाप्त करे।—दासो दस्यतेः। उपदासयति कर्माणि (नि०, १७)। ऋग्वेद (१,९२,८) में उषा से उस रयिकी प्राप्ति की प्रार्थना है, जो यशस्विनी है, वीरपुत्रों से भरी है, दास के वर्ग से युक्त है और प्रख्यात अर्वा जिसमें है—यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्ववदुष्यम्। यहाँ दासप्रवर्ग शब्द यह सूचित करता है कि उस समय काफी संख्या में दास रहे होंगे।

इंद्र की स्तुति में गृत्समद कहता है कि जो दास अपने को अमर समझता था, उसको, मंत्रों से संवृद्ध होकर इंद्र ने छिन्न-भिन्न कर दिया (ऋ० २, ११, २)। गृत्समद कवि इंद्र की प्रार्थना में कहता है कि हमलोग तुम्हारे शुभ्र शुष्म को प्रवर्धित करें और तुम्हारे हाथों में शुभ्र वज्र को स्थापित करें, जिससे परिवृद्ध होकर, सूर्य की सहायता से, तुम दासों के विशः को पराभूत करो—शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः (ऋ० २, ११, ४)।

दासपत्नी का भी उल्लेख है—दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन् (ऋ० १, ३२, ११)। सायण ने दासपत्नी का ऐसा अर्थ किया है—दास जिनका स्वामी है, वे हैं दासपत्नी। इंद्र ने समस्त जल का विजय किया दासपत्नी की तरह—विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः (ऋ० ५, २०, ५)।

ऋग्वेद (७, ८६, ७) में वसिष्ठ वरुण से प्रार्थना करता है कि दास के समान, दाता (मीढुषे) देव की वह सेवा करे—अरं दासो न मीढुषे कराण्यहं देवाय। बालखिल्य (ऋ० ८, ५१, ९) में भी दास का उल्लेख है—यस्याय विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः। आर्य और दास का साथ-साथ प्रयोग संभवतः इस बात की सूचना देता है कि तत्कालीन समाज इन दो बड़ी समष्टियों की अंतःक्रियाओं से निर्मित था।

यदु और तुर्व ने सेवार्थ दो सत्स्वभावशील दास, अनेक गौओं के साथ दिये, ऐसा नाभानेदिष्ठ सावर्णि दानस्तुति (ऋ० १०, ६२, १०) में कहता है।

ग्रासमैन के ऋग्वेदकोश के अनुसार दास का अर्थ दस्यु (शत्रुभावापन्न दानव) ही है। ऋग्वेद के उल्लेखों से विदित होता है कि दासगण पारिवारिक सेवा में निरत रहते होंगे। उद्योग की नितांत अविकसित अवस्था होने के कारण अभी वस्तुओं के उत्पादन में उनका उपयोग होने का कोई अवसर नहीं था। संभव है कि कुछ दास शारीरिक शक्ति में आर्यों से ज्यादा मजबूत हों, किंतु इनकी मेधा कमजोर रही होगी, अन्यथा, संघटित होकर अपने शासकों को अवश्य उलट देते। वैदिक साहित्य में दासों का उल्लेख है, किंतु दास-प्रवर्गों द्वारा विद्रोह का कोई उल्लेख नहीं है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(३) इभ्य

ऋग्वेद (१,६५,४) में पराशर ने कहा है कि जैसे राजा इभ्यों (√इ+भन्+यत्) को खाता है वैसे ही अग्नि महान् अरण्यों को दग्ध करता है। नैरुक्त प्रणाली में इभ्य का अर्थ शत्रु है। तदनुसार इस मंत्र का अर्थ होगा कि राजा शत्रुओं का मूलोच्छेद करता है। इभ्य का दूसरा अर्थ है, धनी, तदनुसार अर्थ होगा—उनका धनापहरण द्वारा राजा हनन करता है (सायण)। ग्रिफिथ ने इसका आशय यह किया है कि धनियों से कर लेकर राजा अपने राज्य का भरण करता है।[१] ग्रिफिथ की अपेक्षा सायण का अर्थ ज्यादा युक्तिसंगत है।

रोथ के बृहत् संस्कृत जर्मन कोश में इभ्य के निम्नलिखित अर्थ हैं—

जर्मन भाषा में	हिंदी
१. Gesinde	१. गृह में काम करने वाला नौकर
२. Horige	२. बंधन ग्रस्त
३. Dienerschaft	३. नौकर, सहायक
४. Hauswesen, familia	४. गृह व्यवस्था, परिवार

ऋग्वेद में कुछ उल्लेख इभ्य के हैं—

कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे ३ को जनाय (ऋ० १, ८४, १७)। गोतम राहूगण इंद्र को संबोधित करता है—कौन संतति के लिए, गृह (इभाय) के लिए, धन के लिए, अपने शरीर के लिए और परिजन (जनाय, के लिए आशीर्वचन देता है। सायण ने इभ का अर्थ गज कर दिया है।

कृणुष्व पाजः प्रसितं न पृथ्वी याहि राजेवामवो इभेन। (ऋ० ४, ४, १) वामदेव कवि अग्नि को संबोधित कर कहता है—चौड़े विस्तृत जाल की तरह अपना ऊर्जस् प्रकट करो, शक्तिशाली राजा, धनी सहायकों के साथ, जैसे जाता है वैसे जाओ।

शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुपसृजा इयध्यै। (ऋ० ६, २०, ८) सशक्त साहाय्य (शश्वत् इभं) से प्रसन्न करते हुए, हमारे पास उन्हें, इंद्र ले आया, मानो, माता को तेजस्विना बनाने के लिए। यहाँ इभ शब्द को सायण ने असुर विशेष का नाम समझ लिया है।

(४) उपस्ति और वेश

ऋग्वेद में उपस्ति के प्रयोग मिलते हैं—

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्मे अभिदासति। (ऋ० १०, ९७, २३)

---

१. ग्रिफिथ—supports his state by levying contribution from the wealthy.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भिषगार्थवण नामक कवि ओषधी की स्तुति में कहता है—हे ओषधे। तुम उत्तमा हो, वृक्ष तुम्हारे अधीनस्थ (उपस्तयः) हैं। जो हमारी हानि करना चाहता है (अभिदासति) वह हमलोगों का अधीनस्थ हो जाय।

उप नो वाजान्मिमीह्युपस्तीन् (ऋ० ७, १९, ११)

वसिष्ठ ऋषि इंद्र की प्रार्थना में कहता है—हमलोगों को शक्ति और सहायक दो। सायण ने उपस्तीन् को दो शब्द माना है। उप मिमीहि का अर्थ किया है—दो (प्रयच्छ) और स्तीन् का अर्थ किया है निवासस्थान (गृहान्)।

रोथ के कोश में उपस्ति का अर्थ है—

जर्मन भाषा में	हिंदी
१. Untergebener	= १. अधीनस्थ
२. Gesindsmann	= २. गृह का कर्मकर

वेश (√विश् + घञ्)—विपराश्रित या सेवक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद (४, ३, १३ तथा ५, ८३, ७) में दो वार इसका प्रयोग है।

रोथ के बृहत् संस्कृत-जर्मन कोश में वेश के निम्नलिखित अर्थ लिखे हैं—

जर्मन भाषा में	हिंदी
१. Nachbar	= १. पड़ोसी
२. Hintersass	= २. छोटा कृषक
३. Dienstmann	= ३. नौकर

अथर्ववेद (५, २३, १२) में वेशस् (बहु० वेशसः) प्रयोग मिलता है।

(५) पुरुषसूक्त (ऋ० १०, ९०)

वैदिक सामाजिक संस्थाओं के विकास को एक याज्ञिक और धार्मिक रूप देने का प्रयास नारायण कवि ने पुरुष सूक्त में (ऋ० १०, ९०) किया। पुरुषसूक्त वाजसनेयी संहिता में भी है, जिसमें ऋग्वेद की अपेक्षा ६ मंत्र अधिक हैं अर्थात् उसमें २२ मंत्र हैं, जब कि ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में १६ ही मंत्र हैं। नीचे पुरुषसूक्त का अनुवाद दिया जा रहा है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

पुरुष[१] एक हजार शिरवाला है, उसे एक हजार आँखें हैं और एक हजार पैर हैं। उसने भूमि को सब ओर से आवृत किया तथापि दश अंगुल अधिक ही है ॥१॥ इस मंत्र में बताया है कि सर्वप्राणिसमष्टिरूप विशाल पुरुष विश्वानुस्यूत तथा विश्वातीत भी है। निखिल दृश्य जगत् उसकी इयत्ता का बोधक नहीं है।

---

१. ऋग्वेद में पुरुष (ऋ० १०, ९७, ४, ८) और पूरुषम् (ऋ० १०, ९७, ५) प्रयोग भी मिलते हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

जो कुछ भूत और भविष्य हैं, वह सब पुरुष ही है। वह अमृतत्व का ईश्वर (ईशान) है और अन्न से संप्रवर्धित होता है ॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

इसकी महिमा यहाँ तक शक्तिमती है। पुरुष इससे भी बड़ा है। समस्त भूत उसकी एक चौथाई हैं। उसका अमृत तीन चतुर्थांश द्युलोक में है ॥३॥ सायण के अनुसार भूत, वर्तमान भविष्यत् जगत् पुरुष का सिर्फ एक पाद है और उसकी महिमामात्र है। उसका वास्तविक स्वरूप द्योतनात्मक स्वप्रकाशस्वरूप है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४॥

पुरुष तीन चतुर्थांश से ऊपर उठ गया। उसका एक चतुर्थांश पुनः यहाँ रहा। जो कुछ खाता है और जो नहीं खाता है, उसके ऊपर प्रत्येक दिशा में वह घूमा ॥४॥ 'विष्वङ् व्यक्रामत्', का अर्थ सायण ने, 'देवमनुष्यतिर्यगादि रूप से विविध होता हुआ व्याप्त किया', ऐसा लिखा है।

तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

उससे विराज् (विराट्) उत्पन्न हुआ। पुनः विराज् से पुरुष उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही भूमि के पश्चिम और पूर्व ओर वह विस्तृत (अत्यरिच्यत) होकर रहा ॥५॥ सायण ने आदिपुरुष से विराट् अर्थात् ब्रह्माण्डदेह की उत्पत्ति मानी है और विराड् से देहाभिमानी पुमान् की। पुरः का अर्थ उसने शरीर किया है। उवट ने परवर्ती सृष्टिविज्ञान की शब्दावलि का आश्रय ले (अधिपूरुषः) का अर्थ प्रधान तेज किया है और 'स जातः' का तात्पर्य क्षेत्रज्ञ सृष्टिकृत् ब्रह्मा माना है।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६॥

जब देवों ने, पुरुष को हविः स्वरूप मान, यज्ञ किया तब वसंत ऋतु घृत (आज्य) था, ग्रीष्म लकड़ी था और शरद् हविः था ॥६॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥

पुराकाल में जन्मे हुए यज्ञपुरुष को कुछ कुश घास पर प्रोक्षण (जल-छिड़कना) से पवित्र किया (प्रौक्षन्)। उससे देवताओं, साध्यगण और ऋषियों ने यज्ञ किया ॥७॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥८॥

उस सर्वहुत यज्ञ से गिरता हुआ दधिमिश्रित घृत इकट्ठा किया गया। वायु, अरण्य और ग्राम में रहनेवाले पशुओं को उसने बनाया ॥८॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे :
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥९॥

उस सर्वहुत यज्ञ से ऋचाएँ और साम उत्पन्न हुए। उसीसे छंद उत्पन्न हुए और यजुस् भी उससे उत्पन्न हुआ ॥९॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

उससे घोड़े उत्पन्न हुए और वे सभी पशु, जिनके ऊपर और नीचे दाँत होते हैं। गायें भी उससे उत्पन्न हुईं, बकरियाँ और भेड़ें भी उससे पैदा हुईं ॥१०॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य को बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

जब पुरुष को उन्होंने बाँटा तब कितने भाग उसके हुए ? उसके मुख, बाहू, जंघाए और पैर को क्या कहते हैं ? ॥११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

ब्राह्मण उसका मुख था और राजन्य उसका दोनों हाथ किया गया। जो वैश्य है, वही उसकी जंघायें हैं। दोनो पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ ॥१२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥

चन्द्रमा उसके मन से उत्पन्न हुआ और चक्षु से सूर्य उत्पन्न हुआ। उसके मुख से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए और प्राण से वायु उत्पन्न हुआ ॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ३ अकल्पयन् ॥१४॥

अंतरिक्ष नाभि से आया और शिर से द्यौः हुआ, पृथिवी पैर से और कान से दिशाएँ उत्पन्न हुईं। इस प्रकार लोकों की उत्पत्ति हुई ॥१४॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिःसप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

उसकी सात परिधियाँ थीं, इक्कीस समिधाएँ तैयार की गईं, जब देवताओं ने, यज्ञ करते हुए, पुरुष पशु को बाँधा या उसकी हत्या की ॥१५॥ उवट ने (वा० सं० ३१,१५), स्पष्टरूप में, 'अबध्नन्' का अर्थ 'हतवंतः' किया है। अबध्नन् का अर्थ सायण और महीधर ने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भावितव्वन्तः किया है। उवट ने आध्यात्मिक प्रकरण में 'अगृह्णन्' अर्थ भा किया है। सप्त से सायण और दयानन्द ने सात छंद ग्रहण किया है। तैत्तिरीय संहिता (५,१,१०,३) में २१ समिध् का ऐसा तात्पर्य व्यक्त है—

१. १२ मास
२. ५ ऋतुएँ
३. ३ लोक
४. १ आदित्य

१-४ का जोड़. २१

महीधर ने इसी आशय को स्वीकार किया है।

उवट ने २१ समित् की यों व्याख्या की है—

५ महाभूत
५ तन्मात्रा
५ बुद्धीन्द्रियाँ
५ कर्मेन्द्रियाँ
१ मन

जोड़ – २१

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवा॥ ॥१६॥

देवताओं ने यज्ञ से यज्ञ (पुरुष) का यज्ञ किया। ये पुराने धर्म थे। महिमायुक्त लोग उस द्यौः के शीर्ष (नाक = सायण के अनुसार, विराट् प्राप्ति रूप स्वर्ग) पर पहुँचे, जहाँ पर पुरातन साध्य और देवगण हैं ॥१६॥ यह मंत्र ऋग्वेद, १,१६४,५० में पुनरुक्त है। **तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्** यह मंत्रपाद् ऋ० १,१६४,४३ में भी मिलता है। 'प्रथमानि धर्माणि', ये पद, संत टामस अक्वायनास द्वारा प्रोक्त शाश्वत नियम के पूर्ववर्ती रूप जैसे प्रतीत होते हैं। पुरातन नियमों की कल्पना यूनानी दर्शन में भी है। सायण ने 'प्रथमानि धर्माणि' से, 'जगद्रूप विकारों के मुख्य धारक' ऐसा तात्पर्य ग्रहण किया है। साध्य का अर्थ, सायण के अनुसार, विराडुपास्तिसाधक है।

वैदिक सृष्टिविज्ञान और समाजविज्ञान की दृष्टि से पुरुषसूक्त महत्त्वपूर्ण है। पुरुष (पुरि + √शी + ड अथवा पुर + कुषन् = पुरुषः) का यहाँ जागतिक और अतिजागतिक स्वरूप व्यक्त किया है। लोकतांत्रिक मानववाद यहाँ अभीष्ट नहीं है। पुरुष का बध किया (अबध्नन्), इससे कतिपय आलोचक वैदिक युग में पुरुष की बलि की प्रथा थी, ऐसा मानते हैं, किन्तु नरबलि के प्रबल प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। ग्रासमैन के कोश में पुरुष के तीन अर्थ माने गये हैं—मानव, अतिमानव और आत्मा (Geist)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

६. वैदिक समाज : कतिपय सामान्य निष्कर्ष

ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर पिता (√पा+तृ) शब्द का प्रयोग मिलता हैं, जैसे, **पितरं च दृशेयं मातरं च** (ऋ० १. २४, १) । किंतु पिता के साथ-साथ जनिता (√जन्+णिच्+तृच्) शब्द का प्रयोग मिलता है— **कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान** (ऋ० ४, १७, १२) । वेदों में पिता का वैशिष्ट्य विदित है । वैदिक देवों को पितृवत् स्मरण किया गया है । जैसे, पिता-पुत्र के लिए, वैसे ही अग्नि सूपायन हो (ऋ० १, १, ९) । वशिष्ठ, इन्द्र को ही आश्रय, रक्षक और पिता मानता है— **न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन** (ऋ० ७, ३२, १९) । जिस प्रकार पिता पुत्रों के लिए, उसी प्रकार इन्द्र से क्रतु देने की प्रार्थना वशिष्ठ करता है—**इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा** (ऋ७, ३२, २६) । वैदिक समाज पिता को न केवल जनक होने के कारण अनुकंप्य और श्रद्धेय मानता था, अपितु, पिता सत्ताधर भी था, जो संकटों के समय परिवार का रक्षक था । पिता की सत्ता का संप्रवर्धित रूप ही पार्थिव नृपति में प्रकट हुआ है, इस प्रकार का मंतव्य फिलमर आदि पश्चिमी लेखकों में मिलता है ।

ऋग्वेद का समाज पाश्चात्य शोधकों के अनुसार पितृमूलक (patriarchal) था । ऋषिगण अपने नर-पूर्वजों से वंश-परम्परा का क्रमिक विकास बताते हैं, जैसे कण्व ऋषि से काण्व नामधारी अनेक ऋषि । ऐतरेय ब्राह्मण से तो ऐसा प्रतीत होता है कि पिता का पुत्र के क्रय-विक्रय[1] पर भी अधिकार था, जैसा, आजीर्गति शुनःशेप[2] की कथा से विदित होता है । पितृ-मूलकता या पितृसत्तात्मकता (patriarchy) दायविषयक आनुवंशिकता से भी पुष्ट होती थी ।

वैदिक समाज में राजनीतिक प्रक्रिया के निर्णयकारी स्थलों में कुछ लोगों का ही प्रवेश संभव था । अतः जनता का अधिकांश भाग, राजनीतिक निर्णयकारी स्थलों के प्रति प्रमादयुक्त शैथिल्य का रुख ही अपनाता रहा होगा । जो लोग कुछ अधिक जागरूक होंगे, उनमें यदा-कदा व्यवस्था के प्रति संशयी वृत्ति भी उत्पन्न होती होगी । एक अधिक मजबूत वर्ग ऐसा भी होगा, जो राजनीतिक प्रशिष की उपासना के प्रति मानसिकरूप से अनास्थावान् हो जाय । किंतु, जो मनुष्य स्पष्ट रूप से अपनी अनास्था हविष्यान्न देने से इनकार करने में अथवा बलि देने से इनकार करने में व्यक्त करे, उसका उल्लेख नहीं है । हां, असुरों, दस्युओं और पणियों का समुदाय अवश्य ही तत्कालीन व्यवस्था का सक्रिय प्रतिरोधी माना जायगा । उसके अभिद्रोह ने क्रियात्मक साकारता का रूप ग्रहण कर लिया था ।

---

१. ऐतरेय ब्रा० ७, १३-१८ ।

२. शुनः शेपो यमह्वद्गृभीतः सोअस्मान्राजा वरुणोमुमोक्तु (ऋ० १, २४, १२) ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वैदिक संहिताओं के युग में सामाजिक और राजनीतिक कर्म का महत्त्व बढ़ रहा था और शनैः-शनैः कार्यदक्षता की वृद्धि से सामाजिक पेचीदगी बढ़ रही थी, जिसका दृढ प्रमाण वाजसनेयी संहिता (अध्याय ३०) में मिलता है। किंतु दक्षताजनित पेचीदगी के उल्लेख से निम्नवर्गस्थ सदस्यों की मनोवृत्ति की सूचना नहीं मिलती है। संहितायें, मुख्यतः, अभिजात-वर्गों की बातों से संबद्ध हैं। उनसे, निम्नवर्गस्थ विशः, अपने कर्म के बारे में क्या सोचते थे, छोटे-छोटे काम करने में उन्हें घृणा का अनुभव होता था या नहीं, उनकी अनुभूति की अभिव्यक्ति के क्या माध्यम थे, इन सब बातों का कोई पता नहीं चलता। ऋग्वेद दस्युहत्या के वृत्तांतों से भरा पड़ा है, किंतु, किसी दस्युनेता की ग्लानिगाथा और अवसादयुक्त कहानी वहां नहीं मिलती है। अतः वैदिक समाज का सीमित वृत्तांत ही वैदिक संहिताओं से मिलता है।

संस्थाओं के विकास के आधारभूत, वैदिक सामाजिक-संघर्ष-जनित आनुभूतिक इतिहास पर भी संहिताओं से कोई प्रकाश नहीं पड़ता है। संस्थाओं के विकास में विभिन्न कर्म और कर्म के प्रति पात्रों की प्रतिक्रिया अर्थात् कर्म को वे क्या महत्त्व देते हैं, ये बातें भी महत्त्वपूर्ण हैं। पुरुषसूक्त में जिस चतुर्वर्णवाद को पुष्ट किया गया, उसके निर्माण की क्या क्रिया थी या किन संचार-साधनों से विभिन्न वर्गों में उसकी उत्पत्ति के नारायणीय सिद्धांत का परिचय या सूचना दी गयी और उसपर उनकी प्रतिक्रिया क्या हुई, इन सब बातों की कोई जानकारी नहीं मिलती है।

(७) वैदिक मानव का सत्ता-अभिज्ञान

वैदिक अर्भक को सत्ता और सत्ताधरों का ज्ञान पहले परिवार में होता था। वैदिक परिवार संयुक्त परिवार था। पिता, माता, पितृव्य, भ्राता, स्वसा, दुहिता आदि से परिवार बना था। संभवतः बालक, अग्रज और पिता के समक्ष सत्ता का प्रथम आभास पाता था। किशोरावस्था में और वयस्क होने पर, वह, दीर्घश्मश्रु, समिधा लिये हुए, पुरोहित को देखता था और यह भी देखता था कि पुरोहित किस प्रकार दक्षिणा के लिये दृढ़ाभिलाषी है। देवताओं की भीषा और वरुणपाश से यजमान को डराने की बातों में, जिसे किशोर स्पष्ट और पूरा समझ नहीं पाता होगा, उसे लोकोत्तर अप्रतिहार्य सत्ता का निर्देश मिलता होगा। उस सत्ता के संदेशवाहक पुरोहित से वह कुछ-कुछ भय खाने लगता होगा। यदा-कदा, युद्ध होने पर, वयस्कों की पुकार, सेना में काम करने के लिए हो सकती थी। सेना में सेनानी के अनुशासन में रहकर, उसे परिवारव्यतिरिक्त सत्ता का बोध होता होगा। फसल कटने के समय, राजा के लिए बलि मांगने वाले अधिकारी को देखकर और उसके व्यवहार का निरीक्षण कर उसे राजनीतिक जगत् का ज्ञान होता होगा। ग्रामणी भी प्रकृष्ट रूप में उसे सत्ता का परिदर्शन कराता था। किंतु, राजसूय और अश्वमेध यज्ञ के समय ही ग्राम और नगर-निवासियों में से कुछ को सत्ता के विराट् शक्तिधर रूप का या तो शाब्दिक अथवा चाक्षुष प्रत्यक्ष होता था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

८. वैदिक कवि की दृष्टि में मानव स्वभाव और आचरण

वैदिक कवि, सामाजिक और राजनीतिक जगत् को, विशालतर नियमविधृत जगत् का, जो देवों के प्रशिष में ही कार्य कर रहा है, एक अंग मानता है। देवों के प्रशिष अप्रतिहार्य हैं और ऋत के प्रशासन का उल्लंघन दुरतिक्रम्य है। इस प्रकार का प्रशिष-संश्लिष्ट जगत्, देवों की सत्ता और उनकी शक्ति की परिपुष्टि करता है। देवों की शक्ति से ही दस्यु या दानव या असुर पराजित होंगे, ऐसा विश्वास उस समय था। रयि, पोष, प्रजा गौ, अश्व आदि, देवों के अनुग्रह से ही प्राप्य हैं, अतः दैवी सत्ता की सार्वत्रिक परिव्याप्ति मानी जाती थी। वैदिक कवि स्वयं प्राकृतिक आपदाओं से त्रस्त था और वैदिक मानव भी उल्का, झंझा, स्तनयित्नु की भीषोत्पादक गड़गड़ाहट, वज्रपात, वर्षा के अभाव आदि से सर्वदा त्रासयुक्त रहा होगा। त्रास उसके जीवन का सतत वर्तमान तत्त्व रहा होगा और इसी कारण वह पुरोहित, राजा और देवों[1] का अनुशासन मानता होगा। अथर्ववेदोक्त कृत्यों और अभिचारों का भी त्रासोत्पन्नकारी प्रभाव सर्वदा रहा ही होगा। त्रासयुक्त होने के कारण ही, वह सुवीर पुत्रों और देवहित आयुष्य की कामना करता था। गोतम राहूगण, युग की भावना को व्यक्त करता हुआ कहता है— कौन भागता है ? (क ईषते), कौन कष्ट प्राप्त करता है ? (तुज्यते को), कौन डरता है ? (विभाय को) (ऋ० १, ८४, १७)। नैतिकता के विकास में भी इस त्रास का अवश्य ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा होगा। किंतु त्रासयुक्त[2] होने पर भी वैदिक मानव महान् आशावादी[3] था। प्रजा और रयि से सम्पन्न हो, वह दीर्घ आयुष्य का अभिलाषी था।

---

१. कुत्स आङ्गिरस रुद्र की प्रार्थना में कहता है—आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु (ऋ० १, ११४, १०)। हे शत्रुनाशक, तुम्हारा गोहननकारी आयुध और पुरुषहननकारी आयुध हमसे दूर रहें और हमलोगो में तुम्हारा सुख (सुम्न) रहे।

२. नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः (अथर्व० ९, ३, १२)।
: : : : : : : :
सर्वं संसिष्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् (अथर्व० ११, ८, १३, १८)।
: : : : : : : :
त्रायन्तामिमं पुरुषम् (अथर्व० ७, २। १२, ४, २५)

३. शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु (ऋ० १०, १६, ३, ३)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पञ्चम अध्याय

वैदिक राजनीतिक व्यवस्था, व्यवहार और संस्थाएँ

संहिता-साहित्य में तीन युगों का वैचारिक इतिहास मिलता है—

१. वृत्रतूर्ययुग—देवयुग या वरुणेन्द्राग्नि-युग

२. पञ्चजनयुग—मनु-दिवोदास-पृथी वैन्य-युग

३. मानवयुग—चुमुरि-धुनि-अक्षकितव-युग

देवयुग का यहाँ प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है। इसका सिर्फ तात्पर्य यही है कि उस काल में यज्ञ, कर्म और विचार द्वारा अतिमानव शक्ति की उपलब्धि में आस्था व्यक्त की जाती थी। द्यु-लोकस्थ वरुण, अन्तरिक्षस्थानीय इन्द्र और सद्मपति अग्नि, तीन विराट् धामों के विशालतम और महत्तम देव थे। वृत्र भी उसी बीते हुए युग की याद दिलाता है, क्योंकि बड़ी वीरता से उसने इन्द्र से युद्ध किया था।

देवयुग और पञ्चजनयुग ऐतिहासिक कालसंक्रमण की सूचना नहीं दे रहे हैं। यह विभाजन, किस तत्त्व को मानसिक स्तर पर प्राधान्य दिया जा रहा है, इसी का प्रकटीकरण करता है। पहले मानव-मस्तिष्क एकराट्, एकवृष, देवों के प्रशिष में चराचर जगत् को स्थित मानता था। किंतु पञ्चजन-युग में शक्तिधर मानवों का भी लौकिक महत्त्व स्वीकृत होने लगा। मनु, दिवोदास, सुदास् पृथीवैन्य आदि इस दूसरे युग के मानसिक विकास को सूचित करते हैं।

तीसरा युग था मानव-युग। इस में उद्दाम वासनाओं और प्रवृत्तियों के ऊर्जस्वी रूप के प्रकटीकरण के बदले साधारणवृत्तिसंपन्न मानवों का महत्त्व माना जाने लगा। इन्द्रवृत्र-संग्राम के बदले सार्वत्रिक स्वस्ति और सार्वलौकिक शांति का उद्घोष हुआ। पारिवारिक जीवन का महत्त्व बढ़ा। जाया और दुहिता का यशोगान होने लगा। अदिति का जयगान हुआ। शुष्म, सहस् और महस् के बदले संयम की वृत्ति को महत्ता मिली। प्रथम युग में, जो हत्या का प्राबल्य था, उसके बदले वर्णवाद का आरंभ कर एक नूतन सामष्टिक चैतन्य को जन्म देने का आंशिक यत्न किया गया। हत्या के बदले शोषण आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभकारी लगा। पिता, शासक प्रजापति का रूप छोड़ कर पारिवारिक दायित्व को वहन करने वाला सिद्ध होने लगा। पारिवारिक सदस्यों का वीर विधाता होने के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बदले पारिवारिक संपत्ति के वितरण का अधिपति होने में ही उसे अधिक आकर्षण विदित हुआ।

संहिता-साहित्य में पति (√पा + डति) शब्द के साथ अनेक शब्द संयुक्त होते हैं, उदाहरणार्थ—अधिपति, उषस्पति, गृहपति (ऋ० ६,४८,८), नृपति, प्रजापति, ब्रह्मणस्पति, मनसस्पति (वा० सं० ३७, १८), रथस्पति (ऋ० ८.६४.१०), राधस्पति, वचसस्पते, वनस्पति, बाचस्पति, वास्तोष्पति, विश्वपति शवसस्पती (ऋ० ४,३७,३), शवसस्पते (वा० सं० १५, ४३), सत्पति (ऋ० १,१७४,१। वा० स० १२, ५६), सदसस्पति। पति[1] शब्द अधिकार और सत्ता का बोधक है। नृमेध कवि ने इन्द्र को तीन वार पतिर्दिवः अर्थात् द्यु लोक का अधीश (ऋ० ८,९८ ४,५,६) कहा है। मालूम पड़ता है कि जब समाज में सत्ताधर और प्रजा का द्विविध वर्गीकरण हो गया होगा, उसी काल में पतियुक्त वैदिक शब्दों का प्रयोग हुआ होगा। सामाजिक सत्ता के निर्धारण और स्थिरीकरण की प्रक्रियाओं के विकास को ही आधाररूप मानकर उसी का अमूर्त रूप अर्थात् पतित्व अनेक अन्य शब्दों में व्यक्त हो रहा है।

नृपति शब्द का ऋग्वेद में प्रयोग है। तेज नृपति को वृद्धि के लिए पूरित करता है—आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् (ऋ० १,७१,६)। इन्द्र को नृपति कहा है—आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो (ऋ० ८,५४,६, बालखिल्य)। वाजसनेयी संहिता में "वाजानां सत्पतिं पतिम्" (१२,५६) प्रयोग आता है।

वैदिक काल में सत्ता के संधारक सूत्रों का निम्नलिखित क्रम बनाया जा सकता है—

(क) राजनीतिक सत्ताशाह

१. राट् (राजा)
२. स्वराट्
३. अधिराट् (= वा० सं० ५,२४ में प्रयुक्त जनराट्)
४. विराट्
५. सम्राट्
६. सर्वराट् (वा० सं० ५,२४)

(ख) राजनीतिक और अर्धराजनीतिक संस्थाएं

१. सभा[2]
२. समिति
३. सेना
४. विदथ (धार्मिक भी)

---

१. तुलनीय लैटिन potis तथा लिथुआनियन patis.

२. भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु। (ऋ० ६,२८,६)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(ग) सामाजिक संस्थाएँ

१. कुलपा
२. पुरोहित
३. विश्पति
४. व्राजपति. गणपति, व्रातपति

वैदिक राजनीतिक संस्थाओं और इकाइयों में कुछ मुख्य हैं, जिनका वर्णन यहाँ किया जा रहा है—

१. जन

जन का अर्थ है मनुष्यगण[1], व्यक्तिसमूह (जर्मन में geschopf = दीन जन, Leute = जन, व्यक्तिसमूह। ऋग्वेद में जन शब्द का प्रयोग है—

अस्माकं वीरा उत नो मघोनो
जनांश्च या पारयाच्छर्म या च। (ऋ० १,१४०,१२)
: : : : : :
जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः (ऋ० ५,११,१)
: : : : : :
यस्ता चकार स कुहस्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु (ऋ० ६,२१,४)
: : : : : :
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अतितस्थौ व ऊती मरुतो यमावत
(ऋ० १,६४,१३)
: : : : : :
जनानां यो असुरो विधर्ता (ऋ० ७,५६, २४)
जो प्राणयुक्त है और लोगों का अधीश है।

ऋग्वेद के पञ्चजनाः आदि प्रयोगों में जन शब्द का प्रजाति अथवा जनपद विषयक तकनीकी अर्थ मिलता है। गृत्समद अग्नि के विषय में कहता है—जनसी उभे अनु (ऋ० २,२,४)। यहाँ दैव और मानुष दोनों जनों से तात्पर्य। जनस् का लैटिन के जीनस (Genus) शब्द से साम्य है।

---

१. इसी सामान्य अर्थ में जन के प्रयोग वाजसनेयी संहिता में हैं—ये जनेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। (१६,६२)
: : : : : : : :
जनराडसि रक्षोहा (५,२४)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(२) विश्

विश् का अर्थ है घर, जैसे इस मंत्र में—अश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु (ऋ० ७, ६७, ७)। किंतु राजनीतिक दृष्टि से इसका अर्थ जनता, लोक (जर्मन में Stamm = परिवार, गृह, Volk, Gemeinde) आदि है। ऋग्वेद में इस शब्द के प्रयोग मिलते हैं—

स इज्जनेन[1] स विशा स जन्मना
स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः। (ऋ० २, २६, ३)

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्।
(ऋ० ६, १, ८)

सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः (ऋ० ६, २६, १। ८, ६०, ११)

अग्नि को विशों का दूत कहा है—अग्ने दूतो विशामसि (ऋ० १, २६, ५)।

× × ×

अग्नि से विशः का सम्पर्क माना है—

विशो वि तारीत्।
विशो यदह्वे नृभिः सनीडा। (ऋ० १, ६९, ३)

परुच्छेप ऋषि कहता है कि अग्निशिखा ही जिसका केश है, ऐसे शक्तिशाली अग्नि (शोचिष्केशं वृषणं—ऋ० १, १२७, २) को विशः, गति के लिये प्रकृष्ट रूप से प्रीतियुक्त करें (विशः प्रावन्तु, जूतय विशः ऋ० १, १२७, २)। अग्नि विशों का पति है—विश्वासां त्वा विशांपतिः (ऋ० ५, १२७, ८)।

ऐसा मानने का स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि विशः के समस्त मनुष्य सगोत्र[2] होते थे। दूसरी ओर जन का अर्थ मात्र साधारण जनता मानने से पञ्चजनाः आदि शब्दों की ऐतिहासिक संगति नहीं बैठती है।

मैत्रायणी संहिता (२, २, १) में 'काम्या इष्टयः' प्रकरण में वरुण को देवों का राजा माना है और दैवी तथा मानुषी विशः का उल्लेख है—वरुणो वै देवानां राजा स राज्यस्यावगमयिता तमेव भागधेयेनोपासरत्स एनं राज्यमवगमयत्येतद्वै नानाविश्यमुभयीमेवैतेन विशमवगच्छति दैवीं च मानुषीं च।

विश्पति शब्द भी संहिताओं में प्रयुक्त हुआ है—प्रेत मरुत स्ततवस एना विश्पत्यामु राजानमभि। (मैत्रायणी सं० २, २, १)। विश्पति के कई अर्थ हो सकते हैं—

---

१. यहाँ जन और विश् में स्पष्ट अंतर है।

२. किंतु द्रष्टव्य—सजातानां मध्यमेष्ठेयाय राज्ञाम् (मै० सं० २, १२, ५)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१. विश् [प्रजा) का पति। राज्ञः स्तुति सूक्त (ऋ० १० १७३) पर भाष्य करते हुए सायण ने विशः का अर्थ प्रजा किया है।

२. राजा (विशां पतिः)

३. कैंटन (canton—उपमण्डल) का पति

४. गृहपति मानव

अथवा

गृहपति अग्नि (गार्हपत्य अग्नि अथवा सभा-स्थल का अग्नि)

अग्निं मग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्। (ऋ० १, १२, २)

मैत्रायणी संहिता में अग्नि को विशस्पते कह कर संबोधित किया है—**प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम्** (मै० सं० १, ११, ४)। देवविशा भी प्रयुक्त है-**देवविशा वै मरुतो न वै विशा प्रत्नं घ्नन्ति देवविश एवैनं निर्याच्य स्तृणुते** (मै० सं० २, १, ९)।

जनता शब्द का भी मैत्रायणी संहिता में प्रयोग है—**पूर्वार्धेऽन्यां जनताया गां निदध्यात्** (मै० सं० २, १, ९)

वैदिक युग के आरंभ में नरपति, विशः के समस्त सदस्यों द्वारा अथवा वयस्क नर सदस्यों द्वारा चुना जाता था, ऐसी कल्पना अविश्वसनीय प्रतीत होती है। "त्वा विशः वृणतां राज्याय,, मंत्र में अमरीकी राष्ट्रपति के चुनाव का एक लब्धाकार निर्देश मानना, हमारी कल्पना-शक्ति की उर्वरता अवश्य व्यक्त करता है, किंतु सत्य से दूर है। ऐसा मालूम पड़ता है कि आपत्तियों के समय और युद्धकाल में विशः के सारे लोग स्थानविशेष पर किसी सशक्त, वाचाल और चालाक व्यक्ति को जोर-जोर से शब्द करके मुख्य और श्रेष्ठ मान लेते होंगे। मुख्यता और श्रेष्ठता प्राप्त व्यक्ति, कालक्रम में, वांशिक रक्त की रागात्मकता से प्रभावित हो अपनी मुख्यता को अपनी संतान में भी स्वीकार करा लेते थे। परंपरावश, अभिषेक-काल में, विशः के मुख्य लोगों द्वारा स्वीकृति सूचक कुछ औपचारिक कृत्य अवश्य किये जाते रहे होंगे, किंतु व्यवहार में वांशिक नरपतिप्रथा मजबूत होती चली गयी। ऋग्वेद में वांशिक राजतंत्र के अनेक प्रबल प्रमाण मिलते हैं, जिनका द्वितीय अध्याय में उल्लेख किया गया है। किन्तु, ऋग्वेद का त्रसदस्यु और अथर्ववेद का परिक्षित्[१], मात्र राजनीतिक सत्ता से संतुष्ट न हो किंचित् देवत्व का भी दावा करते हैं।

---

१. राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोमर्त्यां अति
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः।
: : : : : : : : :
राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः।
: : : : : : : : :
जनः स भद्रमेधते राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः। (अथर्व० २०,१२७, ७; ९; १०)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुदास् और त्रसदस्यु के उदाहरणों के रहते हुए ऋग्वेद में संप्रभुतासंपन्न विशःसमाधृत समिति की क्रियात्मिका सत्ता मानना स्पष्ट विरोधाभास हैं। ऋग्वेद में भिषगाथर्वण कवि का एक मंत्र है—

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समितावि्व,
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः।
(१० १०, ९, ६)

जिसके पास में औषधियाँ काफी मात्रा में हैं, जैसे राजा लोग समिति में, वह विप्र वैद्य कहा जाता है, वह राक्षसहन्ता और बीमारियों को दूर भगाने वाला है। यहाँ राजा की तुलना भिषक् से की है और समिति की औषधियों से। इस तुलना से स्पष्ट है कि समिति को शक्तिशालिनी प्रभुतासंपन्न इकाई मानना कितना भ्रामक होगा। सायण ने यहाँ समिति का अर्थ संग्राम किया है और माना है कि जैसे राजालोग संग्राम में संग होते हैं।

(३) कुलपा और व्राजपति

परित्वासते निधिभिः सखायः कुलपां न व्राजपतिं चरन्तम्।
(ऋ० १०,१७९,२)

: : : : : : : :

एषा ते कुलपा शजन् (अथर्व० १,१४,३)

व्राजपति का अर्थ है ग्राम की सेना का नेता (Anfuhren)। कुलपा का अर्थ है कुल (Geschelecht = कुल, संतति) का रक्षक (Gemeindehaupt)। सत्ता-स्तरीकरण की दृष्टि से व्राजपति का स्थान कुलपा से ऊँचा है।

सायण ने 'गोमति' व्रजे (ऋ० ७,३२,१०) का अर्थ गोयुक्तगोष्ठ किया है। अथर्ववेद (१,१६,१) में व्राज शब्द आया है— ये ऽमावास्यां रात्रिमुदस्थु व्रजमत्रिणः।

(४) गण और व्रात

अक्षकितवसूक्त (ऋ० १०,३४) में, संभवतः, प्रतीकात्मक प्रयोग में, एक ऐसा उल्लेख है, जिससे राजनीतिक संस्था पर प्रकाश पड़ता है। वहाँ महान् गण के सेनानी और व्रात के प्रथम राजा को संबोधित किया गया है—यो वः सेनानीर्महतोगणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो वभूव। इससे मालूम पड़ता है कि गण और व्रात अभी राजनीति के तकनीकी शब्द नहीं थे।

गण (√गण् + अच) का प्रयोग देवताओं के साथ भी हैं—मारुतं गणं (ऋ० १,१४, ३, वा० सं० १८,१५), मरुतो गणानामधिपतयः (तै० स० ३,४,५,१)। सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ये प्रयोग है—सेनानीर्महतो गणस्य (अथर्व० ६,११८,१), गणान्मे तर्पयत सर्वगणं मातर्पयत···गणा मे मा वितृष (तै० सं० ३, १,८,१)। वाजसनेयी संहिता (२३,१९) में गणानां त्वागणपतिम् से पौराणिक गणेश का कोई तात्पर्य नहीं है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्रात के कुछ अन्य वैदिक उल्लेख हैं—

व्रातंव्रातं गणंगणं सुशप्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे
(ऋ० ३,२६,६)

: : : : : : : :

जीवं व्रात सचेमहि (ऋ० १०,५७,५)

विश्वेदेवाः की स्तुति में गोपायन का कथन है—

सर्वे व्राता वरुणस्याभूवन् (तै० सं० १,८,१०,२)

वाजसनेयी संहिता (१६,२५) में व्रातपति शब्द, नमोव्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो और व्रातसाह शब्द ऋग्वेद (६,७५,९) में प्रयुक्त हुए हैं।

(५) विदथ

रोथ के अनुसार विदथ के निम्नलिखित अर्थ हैं—

जर्मन		हिंदी (लेखक द्वारा)
१. Weisung	=	आदेश, उपदेश
Gebot	=	आज्ञा, हुक्म, विधि
Anordnung	=	व्यवस्था, नियुक्ति
Ordnung	=	व्यवस्थाकरण, प्रबंध
२. Ansage	=	निमंत्रण
Aufgebot	=	प्रकाशन
Versammlung	=	एकत्रीकरण
Verein	=	समुदाय
३. Festgenossenschaft	=	उत्सवात्मक निगम
Versammlung zum Gottesdienst	=	देवभृति के लिए धार्मिक समिति
४. Kriegerisches Aufgebot	=	युद्ध-संबंधी प्रकाशन

ऋग्वेद के निम्नलिखित मंत्र में तीन विदथों का उल्लेख है—

बहवःसूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः। (ऋ० ७,६६,१०)

मित्रावरुणों की स्तुति में वसिष्ठ कहता है कि सूर्य जिनका चक्षुः है, अग्नि जिनकी जिह्वा है, ऋत को जो संवर्धित करते हैं, ऐसे अनेक देव हैं, जो तीन विदथों को अपनी बुद्धि से निर्दिष्ट करते हैं, (येमुः), विशेष बल से समस्त वस्तुओं को (निर्दिष्ट करते हैं)। तीन विदथ का अर्थ सायण ने तीन क्षित्यादिस्थान किया है। लुडविग के अनुसार तीन विदथ से तीन वर्ण अपेक्षित हैं। गेल्डनर ने विदथ का अर्थ Erkenntnisse (ज्ञान, प्रत्यक्ष,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विवेक, प्रज्ञा) किया है। तीन संख्या से, तीन याज्ञिक ज्ञान का अभिप्राय है। सायण ने धीति का अर्थ कर्म कर दिया है। तीन विदथों का अन्यत्र भी उल्लेख है— वेदयस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः (ऋ० ६. ५१, २)।—अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः (ऋ० ८,३९,९)। यहाँ ग्रिफिथ ने तीन विदथ से द्यौः,अंतरिक्ष और पृथ्वी का ग्रहण किया है।

संहिता-साहित्य में विदथ (विद् + कथच्) का प्रकृष्ट महत्त्व है। विदथों में मंत्र-पाठ होता था—

तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भु मन्त्रं देवा अनेहसम्। (ऋ० १,४०,६)

विश्व की शक्ति इन्द्र पर तेजपूर्ण आरोहण करती है—

पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधिरोह तेजसा।

(ऋ० १, ५६,३)

गृत्समद इन्द्र से प्रार्थना करता है कि सुवीरों के साथ विदथ में हम जोर से बोलें— वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमावदेम (ऋ० २,१२,१५)।

विदथ के संबंध में निम्नलिखित मंत्र भी उल्लेखनीय है—

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥

(ऋ० २, ११,२१)

इन्द्र! तुम्हारी धनशील गौ, उसे, जो तुम्हारी प्रशंसा करता है, एक वर अवश्य दे। स्तोत्र कहनेवाले को दान दो। भाग्य हमें अप्राप्त न हो अर्थात् हम भाग्यशाली रहें। विदथ में वीर पुरुषों अथवा वीर पुत्रपौत्रों के साथ हम जोर से बोलें।

सायण ने विदथ का यज्ञ अर्थ करके यज्ञात्मक शब्दघोष का महत्त्व बताया है। मेक्डोनल ने मदन्तिवीराः विदथेषु घृष्वयः (ऋ० १,८५,१) में विदथ का अर्थ (√विध् = पूजन) देवपूजन किया है। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से विदथ का अर्थ यदि किसी प्रकार की समिति किया जाय तो कहा जा सकता है कि विदथ में वेग से अपना पक्षानुमोदन करना यज्ञकर्म के ही समान माना गया है। राजनीति और धर्म का पृथक्करण यहाँ अभीष्ट नहीं है। वाणी के द्वारा संचार महत्त्वपूर्ण धार्मिक और राजनीतिक क्रिया है।

क्षत्र और विदथ के संबंध में ऋग्वेद के कुछ महत्त्वपूर्ण मंत्र (ऋ०३,३८,३-६) यहाँ लिखे जाते हैं—

निषीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन्।
स मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अंतर्मही समृते धायसे धुः॥३॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यहाँ, गुह्य रूप धारण करते हुए, उन्होंने क्षत्र के लिए द्यावापृथिवी को विभूषित किया। मात्राओं से नापते हुए, थोड़े स्थलों को स्थिर किया, सुरक्षार्थ दृढ़ रखे हुए जगतों को अलग किया (अंतर्महो समृते) ॥३॥

आतिष्ठन्तं परिविश्वे अभूषच्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४॥

जैसे वह ऊपर उठा, सभी ने उसे आभूषित किया, श्री धारण करता हुआ, स्वयं-ज्योति, वह चलता है। उस वृषभ का, असुर का, वह महान् नाम है, वह विश्वरूप अमृत में स्थित हुआ ॥४॥

असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ती पूर्वीः।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधासे ॥५॥

पुरातन वृषभ ने संतति को जन्म दिया, इस विशाल जल ने उसे उत्तेजना दी है। द्यौः के पुत्र (पौत्र) रूप दोनों राजाओं ! तुमलोगों ने पहले से ही विदथ के मंत्रों से, क्षत्र को प्राप्त किया है।

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वा अपि वायुकेशान् ॥६॥

राजाओ ! विदथ में तीन स्थान (द्यौः, अंतरिक्ष और पृथ्वी), अनेक, समस्त, अपनी उपस्थिति से (सदांसि) आभूषित करते हो। मन से जाते हुए, वहाँ मैंने गंधर्वों को, जिनके केश वायु से संपादित होते थे, देखा ॥६॥

इन चार मंत्रों का राजनीतिक अन्तःतात्पर्य विचारणीय है। द्यावापृथिवी को क्षत्र-प्राप्ति के लिए आभूषित करना तथा यह कथन कि विदथ के मंत्रों से क्षत्र प्राप्त होता है, राजसत्ता और धार्मिक क्रियाओं का सहसंबंध घोषित करता है।

अग्नि का भी विदथ से संबंध निम्नलिखित मंत्र में व्यक्त है—

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य अग्ने रथीरध्वराणाम्। (ऋ० ८,११,२)

हे शक्तिशाली (सहन्त्य) अग्ने, विदथों में तुम ही स्तुत्य हो। तुम यज्ञों के नेता अर्थात् रथीः हो, हव्यवाहन हो। विदथ का अर्थ सायण ने यज्ञ और ग्रिफिथ ने उत्सव (festivals) किया है।

एकत्रीकरण या समप्टि या अध्वर से संबद्ध अर्थ में विदथ्य का प्रयोग संहिताओं में मिलता है—

सादन्यं विदथ्यं सभेयम् पितृश्रवणं यो ददाशदस्मे। (ऋ० १,९१, २०)
: : : : : : : :
सभावती विदथ्ये संवाक्। (ऋ० १,१६७,३)
: : : : : : : :

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पुरूषः (अथर्व० २०,१२८,१) विदथ्या शब्द भी प्रयुक्त हुआ है—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या समेतु (ऋ० ७,४०,१)।

: : : : : : : :

आ विश्वाची विदथ्यामनक्तु (ऋ० ७,४३,३)।

वाजसनेयी संहिता (२५,२०) में विदथ शब्द प्रयुक्त हुआ है—

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः।

यहाँ उवट ने विदथ का अर्थ यज्ञ किया है और महीधर ने यज्ञगृह।

देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि (ऋ० १,१६,१) में विदथ के निर्वचन के क्रम में यास्क ने भी विदथे यज्ञे कहा है।

(६) समिति और सभा

ऋग्वेद में समिति का उल्लेख है—परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः (ऋ० ९,९२,६)। ऋग्वेद से ऐसा स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है कि समिति एक पृथक् राजनीतिक वा बौद्धिक संस्था थी। संवनन सूक्त (ऋ० १०, १९१) में इतना ही कहा है कि समिति समान हो। सभा और समिति की कार्यप्रणाली क्या थी, इस पर संहिताओं से कोई प्रकाश नहीं मिलता है। सभा और समिति द्वारा समर्थित मौखिक प्रस्तावों और एकराट् के प्रशिष् में किस प्रकार सामंजस्य उपस्थित होता था, इस पर हमें कोई निर्देश वैदिक संहिताओं से नहीं प्राप्त है।

कुत्स आङ्गिरस का कथन है कि देवताता समिति में कवि, बुद्धि का परिमार्जन करता है—कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव (ऋ० १,९५,८)। सायण ने समिति का अर्थ संहति किया है। यास्क ने देवतातो यज्ञे ऐसा अर्थ किया है। (नि०, १२, ४४)। मनो देवताता मृधस्कः (ऋ० ७,४३,३) में देवताता पद का अर्थ ग्रिफिथ के अनुसार देवसमिति (God's assembly) है।

अथर्ववेद में भी समिति का उल्लेख है—ये संग्रामा समित यस्तेषु चारु वदेम ते (अथर्व० १२,१,५६/१६,३,५२)। ते समितिः कल्पतामिह (अथर्व० ६,८८,३) व्रात्यकांड में उल्लेख है—सभाच समितिश्च (अथर्व० १५,९,२३,/७,१२,१)।

रोथ के अनुसार समिति का अर्थ जन-एकत्रीकरण (Volksversammlung) और संस्था (Bund) दोनों है। अथर्ववेद (५,९,१५/६,८८,३) के 'नास्मै समितिः कल्पते' को वह दूसरे अर्थ का समर्थक मानता है।

समितं सकल्पेथां संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ।
इषमूर्जमभि संवसानौ। (वा० सं० १२, ५७)।

वाजसनेयी संहिता (माध्यंदिन शाखा) के ऊपर लिखित मंत्र में समितं का कोई राजनीतिक महत्त्व नहीं है। वा० सं० (१२, ५१) में, सुमतिर्भूत्वस्मे में भी सुमति कोई स्पष्ट निर्दिष्ट राजनीतिक शब्द नहीं है।

सभा के वैदिक उल्लेख काफी मिलते हैं—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बृहद्वो वय उच्यते सभासु (ऋ० ६, २८, ६)
: : : : : : : :
चन्द्रो याति सभामुप (ऋ० ८,४,९)
: : : : : : : :
सभामेति कितवः (अथर्व० १०,२४,६/५,३१,६)
: : : : : : : :
ग्रामाः अरण्यं सभाः (अथर्व० १२,१,५६। वा० सं० ३,४५। १६,२४)
: : : : : : : :
पशवो ब्राह्मणस्य सभा (तै० सं० १,७,६,७)

सभा का अर्थ एकत्रीकरण, समाज, सार्वजनिक गृह (offentliches oder Gemeindehaus), एकत्रीकरण का बड़ा स्थान (Halle fur Versammlung) तथा नरपति का प्रासाद (Hof eines Fursten) है।

ऋग्वेद में सभावती (१,१६७,३), सभावान् (४,२,५) सभासहेन (१०,७१,१०) शब्दों के उल्लेख सभा के महत्त्व को प्रकट करते हैं।

(७) ग्रामणी और स्थपति

वेदज्ञ, ग्रामणी को एक राजनीतिक अधिकारी मानते हैं…

सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानेतु दक्षिणा।
सावर्णेर्देवाः प्रतिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम्॥
(ऋ० १०,६२,११)

ग्रामणी (ग्रामनेता) कल्याणयुक्त हो, वह प्रभूत धन देनेवाला (सहस्रदा) मनु है, उसकी दक्षिणा सूर्य से प्रतिद्वन्द्विता करे। देवगण सावर्णि की, जिसके साथ अश्रांत होकर हमलोग रहे हैं और शक्ति को प्राप्त किया है, आयु बढ़ावें।

इस मंत्र में ग्रामणी और सावर्णि का स्पष्ट संबंध नहीं बताया है, किंतु ग्रामणी को प्रभूतदायी मनु कहना इस बात का द्योतक है कि ग्रामणी एक परममहत्त्वपूर्ण पदाधिकृत रहा होगा।

अन्यत्र भी ग्रामणी का उल्लेख है—

दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय।
(ऋ० १०, १०७, ५)

दक्षिणादाता ही प्रथम आहूत होकर यहाँ आता है, दक्षिणादाता ग्रामणी पहले आता है। जिसने पहले दक्षिणा आरंभ की, उसे ही मैं जनों (लोगों) का नरपति मानता हूँ।

वैदिक राष्ट्र ग्रामों से ही निर्मित हुआ था, यद्यपि संभव है कि कुछ पुर, आर्य, अथवा आर्येतर, राष्ट्रांतर्गत भी हों। ऋग्वेद में विभिन्न रूप ग्राम शब्द के मिलते हैं—ग्रामजितः (५,५४,८), ग्रामम् (१०,२७,१९,१०,१४६१/१०,१४९,४), ग्रामाः (२,१२,७), ग्रामासः (१०,१२७,५), ग्रामे (१,११४,१), ग्रामेभिः (१,१००,१०), ग्राम्याः (१०,९०,८)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथर्ववेद में स्थपति शब्द का प्रयोग राजाधिकारी के रूप में है—

हतो राजा क्रिमीणामुतेषां स्थपतिर्हतः। (अथर्व० २, ३२, ५। ५,२३, ११)

क्रिमियों के राजा और स्थपति का यहाँ उल्लेख है और इससे अनुमान हो सकता है कि राजा की तरह ही स्थपति भी राजनीतिक पदाधिकारी होगा।

(८) दूत्यम्

दूत शब्द से यत् प्रत्यय करने से दूत्य बनता है—दूतस्य भागकर्मणी (पा० ४, ४, १२०)। वेदों में दूत (ऋ० १, ४४, ११) शब्द का कई बार प्रयोग है। विशः सम्बन्धी जो याग हैं, उनका पालक अग्नि, दूत अर्थात् देवताओं का वार्तावाहक है (ऋ० १, ४४, ९)। अग्नि देवों का दूत्यकर्म करता है—

यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम्। (ऋ० १, ४४, १२)

(९) स्पश

ऋग्वेद (१, १२, १) में अग्नि को दूत कहा है—अग्निं दूतं वृणीमहे। वरुण गुप्तचरों से घिरा है—**वरुणो वस्त निर्णिजम्। परिस्पशो निषेदिरे** (ऋ० १, २५, १३)।

अग्नि के शत्रु द्रोही हैं। अतः अग्नि को उन्हें दग्ध करना है—**पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः** (ऋ० ३, १८, १)। अग्नि स्वकर्मसम्पादनार्थ गुप्तचरों का भी उपयोग करता है—**प्रतिस्पशो[1] विसृज तूर्णितमो भवा** (ऋ० ४, ४, ३)। अग्नि शत्रुओं का दमन करता है—अमित्रदम्भनः (ऋ० ४, १५, ४)।

(१०) मन्त्री

वैदिक संहिताओं में पुरोहितों का उल्लेख अनेक बार आता है और होता, अध्वर्यु, उद्गाता आदि पुरोहित-भेदों का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु मन्त्री का कोई उल्लेख नहीं है। वाजसनेयी संहिता (१६, १९) में "**नमो मन्त्रिणे वाणिजाय**" आता है। यहाँ मन्त्री संज्ञा न हो वाणिज का त्रिशेषण है। महीधर के अनुसार आलोचनकुशल को मन्त्री (मत्रि गुप्तभाषणे +णिनि) कहते हैं। देवताओं के देवसखा का उल्लेख है, किन्तु दिवोदास, त्रसदस्यु के सखाओं का नामनिर्देश नहीं है। प्राड्विवाक या मुख्य न्यायाधीश का भी कोई उल्लेख नहीं है।

(११) प्रशिष और प्रशासन

राजनीतिक दृष्टि से प्रशिष एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द है। सायण के अनुसार इसका अर्थ है प्रकृष्ट शासन अर्थात् आज्ञा, अनुशिष्टि के अर्थ में शास् धातु का प्रयोग होता है। "**यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः**", यह मंत्र ऋग्वेद (१०, १२१, २) के

---

१. वैदिक स्पशः, लैटिन spex (Auspex) से तुलनीय है। स्पशः का धात्वर्थ है देखनेवाला

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अतिरिक्त वाजसनेयी संहिता (२३, १३) में भी आता है। वहाँ उवट और महीधर ने प्रशिष का अर्थ शासन किया है। जिस प्रकार विराट् विश्व में प्रशिष् की समस्त प्राणी सेवा करते हैं उसी प्रकार राजनीतिक जगत् में भी करें, ऐसा विदितार्थ राजसत्ता के समर्थकों द्वारा निकाला जा सकता है।

प्रशिष के अन्य उल्लेख हैं—

तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः। (ऋ० १, १४५, १)

अग्नि शक्ति, बल और सत्ता का पति है और उसी के साथ आज्ञापन और उपदेश (या पक्ष) हैं।

: : : : : : : :

तवेमे सप्तसिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते। (ऋ० ९, ६६, ६)

हे सोम! तुम्हारी ये सात नदियाँ, आज्ञा देने के लिए बहती हैं।

प्र + शास् के अनेक ऋग्वेदीय प्रयोग राजनीतिशास्त्र और लोकप्रशासन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, उदाहरणार्थ, प्रशासत् (१, ९५, ३), प्रशासनम् (—विश्वां अस्य प्रशासनम् ८, ७२, १), प्रशासने (१, ११२, ३), प्रशास्ता (१, ९४, ६) २, ५, ४), प्रशास्त्रम् (२, १, २। १०, ९१, १०), प्रशास्त्रात् (२, ३६, ६)।

प्रशिष की प्रकृष्टता अन्यों द्वारा उसके अनुगमन में है। जनता या इम्य जब प्रशिष के अनुसार व्यवहार करे तभी माना जायगा कि प्रशिष् का महत्त्व व्यक्त हो रहा है। इस प्रसंग में इन्द्र के लिये व्यवहृत दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। एक है अप्रतिधृष्टशवसम् (ऋ० १, ८४, २)। सायण ने इसका अर्थ किया है अप्रतिधर्षितबलं या अहिंसितबलम् अर्थात् जिसका बल रोका न जाय। दूसरा शब्द है अप्रतिष्कुतः (ऋ० १, ८४, १३)। सायण ने इसका अर्थ किया है परैरप्रतिशब्दितः अथवा प्रतिकूलशब्दरहितः। इन दोनों शब्दों से ध्वनि निकलती है कि राजनीतिक सत्ताधारी अधिराट्, शक्तिशाली था और उसी के आधार पर देव इन्द्र की शक्ति की कल्पना की गयी।

अथर्ववेद में भी प्रशिष शब्द मिलता है—

अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहा कृतं हविरदन्तु देवाः। (अथर्व० ५ १२, ११)

इस होता के प्रशिष पर, ऋत की वाणी पर, स्वाहाकृत हविष्यान्न को देवगण खायें।

यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात्। (अथर्ववेद ६, १३३, १)

जिस देव के प्रशिष के अनुसार हमलोग चलते हैं, वह दूसरे किनारे की इच्छा करें अर्थात् आरब्ध कर्म को समाप्त करावें।

तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते। (अथर्व० १३, ४, २७)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उस सूर्य के प्रशिष की ये सभी दैत्य (यातवः) उपासना करते हैं।

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पते प्रशिषा कवीनाम्। (अथर्व० १४, १, १३)

त्वष्टा ने, बृहस्पति के (और) कवियों के प्रशिष के अनुसार, सौन्दर्य के लिए कपड़े को ठीक किया (व्यदधात्)।

अथर्ववेद के इन चार उद्धरणों में होता (अर्थात् मानव कवि), देव, सूर्य, बृहस्पति और कवियों के प्रशिष का उल्लेख है। इससे प्रकट होता है कि लौकिक और उत्तर-लौकिक क्षेत्रों के प्रशासन को सूचित करने के लिए इस शब्द का प्रयोग होता था। होता और कवियों के प्रशिष की सूचना यह आशय व्यक्त करती है कि दण्डधारियों के प्रशिष के अतिरिक्त बौद्धिक और पौरोहित्य सम्पादन करनेवाले भी जनता में अपना प्रभाव व्यक्त करते थे।

(१२) नेता और नेत्री

गृत्समद ने इन्द्र को जल का नेता कहा है—यो अपां नेता स जनास इन्द्रः (ऋ० २, १२, ७)। ऋतावान् अग्नि देवी लोगों का नेता है—अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां देवीनां देव ऋतुपा ऋतावा (ऋ० ३, २०, ४)। यज्ञों का नेता भी अग्नि को कहा है—प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम् (ऋ० १०, ४६, ४)।

ऋग्वेद में नेत्री शब्द का प्रयोग राजनीतिशास्त्र और लोक-प्रशासन की दृष्टि से विचारणीय है। उषा को दिनों की नेत्री—नेत्र्यहनाम् (ऋ०७, ७७, २) कहा है। न केवल वह दिवसनेत्री है, अपितु पहले मन्त्र (ऋ० ७, ७६, ६) में गायों की नेत्री—गवां नेत्री, कही गयी है और पुनः धन की नेत्री भी—नेत्री राधसः (ऋ० ७, ७६, ६)। आधुनिक राजनीतिशास्त्र में, व्यवहारवादियों (विहेभियरलिस्ट) और मैक्स वेबर आदि के अनुसार, नेतृत्व का अध्ययन परम प्रतिपाद्य है।

वाजसनेयी संहिता (६, २) में अग्निष्टोम-यूपसंस्कार के सम्बन्ध में प्रयुक्त दो शब्द—अग्रेणी और उन्नेतृणाम् राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि कवि ने इनका अध्वरात्मक प्रयोग किया है। अग्रेणी का अर्थ उवट ने पुरःसर और उन्नेतृ का अर्थ—महीधर ने उन्नयनकर्त्ता किया है।

(१३) संग्राम-सूक्त (ऋ० ६, ७५) और ब्रह्मवर्म

वैदिक राजनीतिशास्त्र में समर-सूक्त का विशेष महत्त्व है—

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१॥

कवचयुक्त हो जब वह युद्ध की गोद में जाता है तब वह निनाद करते हुए मेघ का प्रतीक हो जाता है। अक्षत तनु से तुम विजयी बनो, वर्म की महिमा तुम्हारी रक्षा करे ॥१॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥२॥

धनुष् (धन् + उ) से हम गाय, धनुष् से युद्ध, धनुष् से तीव्र युद्धों को जीतें। धनुष् शत्रु को अपकाम अर्थात् निराशा पहुँचाता है। हम सारी दिशाओं को धनुष् से जीतें ॥२॥

वक्ष्यंती वेदा गनीगंति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ।३॥

धनुष् की ज्या (धनुष् की डोरी), कान के पास बोलने की इच्छा से, अपने प्रिय सखा से संसक्त होती है। धनुष् पर खींची जाती हुई वह, स्त्री के समान शनैः शनैः बोलती है—यह हमें युद्ध (समन) में पार लगाती हैं ॥३॥

ते आचरन्तो समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरंती अमित्रान् ॥४॥

समनस्का स्त्री के समान ये धनुष्कोटियाँ, माता के समान अपने पुत्र को गोद में धारण करती हैं। ये धनुष्कोटियाँ, जाती हुई, मिलकर (संविदाने) हमारे अमित्र शत्रुओं को हिंसित करती हुई अपविद्ध कर दें ॥४॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः संकाः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥५॥

तरकस (इषुधि = इष् + उ + धा + कि) बहुत लड़कियों का पिता, बहुत पुत्रों का पिता है, युद्ध में जाने के समय चिश्चा शब्द का उच्चारण करता है। पीठ पर रखी हुई, इषुधि, सन्नद्ध करती हुई, शब्दायमान होती हुई, सारी सेना को जीतती है।

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छंति रश्मयः ॥६॥

अच्छा सारथि, रथ में बैठा हुआ, जहाँ-जहाँ इच्छा होती है वहाँ घोड़ों को ले जाता है। उन प्रग्रहों की महिमा की स्तुति करो, जो पीछे से, अपने सारथि के संकल्प को विदित कराती हैं ॥६॥

तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययंतः ॥७॥

रथों से बंधे हुए घोड़े, जिनके खुर धूलि की वर्षा करते हैं, अपनी शक्ति दिखाते हुए तीव्र घोष करते हैं। शत्रुओं पर पैरों से गिरते हुए, कभी पलायन न करते हुए, वे घोड़े इन्हें मार डालते हैं ॥७॥

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥८॥

इसकी हविः का नाम रथवाहन है, जिस पर उसका आयुध और कवच रक्खा है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पायु भारद्वाज ऋषि कहता है कि हमलोग सर्वदा इस सहायक रथ का सुमनस्ययुक्त हो स्तवन करें ॥८॥

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवंतो गभीराः।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतो वीरा उरवो व्रातसाहाः ॥९॥

रथ के पालनकर्ता पितर लोग स्वादुषंसद (जिनका सहनिवास स्वादु है), प्राण-दाता (वयोधाः का अर्थ सायण ने अन्नदाता किया है), आपत्ति में शक्तिशाली और गम्भीर थे। वे दर्शनीय-सेनावाले, बाण-बल वाले, अहिंसनीय (अमृधाः), प्रभूतवीर, उरस्क और अनेक सैन्यगणों के पराजयकर्ता हैं ॥९॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥१०॥

सोमरस के लिए ब्राह्मणगण और पितर हमारी रक्षा करें। पापरहित द्यौः और पृथिवी हमारे लिए शिव हों। पूषन् हमारी पाप से रक्षा करे। ऋत से परिवृद्ध लोग हमारी रक्षा करें। पापेच्छु हमारा कदापि ईशान (अधीश) न बने ॥१०॥

सुपर्ण वस्ते मृगो अस्या दंतो गोभिःसंनद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः संच विच द्रवंति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ११॥

श्येन के पांख में लपेटा हुआ, मृग के शृंग में, इसका अग्रभाग है, गाय के स्नायु से सम्यक् बद्ध है, वहाँ आगे बढ़ती है। जहां नर इधर उधर दौड़ते हैं। बाण हमारा कल्याण करें और रक्षा करें ॥११॥

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२॥

सीधी दौड़नेवाली ! हमें छोड़ दो, हमारा शरीर पत्थर के समान हो। सोम सम्यक् बोले और अदिति कल्याण करे ॥१२॥

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उपजिघ्नते।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्समत्सु चोदय ॥१३॥

वह उनकी पीठ पर हनन करता है, उनके जघन पर हनन करता है। हे कोड़े, तुम घोड़ों को प्रेरित करते हो, बुद्धिमान् घोड़ों को युद्ध में प्रेरित करो ॥१३॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमांसं परिपातु विश्वतः ॥१४॥

(बायें हाथ में चमड़े का बंधा) हस्तघ्न, जो समस्त मार्गों को जानता है, सांप के समान, मुड़ी हुई, वस्तु से हाथ को आवृत करता है, वह, धनुष की ज्या की रगड़ को दूर करते हुए प्रत्येक पुरुष की सब ओर से रक्षा करे ॥१४॥

आलाक्ता या रुशीष्ण्यथो यस्या अयोमुखम्।
इदं पर्जन्यरेतस इध्वै देव्यै बृहन्नमः ॥१५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जो बाण विषाक्त, हंतृशिरस्क (या शृंगशीर्ष्ण) है, जिसका मुख लोहे का है, जो वर्षा से जन्मा है, दिव्य है, उसे हम नमस्कार करते हैं ॥१५॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कंचनोच्छिषः ॥१६॥

हे बाण ! धनुष् से छूट कर दूर जाओ, तुम ब्रह्म द्वारा तीक्ष्ण किये गये हो, शत्रुओं के पास जाओ और मारो और इनमें से कोई शेष न रह जाय ॥१६॥

यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥

जहाँ पर मुण्डित कुमारों की भांति, बाण गिरते है, वहाँ ब्रह्मणस्पति और अदिति हमें कल्याण दें, सर्वदा कल्याण करें ॥१७॥

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वशीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदंतु ॥१८॥

तुम्हारे मर्मस्थलों को कवच से आच्छादित करता हूँ। राजा सोम तुम्हें अमृत से आच्छादित करे। वरुण तुम्हारे लिए प्रभूततर सुख दे। तुम्हारे विजय में देवगण आनन्दित हों ॥१८॥

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्टयो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममांतरम् ॥१९॥

चाहे वह अपना हो या दूरस्थित पराया, जो हमें मारने की इच्छा करता है, समस्त देव उसे पराजित करें। ब्रह्म मेरा आंतरिक कवच है ॥१९॥

इन मन्त्रों से वैदिक युद्धशैली का वास्तविक चित्र मिलता है। बाणों को नाशकारी बनाने के लिए विषाक्त करना और उसके अग्रभाग को लोहे का बनाना तत्कालीन युद्धों की भयंकर क्रूरता[1] के चिह्न हैं। भयार्त योद्धा देवताओं से युद्ध में कल्याण की कामना करता है। अन्त में ब्रह्म को ही आंतरिक वर्म मानकर यह बताने की आंशिक चेष्टा है कि भौतिक वर्मों से भी श्रेष्ठतर ब्रह्म या मंत्र की शक्ति है।

दुर्ग का वैदिक प्रयोग बताता है कि इन दुर्गों में युद्धास्त्र रक्खे जाते होंगे और आपत्काल में कुछ त्राण मिलता होगा—दुर्गे चन ध्रियते विश्व आपुरु जनो (ऋ० ५,३४,७)।

१. वैदिक राजनीति की दारुण हिंसात्मकता की अभिव्यक्ति निघंटु (२,१९) में संगृहीत वधकर्म के बोधक बत्तीस नामों से होती है—दम्नोति। इनथति। ध्वरति। धूर्वति। वृणक्ति। वृश्चति। कृण्वति। कृन्तति। श्वसिति। नभते। अर्दयति। स्तृणाति। स्नेहयति। यातयति। स्फुरति। स्फुलति। निवपन्तु। अवतिरति। वियातः। आतिरत्। तडित्। आखण्डल। द्रूणाति। रम्णाति। शृणाति। शम्नाति। तृणेड्हि। ताडिह। नितोशते। निबर्हयति। मिनाति। मिनोति। घमति।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नोधा गौतम ऋषि ने इन्द्र की तुलना अरण्यभक्षी हाथियों से की है—मृगा इव हस्तिनः खादथा वना। ऋग्वेद के अनुसार हाथियो का युद्ध में उपयोग होता था। ऐसा उल्लेख है कि दो उन्मत्त हाथी, मस्तक नीचे करते हुए सपत्नों पर आक्रमण करते हैं। नितोश के दोनों पुत्रों की तरह, जो शत्रुओं का नाश और मित्रों का नन्दन करते हैं—सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका (ऋ० १०,१०६,६)।

शतारित्रा नाव का भी संभवतः व्यापार और युद्धों में उपयोग होता हो—

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्॥
(ऋ० १,११६,५)

यह कार्य, अश्विनो! तुमने समुद्र में किया, जहाँ कोई आधार नहीं, टिकने की कोई वस्तु नहीं, कोई पकड़ने की वस्तु नहीं, तुमने भुज्यु को उसके घर के पास पहुँचा दिया, सौ क्षेपणी वाली नाव में (शतारित्रां नावं)।

भुज्यु को समुद्रपार ले जाने का काम सौचक्र (पैर) वाले (शतपद्भिः) और छः घोड़ों से युक्त (षडश्वैः) तीन रथों में (त्रिभी रथैः) किया गया (ऋ० १,११६,४)।

(१४) राष्ट्र

राष्ट्र के अर्थ बोध के अनुसार ये हैं—

जर्मन	हिन्दी (लेखक द्वारा)
Reich	= राज्य, क्षेत्र (realm)
Herrschaft	= राज्यक्षेत्र, आधिपत्य
Gebiet	= प्रदेश, क्षेत्र
Land	= भूमि
Unterthanen	= जनता, लोग
Volk	= जनता

राज्ञः स्तुति विषयक ऋग्वेद का ध्रुवकविप्रोक्त सूक्त (ऋ० १०,१७३) राजनीति-शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—

आ त्वाहार्षमंतरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वांछंतु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत्॥१॥

हमारे बीच आओ, मैंने तुम्हें चुना है। ध्रुव अविचल खड़े रहो। सारे विशःगण तुम्हें चाहे, राष्ट्र तुमसे गिरने न पाये अर्थात् वियुक्त न हो।१॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः।
इंद्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय॥२॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यहाँ स्थिर (वर्तमान) रहो, तुम अपच्युत न हो, पर्वत की भाँति अविचल रहो। इन्द्र की तरह यहाँ ध्रुव खड़े रहो। यहाँ राष्ट्र का धारण करो ॥२॥ राष्ट्रमु धारय का अर्थ, सायण ने स्व-स्व कर्म में स्थापित करो, किया है।

इमर्मिन्द्रो अदीधरद्ध्रुवं ध्रुवेण हविषा।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

इस (राष्ट्री) को इन्द्र ने ध्रुव प्रतिष्ठित कराया है, ध्रुव हविष्य से (शक्तिशाली होकर)। इसके लिए सोम बोले, ब्रह्मणस्पति उसके लिए (बोले) ॥३॥

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद्ध्रुवो राजा विशामयम् ॥४॥
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।
ध्रुवं त इंद्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५॥

चौथे और पाँचवें मन्त्रों में निम्नलिखित देवताओं, मनुष्यों और भौतिक पदार्थों को ध्रुव रहने का आदेश दिया है—

१. द्यौः
२. पृथिवी
३. पर्वत
४. यह समस्त (विश्व) जगत्
५. यह विशः का राजा
६. राजा वरुण
७. देव बृहस्पति
८. इन्द्र
९. अग्नि

और मन्त्र के अंतिम पाद में कहा है कि इन्द्र और अग्नि इस राष्ट्र का ध्रुव धारण करें (राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्) ॥४-५॥

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि।
अथो त इंद्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत ॥६॥

ध्रुव हविष्य (पुरोडाशादि) से ध्रुव सोम को हम सोचें। अनन्तर इन्द्र विशः को केवल उसके (राष्ट्री के) लिए वलि लाने वाली बनावे ॥६॥ सायण ने बलिहृतः का अर्थ करस्य प्रदात्रीः किया है।

अन्तिम मंत्र से स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर-ऋग्वैदिक युग में विशः को संप्रभुता-सम्पन्न मानना निराधार अपसिद्धान्त है। विशः का कार्य था कि केवल राष्ट्री के लिए वलि प्रदान करें। ऊपर के मन्त्रों में पर्वत की भाँति ध्रुवत्व की कामना, बढ़ती हुई सत्ता के केन्द्रीकरण की सूचिका है। जब राज्य में केन्द्रीकरण होगा और प्रभुत्व का संगठन होगा तब फलस्वरूप व्यक्ति और समुदायों की स्वतंत्रता का नियंत्रण होगा। अनेक देशों के अनुभव इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं कि पूर्णसंप्रभुतासम्पन्न राज्य और उसका क्रियात्मक रूप व्यक्त करनेवाली सरकार, मानवों, निगमों, श्रेणियों, पूगों आदि की स्वतंत्रता का अपहरण करती है। राष्ट्र और राष्ट्री की अविचलता का गीत निनादित करनेवाला यह वैदिक कवि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(ऋ० १०, १७३) अवश्य ही तत्कालीन शक्तिधरों का पृष्ठपोषक रहा होगा। उसकी दृष्टि में विशः का सिर्फ यही काम रह गया है कि बलि लाकर राजा की कामना करें। स्वतंत्र राजनीतिक कर्म करना और निर्णय करना उनका कर्म नहीं है।

तैत्तिरीय संहिता में राष्ट्र शब्द के प्रयोग मिलते हैं—

नास्माद्राष्ट्रं भ्रंशत (तै० सं०, ५, ७, ४४)

: : : : : : : :

क्षत्रात् बलात् राष्ट्रात् विशः (तै० सं० ३, ४. ८, १)

मैत्रायणी संहिता में मन्त्र है—

वयं राष्ट्रे जागृयामा पुरोहिताः (मै० सं० १, ११, ४)

: : : : : : : :

राष्ट्रीय शब्द का भी प्रयोग है—

ऐन्द्राबार्हस्पत्यं हविर्निर्वपेद्यो राष्ट्रीयो नेव प्रस्तिघ्नुयात्

(मै० सं० २, १, ११)।

अथर्ववेद में भी राष्ट्र शब्द के प्रयोग प्राप्त होते हैं—

सं मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत्

(अथर्व० १०, ३, १२। १३, १, ३५)

वैदिक संहिताओं में राष्ट्रसंयुक्त अन्य पद भी मिलते हैं। तैत्तिरीय संहिता (३, ४, ८१) में राष्ट्रकाम आता है। वाजसनेयी संहिता (१०, २) में राष्ट्रदा, अथर्ववेद (१०,३, १६) में राष्ट्रदिप्सवः, तैत्तिरीय संहिता (५, ७, ४, ४,) में राष्ट्रभृति, अथर्ववेद (१९, २७, ३) में राष्ट्रभृत्य प्रयोग मिलते हैं।

राष्ट्रभृत् शब्द का अर्थ नेतृत्व का धारक (die Herrschaft pflegend या die herrschaft erehaltend) रोथ के कोश में है। यह शब्द संहिताओं में प्रयुक्त है—

ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् (अथर्व० १३, १, ३५)

: : : : : : : :

तस्मै वलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति (अथर्व १०, ८, १५)

राष्ट्री का अर्थ है स्त्री नेत्री (Fuhrerin या Herrscherin)। ऋग्वेद में प्रयोग है—

राष्ट्री देवानाम् (ऋ० ८, ८९, १०)

: : : : : : : :

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम् (ऋ० १०, १२, ३)

निघंटु के अनुसार राष्ट्री, अर्य, नियुत्वान् और इन, ये चार नाम ईश्वर अर्थात् अधीश या ईशान या राजसत्ताधारी के हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

षष्ठ अध्याय

वैदिक राजनीतिशास्त्र में राजशक्तिवाद

निघंटु के अनुसार बल के अट्ठाइस नाम हैं—ओजः, पाजः, शवः, तवः, सरः, त्वक्षः, शर्धः, बाधः, नृम्णम्, तविषी, शुष्मम्. शुष्णम्, दक्षः, वीलु, प्योत्नम्, शूषमम्, सहः, यहः, ववः, वर्गः, वृजनम्, वृक्, मज्मना, पौंस्यानि, धर्णसिः, द्रविणम्, सस्येन्द्रासः, शम्बरम्। वैदिक संहिताओं में अनेक प्रकरणों में शक्ति की महत्ता व्यक्त की गयी है। ऋग्वेद (ऋ० ८, ८८, ८। ८, ३, ४) में सहकृत (Gekraftigt, Gesteigert, Angesporrt अर्थात् बल से किया) शब्द भी मिलता है। अग्नि को सहसिन् (ऋ० ४, ११, १) तथा सहसावन्त (ऋ० १, ९१, २३) और सहसान (ऋ० १, १८९, ८) भी शक्तिशाली के अर्थ में कहा है। उत्कर्षवान् को "शवसस्पते" (ऋ०८, ४५,२०) कहकर सम्बोधित किया जाता था।

वैदिक समाज में विचिंतन की प्रधानता नहीं थी। कुछ लोग, कवि, मनीषी और चेत्ता थे, किन्तु सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रिया में बल का वैशिष्ट्य था। देवताओं को भी, कविगण, बलवान् और सहस्वान् मानते थे। बल का प्रभाव सर्वत्र व्याप्त था। करुणा, क्षमा, त्याग आदि श्रेयों का वैदिक संहिताओं में महत्त्व पूर्णतया स्वीकृत नहीं है।

कलि प्रागाथ नामक ऋषि इन्द्र की शक्ति से स्तम्भित हो कहता है—कदू महीर-धृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम् (ऋ० ८, ६६, १०) अर्थात् वृत्रघ्न इन्द्र की तविषी (शक्ति या सेना) परम अप्रतिरुद्ध (महीः अधृष्टा) है और इन्द्र की कभी हिंसा नहीं हो सकती, क्योंकि उसका शरीर-बल अहिंस्य है। इन्द्र को वलंरुज् और वृत्रखाद कहना उसकी शक्ति का महत्त्वाभिज्ञापन है—

वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः (ऋ० ३, ४५, २)

ऋग्वेद में शक्ति का प्रकृष्ट महत्त्व है। शक्ति को शची के रूप में भी मूर्त किया गया और इन्द्र को शचीपति की संज्ञा दी गयी है। ऋग्वेद (५, ४४, १०) में अवत्सार काश्यप नामक ऋषि कहता है कि शविष्ठ वाज की संप्राप्ति में क्षत्र, मनस, यजत, सध्री,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एवावद (एव + आ + वद्) की विचारणा (चित्ति), और अवत्सार[1] के मधुर गानों ने अपना योगदान किया। विश्ववार, मायी और यजत शक्ति संप्राप्ति के अपने कार्य में परिपान (=सोमपान) का भी सहारा लेते हैं। सदापृण यजत, वाहुवृक्त, श्रुतवित् और तर्य (ऋ० ५, ४५, १२) नामक ऋषि भी विद्वेषकारियों के वध में अपनी भूमिका अदा करते हैं।

ऋग्वेद (१०, ८३, ५) में बलदेय (Kraftverleihung = शक्तिप्रदान) शब्द भी मिलता है। ऋग्वेद में बल (बल + अच्) की महिमा व्यक्त करनेवाले मन्त्र अनेक हैं, उदाहरणार्थ—

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सु नः
बलं तोकायातनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि। (ऋ० ३, ५३, १८)

इन्द्र ! हमारे शरीर में बल धारण कराओ। वृषभों (अनड्वानों) में भी बल दो। हमारे शिशुओं और सन्ततियों में जीवनार्थ बल दो। तुम ही बल देने वाले हो।

ऊपर के मंत्र में वैदिक कवि न केवल अपने और अपनी सन्तान[2] के लिए बल की याचना करता है, अपितु पशुजगत् में भी वल अभिवांछित है। बल के आधारों और प्रकारों का यहाँ उल्लेख नहीं है, किन्तु सन्दर्भ से प्रतीत होता है कि कवि शारीरिक बल की याचना कर रहा है। उसका मन्तव्य प्लेटो के रिपब्लिक के शिक्षादर्शन से समानता रखता है। पश्चिमी विचारकों में मैकियावेली, हाब्स, विस्मार्क आदि ने वल की प्रभूत स्तुति कर इसे राजनीतिक जीवन का आधार माना है।

ऋग्वेद के युग में दण्डशक्ति की प्रधानता थी। युद्ध में जाने वाले सेनानी को "रथीतमो रथीनाम्" (ऋ० ८,४५,७) बनना पड़ता था। अधिरथम् (ऋ० १०,९८,४। १०,१०२,२), अधिरथा (ऋ० १०,९८,१०), और अधिरथानि (ऋ० १०,९८,९) पद तत्कालीन प्रशासनिक और सैन्य-व्यवस्था में रथों और अश्वों के महत्त्व को व्यक्त करते हैं। अन्तिम राजनीतिक निर्णय-सम्पादन में सहमति, सामञ्जस्य, सौमनस्य, बीचबीचाव, परिमर्श आदि के असफल होने पर युद्ध ही तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था का निर्णयकारक था। इसके पर्याप्त प्रमाण यह घोषणा करते हैं कि शक्त्याधृत यथार्थवाद ही वैदिक राजनीतिशास्त्र का मुख्य व्यावहारिक प्रतिपाद्य है।

---

१. ऋग्वेदानुक्रमणी और आश्वलायन श्रौतसूत्र के अनुसार अवत्सार, कश्यप का वंशज था और कौषीतकी ब्राह्मण के अनुसार प्रश्रवण का पुत्र था।

२. नृभिःसुवीरउच्यसे (ऋ० ६, ४५, ६), अर्थात् अधिक पुरुष वाला ही सुवीर कहा जाता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रभूत बलशाली के लिए ऋग्वेद में विरप्शी शब्द व्यवहृत हुआ हैं। मैत्रावरुण अगस्त्यने मरुत् को विरप्शी कहा है—जनं यमुग्रस्: तवसो विरप्शिन: (ऋ० १,१६६,८)। वज्री मघवा विरप्शी मे यज्ञम् (वा. सं., २०,४९) में, महीधर ने विरप्शी का अर्थ महान् किया है।

१. क्षत्र

क्षत्र के अर्थ रोथके अनुसार हैं—

जर्मन	हिंदी (लेखक द्वारा)
१. Herrschaft	—आधिपत्य, सत्ता, प्रभुत्व
Obergewalt	—उच्चस्तरीय प्रशासन
Macht	—शक्ति
२. Regierung	—राज्य, शासन, सरकार, निर्देश

क्षत्र (क्षण् + क्विप् + त्रै + क) शब्द वैदिक साहित्य में शक्ति, नेतृत्व आधिपत्य, राजत्व आदि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, उदाहरणार्थ ये निर्देश हैं—

राजाना क्षत्रमहृणीयमाना
सहस्रस्थूणं बिभृथ: सह द्वौ। (ऋ० ५,६२,६)

(मित्रावरुणों की स्तुति में श्रुतिविदात्रेय का कथन)

: : : : : : : : : :

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह्क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः
(ऋ० ४,१७,१)

(इन्द्र की स्तुति में वामदेव का कथन)

सव्य आङ्गिरस ने द्यौ:के दृढ मनको स्वक्षत्र कहा है—स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः (ऋ० १,५४,३)। प्रभूवसु आङ्गिरस ने इन्द्र के मन को स्वक्षत्र बताया है—स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः (ऋ० ५,३५,४)। इस प्रकार के विशेषण राजनीतिशास्त्रीय शब्द क्षत्र के व्यापक प्रयोग के सूचक हैं। ऋग्वेद में स्वक्षत्राय (५,७८,१) और स्वक्षत्रेभिः (१,१६५,५) प्रयोग भी प्राप्त हैं।

क्षत्र के अन्य प्रयोग भी वैदिक राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं—

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि।
(ऋ० १,१५७,२)

: : : : : : : : : :

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत। (ऋ० ७,६६,११) वरुण, मित्र, अर्यमा, राजाओं ने उस क्षत्र को प्राप्त किया, जो अन्यों से अप्राप्तव्य है।

: : : : : : : : : : : :

क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नृन् (ऋ० ८,३३,१७)

: : : : : : : : : : : :

ब्रह्मक्षत्रे (तै० सं० १,६,१)

: : : : : : : : : : : :

क्षत्राय च विशे च समदं दध्याम् (तै० सं० २,२,११,२)

: : : : : : : : : : :

क्षत्राणां क्षत्रपतिरेधि (वा० सं० १०,१७)

: : : : : : : : : : : :

वर्ष्मं क्षत्राणामयमस्तु राजा (अथर्व ४,२२,)

: : : : : : : : : : : :

बृहस्पतिमिव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् (अथर्व १५,१०,५)

क्षत्र का वर्चस् और बल के साथ उल्लेख है—**मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय** (ऋ० १०, १८,९)। रयि के साथ भी प्रयोग प्राप्त होता है—**मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद्रयिम्** (अथर्व ० ३,५;२) सुवीर राष्ट्र तथा अजर और विजयप्रद क्षत्र की कामना है—**एषामहमायुधा संस्याम्येषाँ राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि। एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णु** (अथर्व० ३,१९,५)। क्षत्र धारण किया जाता है, ऐसी अभिव्यक्ति है—**स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून्** (ऋ० ४,४,८)। क्षत्र की वृद्धि हो सकती है—**विपोन द्युम्ना नियुवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन्** (ऋ० ८,१९,३३)।

वाजसनेयी संहिता में क्षत्रभृत् (२७,७) और क्षत्रवनि (वाज० १,१७।३,२७,६,३) का प्रयोग मिलता है। क्षत्रपति का भी प्रयोग है—**क्षत्राणां क्षत्रपतिरेधि** (वा० सं० १०,१७)

अथर्ववेद (१०,५,२) में क्षत्रयोग शब्द का उल्लेख है—**जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि**। अर्थात् जयकारी योग के लिए क्षत्र-संयोजनकारियों से मैं तुम्हें संयुक्त करता हूँ।

२. स्वराट् और एकराट्

वैदिक शक्तिवाद के व्यापक राजनीतिक स्वरूप को जानने के लिए राट् और राष्ट्र आदि शब्दों को ही, जिनका विश्लेषण हो चुका है, जानना पर्याप्त नहीं है, किन्तु निम्नलिखित मूल शब्दों का परिज्ञान भी अपेक्षित है—

१. स्वराट् (द्रष्टव्य, स्वराज्यसूक्त)
२. अभिराष्ट्र—प्रदेशविजयी
३. अधिराज् (अधिराट्)—सर्वोच्च राजा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४. विराट्—प्रभूत शक्तिमान्, सर्वोच्च, पृथुविजयी

५. सम्राट्

स्वराट् (स्वन् + ड + राज् + क्विप्) शब्द वैदिक राजनीतिशास्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मूलप्रत्यय है। इसका अर्थ है स्वयंप्रभाशील, जिसे जर्मन भाषा में selbstleuchtend कहेंगे। "राजृ दीप्तौ" धातु के अनुसार व्युत्पत्ति करने से स्वराट् शब्द में तेज, दीप्ति, कान्ति, प्रभा आदि की ही प्रधानता है। निघंटु के अनुसार ऐश्वर्यकर्म के बोधक चार वैदिक तिङन्त पद हैं—इरज्यति, पत्यते, क्षयति और राजति। सायण ने (ऋ० १०,१००, १० पर) राष्ट्री का अर्थ राजनशीला किया है। स्वराट् का दूसरा अर्थ हो सकता है—अन्यों पर प्रभुत्व स्थापित करने वाला व्यक्ति, जिसे जर्मन भाषा में selbstherrschend कहेंगे। स्वराज्य का अर्थ है अपना राज्य (= जर्मन das eigene Reich)

ऋग्वेद के राजनीतिशास्त्र का एक अतिमात्र गम्भीर और विचारणीय मूल शब्द स्वराजः या स्वराट् है। इस सम्बन्ध में कुछ उद्धरण ये हैं—

(क) स्वराजः

१. एह स्वराजो अश्विना वहन्तु (ऋ० १,१८१,२)।
(अश्विनों की स्तुति में)

२. इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो (ऋ० २,२८,१)।
(वरुण की स्तुति में)

३. युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य (ऋ० ३,४६,१)।
(इन्द्र की स्तुति में)

४. उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः (ऋ० ५,५८,१)
(मरुत् की स्तुति में)

५. उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते (ऋ०७,६६,६)
(आदित्यों की स्तुति में)

६. उत स्वराजो अश्विना (ऋ० ८,९४,४)
(मरुत् की स्तुति में)

७. महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो (ऋ० १०,१२०,८)
(इन्द्र की स्तुति में)

(ख) स्वराजम्

८. उप स्वराजमासते (ऋ० १,३६,७)
(अग्नि की स्तुति में)

९. पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं (ऋ० ३,४९,३)
(इन्द्र की स्तुति में)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१०. तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे (ऋ० ८,६१,२)
(इन्द्र की स्तुति में)

११. नमस्विन उपस्वराजमासते (ऋ० ८,६९,१७)
(इन्द्र की स्तुति में)

१२. इन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम् (ऋ० ८,८१,४)
(इन्द्र की स्तुति में)

(ग) स्वराजे

१३. इदं नमो वृषभाय स्वराजे (ऋ० १,५१,१५)
(इन्द्र की स्तुति में)

१४. इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे (ऋ० ७,१०१,५)
(पर्जन्य की स्तुति में)

१५. उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् ।
पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् (ऋ० ८,१२,१४)
(इन्द्र की स्तुति में)

(घ) स्वराज्यम्

१६. गोतम राहुगण द्वारा इन्द्र की स्तुति में १६ मन्त्रों का स्वराज्यसूक्त (ऋ० १,८०) है, जिसमें १६ वार अर्चन्नु स्वराज्यम् पद आते हैं।

१७. गोतम राहूगण द्वारा इन्द की स्तुति में ३ वार (ऋ० १,८४,१०-१२) वस्वीरनु स्वराज्यम् का प्रयोग है।

१८. अत्रिमनुस्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः (ऋ० २,८,५)
(गृत्समद द्वारा अग्नि की स्तुति में)

१९. न मिनन्ति स्वराज्यम् (ऋ० ५, ८२, २) (सविता की स्तुति में)

२०. यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यम् (ऋ० ८, ९३, ११)

(ङ) स्वराज्ये

२१. व्यचिष्ठे बहुपाच्ये यतेमहि स्वराज्ये (ऋ० ५, ६६, ६)
(रातहव्य आत्रेय द्वारा मित्रावरुणों की स्तुति में)

(च) ऋग्वेद का स्वराज्यसूक्त (ऋ० १/८०)

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१॥

इस प्रकार सोम में, मद में, ब्रह्मा ने तुम्हारा वर्धन किया है। तुम शविष्ठ (पूर्ण शक्तिधर) और वज्रधारी हो। तुमने अपने ओज से अहिवृत्र को निकाल दिया है, अपने स्वराज्य[1] की अर्चना करते हुए अर्थात् प्रकट करते हुए ॥१॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघंथ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२॥

श्येन पक्षी द्वारा लाया गया, प्रवहणशील (अथवा सेचन-स्वभाव), मदकारी, अभिषुत सोम तुम्हें आह्लादित करता है। हे वज्रिन्, सोमपायी हो, अपने ओज से तुमने जल में (अथवा अन्तरिक्ष में) वृत्र को मारा था, अपने स्वराज्य की अर्चना करते हुए ॥२॥

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इंद्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥३॥

आगे बढ़ो और शत्रु का सामना करो (अभीहि) और धृष्णु (शत्रुजेता) बनो। तुम्हारे वज्र को कोई रोक नहीं सकता। नृम्ण अर्थात् पुरुषत्व ही तुम्हारी शक्ति (शवः) है। वृत्र को मारो और आप (जल) का विजय करो, अपने स्वराज्य की अर्चना करते हुए ॥३॥

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघंथ निर्दिवः।
सृजा मरुत्वतोरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥

तुमने पृथ्वी पर वृत्र को मारा है, तुमने द्युलोक में उसका वध किया है। मरुद्-गण द्वारा साहाय्यप्राप्त, प्राणितृप्तकारी (जीवधन्याः), जल को बहने दो, अपने स्वराज्य की अर्चना करते हुए ॥४॥

इंद्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेणहीड़ितः।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५॥

क्रोधयुक्त इंद्र ने अपने बल से शत्रु पर आक्रमण करते हुए कंपमान वृत्र की पीठ पर जोर से मारा और जल को बहने के लिए (सर्माय) प्रेरित (उन्मुक्त) कर दिया, इस प्रकार अपने स्वराज्य की अर्चना करते हुए ॥५॥

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा।
मंदान इंद्रो अंधसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥६॥

शतपर्व (शतधारायुक्त) वज्र से इंद्र ने उसकी पीठ (सानु) में मारा और रस से आनन्दोपलब्धि करते हुए तथा सखाओं के लिए अन्न (वृद्धि) की इच्छा करते हुए, अपने स्वराज्य की अर्चना करते हुए ॥६॥

इंद्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥७॥

इंद्र, तुम वाहनरूप मेघयुक्त (अद्रि = मेघ। इदद्रिवः) हो, तुम्हारा अप्रतिहत वीर्य है। उस मायावी (लोकोपद्रवकारी वंचक) मृग की तुमने माया से हत्या की, अपने स्वराज्य की अर्चना करते हुए ॥७॥ माया का यहाँ अर्थ वंचना ही ठीक है। ग्रिफिथ ने माययां का अर्थ प्रचुर शक्ति से (With surpassing power) किया है, जो ठीक नहीं है।

वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या अनु।
महत्त इंद्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥८॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नब्बे बड़े बाढ़ों पर तुम्हारे वज्र गिरे हैं। इंद्र ! तुम्हारा वीर्य महान् है, तुम्हारे बाहुओं में बल निहित है, अपने स्वराज्य की अर्चना करते हुए ॥८॥

सायण ने मन्त्र के प्रथम वाक्य का अर्थ करते हुए बताया है कि सर्वत्र वर्तमान वृत्र को मारने के लिए इंद्र का वज्र एक होते हुए भी अनेक था। नाव्या का अर्थ सायण के अनुसार नाव (तार्य) है।

सहस्रं साकमर्चंत परिष्टोभत विंशतिः।
शतैनमन्वनोनवुरिंद्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥९॥

एक ही साथ सहस्र बार (या सहस्रसंख्यक मनुष्य ने सायण) उसकी (इंद्र) अर्चना की है, बीस बार (या बीस ने) स्तुति की। सैकड़ों ने उच्च स्वर से उसका पुनः-पुनः गान किया है और इंद्र की स्तुति की गई है, इस प्रकार अपने स्वराज्य की अर्चना करते हुए ॥९॥ सायण ने ब्रह्म का अर्थ हविर्लक्षण अन्न किया है। विंशतिः परिष्टोभत में, विंशतिः का सायण ने यों अभिप्राय बताया है—

१६ ऋत्विज
१ यजमान
१ यजमान की पत्नी
१ सदस्य
१. शमिता

= २०

किन्तु सायण का यह विवेचन ठीक नहीं है, क्योंकि १६ ऋत्विजों की परंपरा का विकास संहिता-युग में नहीं, अपितु, ब्राह्मणकाल में हुआ था। सायण की याज्ञिक पद्धति इतिहास की अवहेलना करती है।

इंद्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः।
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१०॥

इंद्र ने वृत्र की तविषी (शक्ति) का नाश किया है। सह (सत्ता) का सह से, अर्थात् आयुध का आयुध से पराभव किया है। उसका यह महान् पुरुषार्थ (पौंस्य) था कि वृत्र की हत्या कर जल का विमोचन किया, अपने स्वराज्य की अर्चना करते हुए ॥१०॥

इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही।
यदिंद्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥११॥

हे इन्द्र ! ये दोनों लोक तुम्हारे मन्यु के कारण भय से काँप रहे थे। जब मरुद्गण की सहायता से तुमने अपने ओज से वृत्र का हनन किया, इस प्रकार अपने स्वराज्य की अर्चना करते हुए ॥११॥

न वेपसा न तन्यतेंद्रं वृत्रो वि बीभयत्।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायताचर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१२॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अपने विराट कंपन (वेपसा) अथवा दीर्घ रव से (तन्यता) वृत्र इन्द्र को भयग्रस्त नहीं कर सका। इन्द्र का अनेक धारायुक्त (सहस्र भृष्टि) लौह (आयस) वज्र वृत्र पर गिरा, इस प्रकार स्वराज्य का अर्चन करते हुए ॥१२॥

यद्वृत्रं तव चाशनि वज्रेण समयोधयः।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्वधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१३॥

जब वज्र (वज्+रन्) से तुम वृत्र तथा उसकी अशनि (अश्+अनि) पर सम्यक् युद्धशील हुए तब तुम्हारा शव (शक्ति) वृत्र की हत्या की कामना करता हुआ द्युलोक में प्रतिष्ठित हुआ; इस प्रकार स्वराज्य का अर्चन करते हुए ॥१३॥ सायण ने बद्वधे (बध+कर्मणि लिट्) का अर्थ अनुस्यूत अर्थात् व्याप्त किया है।

अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इंद्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१४॥

हे वज्रहस्त इन्द्र! तुम्हारे अभिष्टन (दीर्घ रव) से स्थावर और जङ्गम समस्त वस्तुएँ काँपने लगीं और उसके मन्यु से त्वष्टा भी भयभीत हो काँपने लगा, इस प्रकार स्वराज्य का अर्चन करते हुए ॥१४॥ त्वष्टा इन्द्र के वज्र का निर्माता है।

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५॥

सर्वत्र वर्तमान् (यात्) इन्द्र से बल में कोई बढ़ जाय, ऐसा हमलोगों की जानकारी में नहीं है। देवताओं ने इन्द्र में पौंस्य, क्रतु और ओज को भर रक्खा है; इस प्रकार अपने स्वराज्य का अर्चन करते हुए ॥१५॥ सायण ने नृम्ण का अर्थ धन, क्रतु का वीर्य और ओजस् का बल किया है।

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत।
तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेंद्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१६॥

जो कर्म (यज्ञ) अथर्वा, पिता मनु, और दध्यङ् ने किया, उनके ब्रह्म अर्थात् हविर्लक्षणान्न और उक्थ इन्द्र तक पहुँचे, जैसा पूर्व युगों में था वैसा ही आज भी; अपने स्वराज्य का अर्चन करते हुए ॥१६॥ अर्चन्ननु (अर्चन्+अनु) स्वराज्यम् का विवेचन करते हुए सायण ने बताया है कि इन्द्र ने वृत्रवधादि कर्म से अपने राज्यत्व या अधिपतित्व को प्रकट किया या कर रहा है। (अर्चन् = अनुपूजयन् = प्रकटयन्)।

ऋग्वेद के इन सोलह मन्त्रों में जिस प्रकार स्वराज्य की महान् काव्यात्मक अभ्यर्थना की गई है वैसा समस्त भारतीय राजनीतिशास्त्र के वाङ्मय में नहीं प्राप्त होता है। इन्द्र में शव (शक्ति), पौंस्य, नृम्ण और ओज का प्रभूत केन्द्रीकरण है और इसी कारण शविष्ठ इन्द्र अप्रतिम है। इन मन्त्रों में यह स्पष्ट ध्वनि है कि भौतिक उपकरणों से ही स्वराज्य का आधार संपुष्ट होता है। इन्द्र के लौह वज्र में अपार घातक शक्ति है। शारीरिक और शस्त्रमूलक शक्ति की घोर अभ्यर्थना इन मंत्रों में व्यक्त कर गोतम राहू-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गण नामक ऋषि स्वराज्य का उद्घोषक और सत्तावाद का पोषक है। वर्तमान व्यवहार-वादी (विहेभियरलिष्ट) राजनीतिशास्त्र, शक्ति-मीमांसा को ही, आस्टिन द्वारा समर्थित संप्रभुतातत्त्वविवेचन के बदले प्रमुख मानता है। ऋग्वेद में एक दर्जन से अधिक सत्ता और शक्ति के बोधक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इससे अवश्य मालूम पड़ता है कि तत्कालीन राजनीतिक प्रक्रिया में शक्ति का कितना निर्णयकारी स्थान था।

(छ) वैदिक स्वराट् और स्वराज्य

ऋग्वेद में अन्यत्र भी स्वराज्य शब्द का गौरवपूर्ण वर्णन है—

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम्॥

(ऋ० १,८४,१०)

इस प्रकार छितराया हुआ सुस्वादु सोमरस, गौरवर्ण (चमकीली) गायें पीती हैं, जो महान् शक्तिशाली इन्द्र के पास, ऐश्वर्य के लिए मदयुक्त रहती हैं अर्थात् इंद्रपीत सोम का शेष पीती हैं, अपने ही स्वराज्य के लिए। यहाँ स्वराज्य का, सायण के अनुसार, यह अर्थ है कि इन्द्र का जो स्वकीय राजत्व है, उसको अनुलक्षित कर अवस्थित रहती हैं।

ता अस्य पृशनायुवाः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम्॥

(ऋ० १,८४,११)

उसके स्पर्श की कामना करती हुई विचित्र रंगयुक्त गायें सोम को अपने दुग्ध के साथ मिश्रित करती हैं। इन्द्र की प्रिय धेनुएँ शत्रुओं का अन्त करने वाले वज्र को भेजती हैं (हिन्वन्ति) (और) अपने ही स्वराज्य के लिए अच्छी हैं। सायण ने वस्वीः का अर्थ, पयः-प्रदान के निमित्त निवास करनेवाली, किया है।

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्।

(ऋ० १,८४,१२)

नमस्कार के साथ, बुद्धिमती (प्रचेतसः) वे (गायें) उसके शक्तिशाली शौर्य (सहः) की प्रशंसा करती हुई, उसके अनेक व्रतों का ठीक से अनुवर्तन करती हैं, पूर्वचित्ति के लिए, (और) अपने ही स्वराज्य के लिए अच्छी हैं।१। पूर्वचित्ति का तात्पर्य, सायण ने, यह ग्रहण किया है कि गायें युयुत्सु शत्रुओं को पहले ही इन्द्र की भीषण शक्ति से परिचित कराती हैं।

इन तीन मन्त्रों में स्वराज्य शब्द का अनुवाद विलसन ने संप्रभुता (Sovereignty) किया है।

अग्नि और स्वराज्य का सम्बन्ध निम्नलिखित मन्त्र में है—

अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः।
विश्वा अधि श्रियो दधे॥ (ऋ० २,८,५)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हमारे उक्थों (स्तुतियों) ने अत्रि (और) स्वराज्यवान् अग्नि का वर्धन किया है। अग्नि समस्त श्री को पूरा धारण करता है।५। यहाँ पृथिवीस्थानीय महत्त्वपूर्ण वैदिक देवता अग्नि (= लैटिन Ignis) को "स्वराज्य" संज्ञा देकर उसकी प्रभाशीलता और शक्ति की अभ्यर्थना की गयी है। सायण के अनुसार स्वराज्य का अर्थ है, स्वयमेव राजमान। घोर ऋषि ने भी अग्नि को स्वराज की संज्ञा दी है—**उप स्वराजमासते** (ऋ० १,३६,७)।

विश्वामित्र ने इन्द्र को स्वराट् कहा हैं—

स्वयुरिन्द्र स्वराडसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः। (ऋ० ३,४५,५)

हे इन्द्र ! तुम अधीश (स्वयुः), स्वराट्, अच्छे नेता (स्मद्दिष्टिः) और प्रभूत यशस्वी हो। ओज से परिवृद्ध हो, अनेक प्रकार संस्तुत हो, हमारी पुकार सुनने में परम शीघ्रकारी हो। सायण ने स्वयुः का अर्थ धनवान्, स्वराट् का स्वर्ग का राजा, स्मद्दिष्टिः का भद्रवाक्य किया है।

वश अशव्य कवि ने वायु को स्वराट् कहा है—

उचथ्ये वपुषि यः स्वराडुत वायो (ऋ० ८,४६,२८)

इस मन्त्रार्ध का अर्थ करते हुए सायण ने बताया हैं कि उचथ्य और वपु दोनों राजा हैं, वायु उनके ऊपर भी स्वराट् है अर्थात् स्वराज्य करता है और इस प्रकार अतिशयता से रहता है। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से सायण का अर्थ ग्रिफिथ द्वारा किये गए इसके अर्थ से अधिक महत्त्व रखता है।

शंख यामायन कवि ने पितरों के प्रसंग में उनके लिए असुनीति और तन्वन् (शरीर) की कामना करते हुए अग्नि को स्वराट् कहा है—**तेभिः स्वराट्** (ऋ० १०, १५ १४)।

मैत्रायणी संहिता में स्वाराज्य शब्द का प्रयोग है,—**वृत्रतूरेवा भूत्स्वाराज्यमेव गच्छति**[1] **वृत्रतूरिति ह्येतमाहुर्यः स्वाराज्यं गच्छत्येन्द्रामारुतं पृश्निसक्थं आलभेत** (मै० सं० २, ५, ८)।

वाजसनेयी संहिता में स्वराज का राष्ट्र के साथ मन्त्रों में प्रयोग मिलता है—**विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा···राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराजस्थ** (१०, ४)। सत्रराट्, जनराट्, सर्वराट् के साथ ही स्वराट् का भी प्रयोग है (वा० सं० ५, २४)

अथर्ववेद, शौनक शाखा, में स्वराज के उल्लेख प्राप्त होते हैं :—स्वराजः (९, १९), **विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात्** (८, ९, ९), **स्वराजमासते** (२०, ९२, १४), **स्वराजं वृषभम्** (२०, ११३, २), **महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा**, (५, २, ८। २०, १०७, ११),

१. श्रोयडर द्वारा संपादित संस्करण में गछति छपा है लेखक ने उसे गच्छति कर दिया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः (२०, ३५, ९)। स्वराज्य की महिमा का परमोदात्त प्रकटीकरण इस मन्त्रार्थ में हुआ है—

यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् (अथर्व १०, ७, ३१)

जो अज आदि में उत्पन्न हुआ, उसने उस स्वराज्य की प्राप्ति की, जिससे दूसरा कोई भूत महत्तर नहीं है। स्वराज्य की उत्कृष्ट वरिमा और गरिमा यहाँ प्रकट हुई है। स्वराज्य से उच्चतर कुछ नहीं है यह मन्त्र भारतीय गणतंत्र के लिए भी राष्ट्रगान के रूप में संग्रहणीय है। राजनीतिशास्त्र में अथर्ववेद का यह उल्लेखनीय योगदान है।

एकराट् शब्द भी ऋग्वेद और अथर्ववेद में प्रयुक्त है—

एकराडस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः।
(ऋ० ८, १७, ३)

हे शचीपते इन्द्र! तुम इस भुवन के एकराट् हो, और प्रकाशित होते हो (राजसि = भ्राजसे—सायण) समस्त रक्षासाधनों से रक्षा करते हो। हे अनिन्द्य, वज्रधारी (वज्रिवः), वृत्रहन्ता, माध्यन्दिन (मध्याह्न) सवन के सोम को पीओ।

: : : : : : : : :

विशां पतिरेकराट् त्वं विराजः (अथर्व ३, ४, १)।

३. अभिराष्ट्र—अभीवर्त आंगिरस की राज्ञःस्तुति (ऋ० १०, १७४)

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते।
तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥१॥

ब्रह्मणस्पते! युद्ध में सफलता के लिए, हविः के साथ, जिससे इन्द्र विजयी हुआ था, उससे, हमलोग राष्ट्र की प्राप्ति अथवा अभिराष्ट्रत्व के लिए व्यवहार करें।१। सायण ने अभि उपसर्ग को वर्तय के साथ लगा दिया है और राष्ट्र तथा राज्य को समानार्थक कर दिया है—राष्ट्राय राज्यं प्राप्तुम् अभिवर्तय अभिगमय। स्मरणीय है कि उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के राजनीतिशास्त्र में राज्य (State) और राष्ट्र (Nation) में महान् अन्तर है।

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति ॥२॥

हे राजन्। जो हमलोगों की प्रतिद्वन्द्विता करता है, उसको पराजित कर, समस्त विघ्नों को पराजित कर, जो भय उपस्थित करता है, उस पुरुष का मुकाबला करो, जो मनुष्य हम से ईर्ष्या करता है (इरस्यति = ईर्ष्यति—सायण) अथवा हमें क्रुद्ध करता है, उसका मुकाबला करो।२।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अभित्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृतत् ।
अभित्वा विश्वाभूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

हे राजन् ! देव सविता और सोम ने तुम्हें विजयी (राजा) बनाया है। समस्त भूतों ने तुम्हारे विजय में साहाय्य दिया है ।३। सायण ने अभ्यवीवृतत् का अर्थ अभिगमयतु राष्ट्रम् किया है ।

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्यु्म्न्युत्तमः
इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभ्ुवम् ॥४॥

देवो ! जिस हविः को इन्द्र ने दिया और जिससे वह यशस्वी और उत्तमद्युम्न बना, उसे हमने भी दिया है और इस कारण प्रतिद्वन्द्विरहित हो गया हूँ ।४।

सायण के अनुसार कृत्वी का अर्थ है वृत्रवध आदि कर्मों का कर्त्ता ।

असपत्नः सपत्नहाभिराष्ट्रो विषासहिः
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥५॥

प्रतिद्वन्द्विरहित, प्रतिद्वन्द्विहन्ता, अभिराष्ट्र (= विजयी), जयी, इन भूतों के ऊपर और जन के ऊपर भी मैं विराजित होऊँ ।५। सायण ने अभिराष्ट्र (अभि + राज् + ष्ट्रन्) का अर्थ अभिगतराष्ट्रः अर्थात् प्राप्तराज्य किया है। रोथ के अनुसार अभिराष्ट्र का अर्थ है वृताधीश (ringsum herrschend) जनस्य का अर्थ, सायण ने सेवक, अमात्यादि किया है। विराजानि का अर्थ सायण के अनुसार, ईश्वरो भवानि अर्थात् अधीश बनूं है।

इन पाँच मन्त्रों में ओजपूर्ण वाणी में कवि अभिवर्त ने असपत्न राष्ट्रसत्ता की कामना की है। न केवल जनता पर, अपितु समस्त भूतों पर विजय की प्राप्ति और तदाधृत उत्तमद्युम्न की कामना की गई है। इन पाँच मन्त्रों से यह प्रमाणित होता है कि वैदिक राजनीतिक आदर्श, प्रतिद्वन्द्विरहित सत्ता, राष्ट्रशक्ति, और अरातियों के नाश में क्रियान्विति प्राप्त करने का अभिलाषी था। राजसत्ता में अन्य नागरिकों का भागग्रहण (Participation), सत्ता का विकेन्द्रीकरण, निरन्तर जनसहमति से सत्ता के औचित्य की पुष्टि, नागरिकों की क्रयशक्ति के परिवर्धन से राष्ट्रनिर्माण, आदि उस आदर्शवाद के निर्णायक मन्त्र नहीं थे। वह एकतंत्र द्वारा आवश्यक निर्णयों का सम्पादन स्वीकार करता था। यदि सचमुच ही वैदिक काल में समिति और सभा संप्रभुतासम्पन्न संस्थाएँ रहतीं तब वैदिक देवतावाद की भी जानतांत्रिक कल्पना की गयी रहती। इन्द्र, वरुण, अग्नि, विष्णु आदि विशाल देवों की कल्पना एकराट् के आधार पर गई है न कि सत्ता-विकेन्द्रीकरण और सामान्य हितवाद या साधारण संकल्पवाद के आधार पर। लोकतंत्र और बहुलतंत्र; प्रतिद्वन्द्वियों को वैध मार्ग से निर्णयकारी स्थलों से पदच्युत करने के अभिलाषी हैं, असपत्नत्व और सपत्नघात उनका कदापि प्रतिपाद्य नहीं है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४. अधिराज

रोथ के अनुसार अधिराज (अधि + राज् + क्विप् या अधि + राजन् + टच्) के ये अर्थ हैं—

१. Oberhaupt = प्रमुख, शीर्षस्थ ।

२. Herrscher uber Alle = समस्त के ऊपर पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न ।

ऋग्वेद के अधोलिखित मंत्र में अधिराज की महिमा व्यक्त है—

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विद्वाग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥

(ऋ० १०,१२८,९)

विहव्यकवि विश्वेदेवों की स्तुति में कहता है—जो हमारे शत्रु हैं, वे हमसे दूर रहें। इन्द्र और अग्नि के साहाय्य से उन्हें हम निकाल फेंकेंगे। वसुओं, रुद्रों और आदित्यों ने हमें ऊपर करनेवाला, उग्र, विचारक (चेत्ता अर्थात् चेतिता) और अधिराज बनाया है। सायण के अनुसार उपरिस्पृश का तात्पर्य है सबसे श्रेष्ठ और अधिराज का व्यक्तार्थ है सर्वेषाम अधीश्वरः अर्थात् सभी का मालिक।

अनेकानेक वैदिक मन्त्रों में शत्रुदलन की प्रार्थना है। प्रतीत होता है कि दैवी, वातावरणात्मिका, पशुमूलिका और सामाजिक आपदाओं और भयों से जनजीवन अतीव आक्रांत था। किंतु मंत्र में कवि का आदर्शवाद भी व्यक्त होता है। राजनीतिक सत्ता के साथ विचारशक्ति की भी प्राप्ति अभिवांछित है। ऐसी स्पष्ट ध्वनि है कि अभीष्ट जागतिक सिद्धियां और अभिप्रेत वस्तुएं देवताओं की कृपा से ही प्राप्त होती हैं।

अथर्ववेद में अधिराज शब्द प्रयुक्त है—

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह ।
त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् ।
त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥

(अथर्व० ६,९८,१—२)

इन्द्र विजयो हो, (दूसरे से) पराजित न हो, जिस प्रकार अधिराज, राजाओं पर (बल प्रकट करता है उसी प्रकार) राजत्वशील हो। तुम यहाँ यशस्वी, स्तुतियोग्य वन्द्य, पास जाने योग्य नमस्करणीय बनो।

इन्द्र ! तुम अधिराज, महत्त्वाकांक्षी और जन को अभिभूत करने वाले हो। तुम देवताओं के इस विशः (प्रजा) पर राजा बनो और तुम्हारा क्षत्र कभी जराग्रस्त न हो।

यहाँ विशः और जन पर अधिराजत्व प्रकट करने का संदेश है। सत्ता को अजर कहने का आशय है कि सत्ताधरों में परिवर्तन की कल्पना नहीं की जा रही है। सत्ता-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धारियों में सतत प्रवाह लोकतंत्र का मुख्य आधार है। किंतु अजर क्षत्र वंशानुगत राजसत्तावाद का ही पोषक है। निरुक्त (८,२) में उद्धरण (इत्यपि निगमो भवति) है—
ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः।

५. विराट् (विराज्)

रोध के अनुसार विराज् (वि + राज् + क्विप्) के ये अर्थ हैं—

(क) १. herrschend = शासक
२. ausgezeichnet = प्रसिद्ध
३. prangend = प्रभास्वर, दीप्तिमान्
४. herrscher = शासक

(ख) ५. Auszeichnung = वैशिष्ट्य, प्रकर्ष, सुख्याति

वह अर्थ इस प्रसंग में अपेक्षित है—
अनवरुद्धा वा एतस्य विराड् य आहिताग्निः सन्ननसभः (तै० सं० १,७,६,७)

ग्रासमैन के अनुसार विराज् के निम्नलिखित अर्थ हैं—
१. Weethin herrschend = विशाल भूमि का शासक
२. Gebietend = अधिकारी, शासक

सत्ताधारक के अर्थ में विराज् वैदिक संहिताओं में प्रयुक्त है—विराजं गोपतिं गवाम् (ऋ० १०,१६६,१)।—मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् (ऋ० १०,१३९,२)।—सोमो विराजमनुराजति (ऋ० ९,९६,१८)। विराट् सम्राट् (ऋ० १,१८७,५)। ज्योतिः सम्राट्—वाजसनेयी संहिता (३८,२७) में आता है।

विराट् के कई बार ऋग्वेद में उल्लेख मिलते हैं—

विराट् सम्राड् विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः।
दूरो घृतान्यक्षरन् (ऋ० १,१८८,५)

विराट्, सम्राट्, दरवाजों (दूरः) ने, जो चौड़ी, अच्छी, अनेक और बहुप्रकार की हैं, घृत की धारा प्रवाहित की है। यहाँ दरवाजों को विराट् और सम्राट् कहने से मालूम पड़ता है कि विराट् और सम्राट् का संप्रभुताशील साम्राज्य-प्रवर्तक अर्थ यहाँ कदापि अभिप्रेत नहीं है। सायण ने विराट् का अर्थ किया है; विशेषेण राजन्ते और सम्राट् का, सम्यगिति पूज्यतरं राजमानाः।

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम्।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप्॥
(ऋ० ९,९६,१८)

सोम ऋषिमना, ऋषिकृत्, प्रकाश-विजयी, सहस्रमंत्रों में वर्णित और कवियों का नेता है। वह ऐसा महिष है, जो अपने तृतीय धाम को प्राप्त करने का यत्न करता है। वह विराज् के समान है और गायक स्तुप् के समान प्रकाशमान है। सायण ने स्तुप् का

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अर्थ स्तूयमान किया है। सायण के अनुसार अन्तिम मंत्रपाद का अर्थ है कि विशेष दीप्यमान (राजंतं) इन्द्र को सोम प्रकाशित करता है। (अनुराजति)।

ऋषभं मा समानानां नपत्नानां विषासहिम्।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम्।

(ऋ० १०,१६६,१)

मैं अपने समकक्षों में वृषभ के समान बनूँ। अपने प्रतिद्वन्द्वियों का विजेता बनूँ। अपने शत्रुओं का मारनेवाला होऊँ। मैं विराट् (शासक श्रेष्ठ) बनूँ तथा गौओं का मालिक होऊँ। विषासहि का अर्थ सायण ने किया है—विशेषेणाभिस्भवितारं अर्थात् प्रकृष्ट रूप से पराजित करनेवाला। सायण ने यहाँ विराजं को गोपति का विशेषण मान लिया है।

इस मन्त्र में उद्दाम भोगवाद का समर्थन है, जिसे स्थूल सुखवाद कहा जा सकता है। यहाँ परमार्थ या विशुद्ध, वैयक्तिक स्वार्थ की कोई चर्चा नहीं है। केवल अपनी प्रभुता, सुख और विजय का ही पोषण है। यहाँ केवल शत्रुओं के पराजय से ही सन्तोष नहीं है, अपितु, उनका हत्यारा बनने की भी कामना है। यह है कि राजनीति की दृष्टि से इसे बर्बर शक्तिवाद का ही रूप मानेंगे। यदि एक चुना हुआ वर्ग, संगठित होकर, इस विचार को क्रियान्वित करने का उपक्रम करे तो इससे लोकतंत्र के बदले लिप्साग्रस्त प्रजाति-तंत्र, अधिनायकवाद और सत्ता-विकृति का ही पोषण होगा।

अथर्ववेद में अग्नि को विराट् और क्षत्रभृत् कहा गया है—

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परिपाहि नो गयम्॥

(अथर्व, ७, ८४, १)

जातवेदा अग्नि! अताडनीय, अमृत, विराट्, सत्ताधारी, प्रकाशित हो। समस्त रोगों से मानवी, कल्याणकारकों द्वारा प्रमुक्ति देते हुए, आज हमारे सद्म की रक्षा करो। यहाँ अग्नि की स्तुति में उसे अनाधृष्य, विराट्, क्षत्रभृत् कहना राजसत्ता के प्रभुत्व का ही देवता में आरोपण है। इससे मालूम पड़ता है कि कवि की दृष्टि में राजसत्ता का अतिशय उत्कर्ष है, क्योंकि देवताओं के संज्ञा और विशेषणवाची शब्दों में सत्ताबोधक शब्दों का ही महिमान्वित प्रयोग किया जाता है।

अथर्ववेद में विराज् का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग है—विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्य जातायाः सर्वमविभेदियमेवेदं भविष्यतीति (अथर्व ८, १०, १)। या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणासह। शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेधि प्रजापतिः।

(अथर्व ११, ८, ३०)

विराड् आदि में थी, उसके जन्म लेने से सभी डर गये कि यही समस्त (विश्व) हो जायगी। अनेक स्थानों पर विराड् के उत्क्रम और निक्रम का वर्णन करते हुए यह भी बताया है कि वह सभा और समिति में भी गयी और जो मनुष्य यह जानता है वही सभ्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

और सामित्य होता है (अथर्व ८, १०, १६, ११)। उत्क्रमण के क्रम में विराड् पितरों और मनुष्यों के पास जाती है) किन्तु दोनों स्थानों पर उसका वध हो जाता है—तां पितरोऽघ्नत (८, १०, ३, ३), तां मनुष्या अघ्नत (८, १०, ३, ७)। पितरों द्वारा वध के बाद विराड् एक मास के बाद पुनः उत्पन्न होती है और मनुष्यों द्वारा बध के बाद शीघ्र उत्पन्न होती है।

६. सम्राट्

सभी का अधीश (Beherrscher des Alles—सभी का प्रशासक) इस अर्थ में वरुण देव को सम्राट् (सम् + राज् + क्विप्) कहा गया है—प्र सम्राजे बृहते मन्मनु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः (ऋ० ६, ६८, ९)। इन्द्र को भी सम्राट् कहा है—अवासृजन्त जिह्रयो न देवा भुवः सम्राडिन्द्र सत्ययोनिः (ऋ० ४, १९, २)। विदथों में सम्राट् भी कहा गया है (ऋ० ३, ५३, ७)। वैवस्वत मनु ने विश्वेदेवों की स्तुति में उन्हें सम्राज् कहा है। कवि कहता है—हे सम्राज् देवो! हम आपके पुत्रवत् हैं अतः बहुत प्रकार से भोज्य हैं—वयं तद्वः सम्राज आ वृणीमहे पुत्रो न वहुपाय्यं (ऋ० ८, २७, २२)।

सम्राट् और स्वराट् में स्पष्ट पार्थक्य घोषित करते हुए वसिष्ठ कहता है—

सम्राडन्य स्वराडन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू।

(ऋ० ७, ८२, २)

यहाँ वरुण को सम्राट् और इन्द्र को स्वराट् कहा है। अन्यत्र भी वरुण को सम्राट् (ऋ० २, ४१, ६) और इन्द्र को स्वराट् (ऋ० १, ६१, ९) कहा गया है। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से इस प्रकार इन दो शब्दों के पार्थक्य की घोषणा यह सिद्ध करती है कि ऋग्वेदकाल में राजनीतिक व्यवस्था सरलता से संजटिलता की ओर बढ़ रही है। सायण ने सम्राट् का अर्थ सम्यक् राजमान और स्वराट् का स्वयं, अन्य निरपेक्ष, राजमान किया है।

सम्राज्ञी शब्द का भी प्रयोग है। सूर्या से कवि प्रार्थना करता है कि नवविवाहिता वधू, श्वशुर, सास, ननद और देवरों के बीच सम्राज्ञी बने—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञो भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।

(ऋ० १०, ८५, ४५)

यह आलंकारिक प्रयोग सम्राज्ञी शब्द के महत्त्व को व्यक्त करता हैं।

मैत्रायणी संहिता में अग्निचितिप्रकरण में महाराज शब्द सोम के लिए प्रयुक्त है—

तत्सोमराजाय विद्महे महाराजाय धीमहि।

(मै० सं० २, ९, १)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सप्तम अध्याय

वैदिक राजनीतिशास्त्र में आदर्शवाद

(१) ऋत-संप्रभुतावाद

निघंटु के अनुसार सत्य के छः नाम हैं—बट्, श्रत्, सत्रा, अद्धा, इत्था और ऋत।

सायण (ऋ० १, ६८, ५ पर भाष्य) ने ऋत का अर्थ देवयजन को प्राप्त किया है, ऐसा किया है। किंतु इससे वैदिक ऋतके वैशिष्ट्य का भाव नहीं प्रकट होता है। ऋतावा (ऋ० १,७७,२-३) से सायण ने सत्यवान् यज्ञवान् और यथार्थदर्शी अर्थ ग्रहण किया है। ऋ० १ १२३१३ में सायण ने ऋत का अर्थ आदित्य किया है। प्रियक्षत। ऋतं दघ (ऋ० ८, २७, १९) में सायण ने ऋत का अर्थ कल्याणभूत गृह किया है।

रोथ के वृहत् संत पीट्संवर्ग-कोश में ऋत के निम्नलिखित अर्थ किये गये हैं—

जर्मन भाषा में (रोथ)	हिंदी (लेखक द्वारा)
१. Gehorig	उचित, योग्य
Ordentlich	नियमबद्ध, क्रमबद्ध
Recht	विधि
२. Rechtschaffen	ईमानदार, न्याय्य, धर्मिष्ठ
Tuchtig	योग्य, दक्ष
३. Wahr	सत्य, ठीक
Religiose Wahrheit	धार्मिक सत्य
४. Geehrt	पूजित
५. Glanzend	दीप्त
६. Nachdrucklich	ओजस्वी, प्राणपूर्ण
Bestimmung	उद्देश्य, नियति, कार्य
७. Entscheidung	निर्णय, संक्रमण
Heiliger Brauch	पवित्र परंपरा
८. Satzung	कानून
Gottliches Gesetz	दैवी कानून
९. Regelmassig	क्रमानुसार, नियमानुसार
१०. Billig	अल्पार्घ (Cheap)
११. Aufrichtig	तर्कयुक्त, विश्वासयोग्य, ईमानदार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मोनियर विलियम्स के संस्कृत-इंगलिश-कोश में संत पीटर्सवर्ग-कोश के आधार पर, ऋत (पुलिंग या ऋत स्त्रीलिंग) के निम्नलिखित अर्थ लिखे हैं :—

१. Proper	उचित
२. Right	यथायुक्त, सम्यक्, न्याय्य
३. Fit	उपयुक्त
४. Apt	उपयुक्त, आप्त
५. Suitable	उपयुक्त
६. Able	योग्य
७ Brave	वीर, बहादुर
८. Honest	ईमानदार

ऋतम् (नपुंसक) के ये अर्थ हैं :—

१. Fixed or settled order	दृढ़ या सुस्थापित व्यवस्था
२. Law	विधि या कानून
३. Rule (Specially in religion)	नियम
४. Sacred or Pious Action or custom	धार्मिक कर्म या व्यवहार
५. Divine Law	दिव्य विधि
६. Faith	श्रद्धा
७. Divine Truth	दिव्य सत्य
८. Duly, Properly, Expressly	उचित रीति से, प्रकाश रूप से

९. ऋतम् में √ ऋ धातु का अर्थ है—to be pious or virtuous अर्थात् धर्मिष्ठ या शीलपूर्ण होना, है।

देव ऋत का अनुसरण करते हैं - ऋतस्य देवा अनुव्रताः (ऋ० १,६२,२)। ऋत की प्रेषा (ऋ० १.६८,३) और ऋत की धीति (ऋ० १,६८,३) का निर्देश है। ऋग्वेद (९,८६,२२) में कहा है कि सोम ऋत के नवीन प्रशासनों तक ले जाता है—नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः। सोम शब्द करता हुआ ऋत के मार्ग से जाता है—ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् (ऋ० ९,८६,३३)।

देवत्व, ऋत और अमरता में सम्बन्ध है—भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेनौः (ऋ० १,६८,२)

ऋग्वेद (१,७५,५) में बृहत् ऋतं (ऋ+क्त) में अर्थात् विशाल यज्ञ में देवों को लाने का निर्देश है (यजा देवो ऋतं बृहत्)। ऋतं का अर्थ सायण ने यथार्थफल यज्ञ किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दीर्घतमा के पुत्र कक्षीवान् ने उषा से प्रार्थना की है कि ऋत की रश्मि का अनुकूलता से अनुसरण (अनुयच्छमाना) करती हुई वह भद्र ऋतु स्थापन करे (ऋ० १,१२३,-१३)।

पराशर ने अग्नि को ऋतप्रवीत (म०१,७०,४) अर्थात् सत्य से आच्छादित माना है। गृत्समद कवि कहता है कि ब्रह्मणस्पति का शीघ्रगामी धनुष ऋत से उत्पन्न है और यथाकाम बाणनिक्षेप करता है—ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना (ऋ० २,२४,८)। विश्वामित्र ने अश्विनों की स्तुति में उनके रथ को ऋतजा (ऋ० ३,५८,८) माना है। वामदेव ऋषि ने सूर्य की स्तुति करते हुए ऋतजा (ऋ०,४,-४०,५) शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ ऋतजा का अर्थ है सत्योत्पन्न या सत्स्वभाववान्। भरद्वाज बार्हस्पत्य ने इन्द्र को ऋतयुक् (सत्य से प्रेरित) और पवित्र विचारों से युक्त मित्रों वाला—ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः (ऋ० ६,३९,२) कहा है। धार्मिक, सश्रद्ध के अर्थ में ऋतावसो सम्बोधनात्मक पद का प्रयोग मित्रावरुणों के लिए जमदग्नि भार्गव ने किया है—प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचश्च यमृतावसो (ऋ० ८,१०१,५)। ऋतेकर्म (ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः— ऋ० १०,५५,७) का भी प्रयोग है, जिसका अर्थ सायण ने वृष्टिप्रदान कर्म किया है। अत्रि सांख्य ऋषि ने अश्विनों की स्तुति के क्रम में ऋतजुर् (अत्रिमृतजुरम् ऋ० १०,१४३,१) शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ है, ऋत के पालन में वार्धक्यप्राप्त।

निम्नलिखित मंत्र ऋत की सम्यक् व्याख्या में महत्त्वपूर्ण है—

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमेनसः स्याम ये च सूरयः॥ (ऋ० ७,६६,१३)

वसिष्ठ आदित्यों की स्तुति में कहता है—ऋतानुसारी, ऋत से उत्पन्न, ऋत से परिवृद्ध (और) अनृत के जो घोर द्वेषी हैं, उनकी प्रसन्नता में, जो सर्वाधिकतम अथवा सुखतम रक्षा है, हमलोग और हमारे स्तोतालोग रहें। सायण ने ऋतावान का अर्थ यज्ञवान अथवा उदकवान किया है। ऋतजाताः का तात्पर्य बताते हुए सायण ने ऋत का अर्थ प्रजापति कर दिया है।

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे।
ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम्।
(ऋ० ८,८६,५)

ऋत से देव सविता शमन करता है या तद्विषय में परिश्रम करता है। ऋत के शृंग को दूर तक उसने विस्तृत फैलाया है। संयुयुत्सु (युद्धकामी) शक्तिशाली पुरुषों को भी ऋत ने शांत कर दिया है, हमारी मित्रता को भग्न न करो। मेरी मुक्ति दिलाओ। ऋत की प्रशस्तता का, यह मंत्र, वर्णन करता है। सायण ने शमायत का अर्थ, सायंकाल अपनी किरणों को शांत करता है (शमयति), ऐसा किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऋतया (ऋ० २, ११,१२) ऋतयन्त और ऋतयन् (ऋ० ८,३,१४। ५, १२६ ५, ४३६, ७), ऋतयुः (त्वं न इन्द्र ऋतयुः—ऋ० ८, ७०, १०), ऋतायाञ्चकार (ऋ०७, ८७, १) पद भी प्रयुक्त हुए हैं। सायण ने ऋतया का अर्थ किया है, सत्कर्म के फल की इच्छा, किन्तु रोथ ने इसका अर्थ किया है—सम्यक्, तरीके से।

ऋग्वेद (१०, १५४) में तपस्वी पितरों को ऋतसाप (=ऋतस्पृश), ऋतावान, ऋतावृधः कहकर ऋत का पारलौकिक व्यापक महत्त्व भी बताया है।

ऋग्वेद में ऋत के अनेक प्रयोग मिलते हैं —

१. ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म (ऋ० ७,८७,३)
२. कदु स्तुवत ऋतयन्त देवत ऋषिः (ऋ० ८, ३,१४)
३. ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा (ऋ० ९,११३,२)
४. ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् (ऋ० ९,११३,४)
५. ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् (ऋ० १०,६१,१०)

अथर्ववेद में कहा है—

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो धर्मा अनुरेत आगुः।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम्।

(अथर्व० ८,८,१३ = काठक संहिता, ३९, १०)

ऋत के मार्ग का अनुसरण करती हुई तीन आयीं। इनमें से (१) एक से प्रजा को जीवनशक्ति मिलती है (२) एक से ऊर्ज की प्राप्ति होती है और (३) एक देव-समान लोगों के राष्ट्र की रक्षा करती है। इस मन्त्र से ऋत का राजनीति-शास्त्रीय महत्त्व अतिशय विदित है।

ऋत के साथ संयुक्त अनेक शब्द वैदिकसंहिताओं में व्यवहृत हैं, उदाहरणार्थ, ऋतचित्[१] (ऋ० १,१४५, ५। ४,३,४। ५,३,९), ऋतजा (ऋ० ४,४०,५), ऋतजात्सत्य (ऋ०४, ३४, ७), ऋतधीति (ऋ०५, ३४, २), ऋतनी (ऋ० २, २७, १२), ऋतया (ऋ० १,११३, १२), ऋतपेशस् (ऋ० ५,६६,१), ऋतप्रज्ञात,(ऋ० १,६३,१०),ऋतप्रवीत (ऋ० १,७०,७), ऋतयुक्ति (ऋ० १०,६१,१०), ऋतयुज् (ऋ० ६,३९,२), ऋतवाक[२] (ऋ० ९,११३, २),ऋतसद् (ऋ० ४,४०,५), ऋतसदन (वा० स० ४,३६), ऋतसाप् (ऋ० १,१७९१, २), ऋतस्तुभ् (ऋ०, ११३,२०), ऋतस्था (अथर्व० ४,१,४), ऋतस्पति (ऋ० ८,२६,२१), ऋतस्पृश् (ऋ० ५,६७,४), ऋतावृध्, (ऋ० १०,६६,१), ऋताषाट्[३] (वा० सं० १८,३८—धार्मिक नियम का अनुगामी)।

---

१. ओल्डेनबर्ग (वेदिक हिम्स, भाग २, पृ० ४३७) में ऋतचित् का अर्थ ऋत का इच्छुक (intent upon right) किया है)। श्री अरविन्द ने इसे विराट् कर्तृत्ववान् परम विज्ञान (Supermind) माना है।

२. ऋतवाकेन सत्येन।

३. ऋताषाडृत धामाग्निः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऋतस्य पद के साथ अनेक पदों का प्रयोग मिलता है—(क) ऋतस्य योनिः (ऋ० १,६५,४।३,१,११), नाभिः सानुः; बुध्नस्, धाम (ऋ० ४,७,७), सदनम्, सदस्, सद्म, ऋतस्य गर्भस्य प्रजाः, (ग) ऋतस्य धीतिः (ऋ० १,६८,५), दीधितिः, (घ) ऋतस्य गोपाः (ऋ० ३,१०,२), पतिः, नेता, वेधः, विप्रः, (ङ) ऋतस्य प्रदिशः प्रशिषः आदि, (च) ऋतस्य पन्थाः, वर्तनिः (अर्थात् मार्ग)।

अथर्ववेद के वानस्पत्य अनुवाक (५,१५,१-११) में ओषधि को ऋतजात और ऋतावरि (ऋत मेधनी) कहा है। सच्ची वाणी के अर्थ में ऋतोद्य का प्रयोग है—ऋतं वन्दन्तावृतोद्येषु (अथर्व० १४,१,३१)। यम को सम्बोधित कर उसे ऋतसात (ऋत के द्वारा प्राप्त या विजित), ऋतजात, ऋतावृध तपस्वी, तपोज ऋषियों के पास जाने को कहा है (अथर्व० १८,२,१५)।

सत्यं बृहदृतमुग्रम् (अथर्व० १२,१,१ = वा० सं० ११,४७ = अथर्व० ७१,१, = तै० सं० ३,२,२,१) में सत्य को बृहत् और ऋत को उग्र कहकर वैदिक संस्कृति और राजनीतिशास्त्र के इन दो विराट् मूल शब्दों की प्रभूत सुष्टुति है। वेदों में निखिलविश्वव्यापी त्रैलोक्यानुस्यूत की कल्पना अतिशय उदात्त है। मनीषी, कवि, साधु, पुरोहित, मुनि, प्रचेतस्युक्त (अथवा चेत्ता) आदि ऋत की सार्वत्रिक विधृति को जानकर दुरित, एनस् और अघ से अलग रहने की चेष्टा अवश्य ही करेंगे। वेदों में सत्यधर्मा, प्रथमानि धर्माणि, आदि का भी उदात्त वर्णन है। ऐसा आशय व्यक्त किया जा सकता है कि ऋत और धर्म की संप्रभुता वर्तमान जगत् में भी मानी जाय। जिस प्रकार फ्राँसीसी लेखक बोदां ने सत्ताधारी की संप्रभुता के ऊपर नैसर्गिक नियम और दिव्य नियम की संप्रभुता समर्थित की है उसी प्रकार ऋत और सत्य की विराट् संप्रभुता लोकतंत्र की सम्पुष्टि के लिए, सहस्वान्, शुष्मी, एकराट्, सर्वराट् या सम्राट् पर भी प्रतिबंध स्थापित करे।[१] यह प्रस्ताव आशायुक्त है और राजनीतिक वाज की दुर्धर्षता पर नियंत्रण का मन्त्र अभिव्यक्त करता है। किन्तु यह प्रतिबंध संवैधानिक और संस्थामूल प्रतिबंधों के अतिरिक्त हो। सत्ता की दुर्दान्त तिग्मता विना संवैधानिक प्रतिबंध के, मात्र दार्शनिक, आध्यात्मिक और नीतिशास्त्रीय शिवसंकल्प मन्त्रों से निरुद्ध नहीं की जा सकती। किन्तु संवैधानिक प्रतिबन्धों के अतिरिक्त भी, जनमानस में ऋत की संप्रभुता का विचार लोकतन्त्र और अधिकारवाद का संपोषण करेगा। ऋतसंप्रभुता का अभिनन्दन वैधिक दृष्टि से व्यक्तिगत अधिकार किस प्रकार रक्षित होंगे, इस प्रश्न को गौण नहीं मानने देता, क्योंकि, जनसंप्रभुता का यह पूरक है, उसके बदले में नहीं है।

ऋत की संप्रभुता का निश्चित तात्पर्य होगा, समस्त प्राणियों में समदृष्टि। समस्त मानवों के उचित अधिकारों का परिरक्षण अवश्य कर्तव्य है। यदि कोई संकीर्ण कवि सामा-

१. ऋतसंप्रभुतावाद के लिए द्रष्टव्य विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, राजनीति और दर्शन, पृष्ठ—१८५-१८८।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जिक और राजनीतिक क्षेत्र में अनुचित लाभ उठाना चाहता है अथवा दक्षिणा के लोभ से एकराट् की चाटुकारिता करता है तब वह ऋतावान नहीं, अपितु, ऋतसंप्रभुतावाद का विरोधी है। बृहत् सत्य, उग्र ऋत और अभीद्धतपस् अथवा सहस्रचक्ष वरुण क्योंकर कतिपय मानवों, राजन्यों अथवा सत्ताधरों का विशः पर मनमानी करने का समर्थन देगा। व्यापक सर्वजनीन नियमों का स्वार्थपूर्ण तात्पर्य-ग्रहण सत्य का सर्वथा हनन है। ऋत का विराट् नियम किसी को भी, चाहे वह आर्य हो या दस्यु या चतुर्वर्णों में से कोई हो, अथवा पञ्चकृष्टि का सदस्य हो, शाश्वत राजसत्ता या अनर्गल उच्चाधिकार या अमंडनीय विशेषाधिकार अथवा नियमातिक्रमण का प्राधिकार नहीं दे सकता। ऋत एकरस और सर्वत्र समवेत है और उसका निरपेक्ष अनुवर्तन ही वेदों के विराट् राजनीतिक दर्शन का एक महान् सूत्र है। सहस्राक्ष, सप्तरश्मि सूर्य जैसे समदर्शी है, ऋत भी उसी प्रकार समता का प्रतिपादक है। इस प्रकार राजनीतिक यथार्थवाद और सत्तावाद का संयमन संभव है।

(२) विश्वमानुषवाद

वैदिक राजनीतिशास्त्र की देशगत विस्तीर्णता का प्रकटीकरण विश्वमानुषवाद की कल्पना से होता है। वेद में विश्व का अर्थ है प्रत्येक, सभी, समस्त, निखिल, सर्वसामान्य आदि। मनुष्यों की समग्रता (die Gesammtheit der Menschen) को व्यक्त करने के लिये ऋग्वेद में विश्वमानुष (विश् + व = विश्व। मनु + अण् + सुक् = मानुष) का प्रयोग हुआ है—यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति (ऋ० ८, ४५, ४२)।

ऋग्वेद में विश्वकर्म (१०,१६६,४), विश्वकर्मा (८,८७,२), विश्वकृष्टि (१,५९,७), विश्वगूर्त (१,६१,९), विश्वचक्षस् (१,३०,२), विश्वजन्य (३,२५,३), विश्वजित् (२,२१,१), विश्वजिन्व (६,६७,७), विश्वजू (४,३३,८), विश्वचक्षुस् (१०,८१,८), विश्वतस्पाद् (१०,८१,३), विश्वतोधी (८,३४,६), विश्वतोबाहु (१०,८१,३), विश्वत्र (१०,६१,२५), विश्वथा (१,१४१,९), विश्वदृष्ट (१,१९१,५), विश्वदेव्यावत् (१०,१७०,४), विश्वधायस् (१,७३,७) आदि शब्दों का प्रयोग विश्ववाद के महत्त्व को संवर्धित करता है।

बाजसनेयी संहिता में विश्वं दधाति (१,२) प्रयोग मिलता है। विश्वजनस्य छाया (५,२८) में विश्वजन शब्द मानव-कर्म और राजनीतिक प्रक्रिया को व्यापक आधार प्रदान करने का समर्थन कर सकता है।

अथर्ववेद (८,३२,१) का विश्वमानुषक् शब्द महत्त्वपूर्ण है। विश्वदावन् (अथर्व० ४,३२,६) और विश्वभोजस (अथर्व० ४,३५,३—पृथिवीं विश्वभोजसं) भी प्रयुक्त हुए हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(३) आध्यात्मिक साम्यवाद

वैदिक राजनीतिशास्त्र नैतिक साम्यवाद का आंशिक समर्थन कर सकता है, जैसे, निम्नलिखित मंत्र—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।
(ऋ० १०, ११७,६)

बुद्धिरहित व्यर्थ ही अन्न प्राप्त करता है। मैं (कवि) सत्य कहता हूँ कि यह (अन्नप्राप्ति) उसका वध ही है। अर्यमा आदि देवों का अथवा मित्रों का वह पोषण नहीं करता है। केवल अकेला खानेवाला स्वयं पापी होता है।

अर्यमा यहाँ सभी देवों का उपलक्षण है। सखायं का अर्थ, सायण ने, अभ्यागत, अतिथि और मित्रवर्ग किया है। इस मन्त्र का सायण के अनुसार तात्पर्य है कि जैसे भी हो, दान देना चाहिए।

इस मन्त्र में ऋग्वेद का कवि पुष्ट भाषा में वितरणपूर्वक भोजन करने की शिक्षा देता है। सर्वोदय का राजनीतिक दर्शन इस वेदमन्त्र से पुष्टि प्राप्त कर सकता है। किन्तु मार्क्सवादी साम्यवाद को सिर्फ नैतिक, उपदेशात्मक, सहयोगसंश्रित अर्थव्यवस्था से सन्तोष नहीं होता है। वह वैयक्तिक दान, वितरण, त्याग आदि के बदले संस्थामूलक हिंसात्मक क्रान्ति का अवलम्बन करता हैं।[1] निम्नलिखित मन्त्र भी आध्यात्मिक साम्यवाद की दृष्टि से विचारणीय है—

यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः।
मनोविश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशते। (ऋ० ८, ४७, ४)

त्रित आप्त्य आदित्यों को सम्बोधित करता है—जिस मनुष्य के लिए तुमलोग निवास (क्षय) और जीवन-साधन रूपी अन्न देते हो, उसके समस्त धन के स्वामी होते हो (धनिकस्य रायो धनस्येशते—सायण)। समस्त धन का स्वामित्व (ganzen Reichtum des menshen-गेल्डनर) आदित्यों में सन्निहित मानना, अंशतः धन के समाजीकरण के प्रस्ताव को समर्थित कर सकता है। किन्तु स्मरण रखना है कि वैदिक कवि समाजीकरण की किसी संगठित व्यवस्था और प्रक्रिया की कल्पना नहीं कर रहा है। तथापि आदित्यों में धन का स्वामित्व मानना राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण बात है।

(४) संज्ञान और वैदिक राजनीति : (Theory of Consensus and Concord)

ऋग्वेद दशम मंडल के अन्तिम सूक्त के तीन मन्त्रों में संवनन ऋषि ने संज्ञान[2]

---

१. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, राजनीति और दर्शन (पटना, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, १९५६), पृ० ४१६-४१७।

२. गेल्डनर ने संज्ञान का अर्थ संध्वनि, एकता (Eintracht) किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अर्थात् ऐकमत्य[१] (Eintracht गेल्डनर) की आवश्यकता व्यक्त की है।

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।२।

सभी लोग इकट्ठे हों, साथ बोलें, तुम सभी का मन ऐकमत्ययुक्त हो जाय, जिस प्रकार पुरातन देवता ऐकमत्य के साथ अपना भाग लेने के लिए बैठते हैं।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।३।

मन्त्र[१] समान हो, समिति (Versammlung या Geratung—गेल्डनर) एक हो, मन समान हो और इनका चित्त समान हो। तुमलोगों के सामने समान मन्त्र उपस्थित करता हूँ और तुमलोगों का समान हविः से यज्ञ करता हूँ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।४।

प्रतिज्ञा तुम लोगों की समान हो, तुमलोगों का हृदय एक हो, तुमलोगों का मन एक हो, जिससे तुमलोगों में आनन्दपूर्वक ऐकमत्य रहे।[२]

(५) स्वस्तिवाद (Politics of Utility and Welfare)

स्वस्ति (सु + अस् + क्तिच्) की कामना बड़े उदात्त शब्दों में स्वस्त्यात्रेय कवि ने की है। स्वस्ति का अर्थ ग्रिफिथ ने कल्याण (weal), समृद्धि (prosperity), भद्र (good) आदि किया है। राजनीतिक दृष्टि से इन शब्दों का अत्यन्त माहात्म्य है। प्लेटो, अरस्तु, ग्रीन आदि ने भी सामष्टिक कल्याण की महत्त्वाभिव्यंजना की है। रौथ के संत पीटर्सबर्ग कोश में स्वस्ति के ये अर्थ हैं—

जर्मन	हिंदी
Wohlsein	स्वास्थ्य
Gluck	भाग्य
Gelingen	सफलता
Mit Erfolg	सफल परिणाम के साथ

स्वस्ति का अर्थ समृद्धि भी है।

स्वस्ति-कामना के मन्त्रों में (ऋ० ५,५१.११-१५) निम्नलिखित देवों का संस्तव किया गया है—

१. अश्विन्

---

१. त्वां ह्यग्ने सदमित्समन्यवो (ऋ० ४,१,१) में समन्यवो पद सौमनस्य का बोधक है।

२. गेल्डनर ने आकूति का अर्थ सलाह, राय (Rat) किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२. भग
३. अदिति
४. असुर पूषन् (प्राणवान्)
५-६ द्यौः और पृथिवी (द्यावापृथिवी)
७. वायु
८. भुवनपति सोम
९. सर्वगण (गणों के साथ) बृहस्पति
१०. आदित्य
११. विश्वेदेव
१२. वैश्वानर वसु अग्नि
१३. ऋभु (तीन ऋभु)
१४. रुद्र
१५-१६. मित्र और वरुण (मित्रवरुणा)
१७. पथ्या
१८. इन्द्र
१९. अग्नि

विश्वेदेवाः की प्रार्थना में स्वस्ति आत्रेय कवि कहता है कि सूर्य और चन्द्रमा की भाँति हम कल्याण से, मार्ग का अनुसरण करें। जो पुनः देता है, मारता नहीं है (अघ्नता) और जानता है (ऐसे बंधु के साथ) मिलें—

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि। (ऋ० ५,५१,१५)

ऋग्वेद में स्वस्तिगाम् (६,५१,१६), स्वस्तिदाः (१०,१७,५), स्वस्तिभिः (५,५३, १४), स्वस्तिमत् (४,४६,९), स्वस्तिवाहम् (१०,१०१,७) पद भी प्राप्त होते हैं। इन सभी पदों से कल्याणकामिता की भावना को परिपोषण मिलता है।

(६) शम्-वाद (Theory of Universal good)

शम् का अर्थ है कल्याणपूर्वक, सौभाग्यपूर्वक, सम्यक् आदि। निघंटु (३,७) के अनुसार सुख के बीस वैदिक नाम हैं—शिम्बाता। शतरा। शातपन्ता। शिल्गुः। स्यूमकम्। शेवृधम्। मयः। सुग्म्यम्। सुदिनम्। शूषम्। शुनम्। शग्मम्। भेषजम्। जलाषम्। स्योनम्। सुम्नम्। शेवम्। शिवम्। शम्। कत्। शम् (शंते सन्तु प्रचेतसे—ऋ० १,१, १०,२) या तो निपात है अथवा शम्+विन् से निष्पन्न है। सुखमूलक बीस वैदिक शब्दों का संग्रह वेदकालीन उपयोगितावादी और सुखवादी राजनीतिक दर्शन का आधार हो सकता है। सायण ने शम् से शांति अथवा शमनहेतुक सुख यह आशय ग्रहण किया है। रूसो और बोसांक्वेट ने सामान्य संकल्प और वास्तविक संकल्प का महत्त्वाभिज्ञापन किया।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लोककल्याण का महामंत्र, समाजवाद और लोकतंत्र में भी प्रचलित है। अशोक भी अपने धर्मलेखों में जनकल्याण की चर्चा, बुद्ध द्वारा प्रचारित आदर्शवाद के आधार पर, करता है।

ऋग्वेद (७।३५) में सार्वत्रिक "शम्" (शम् + क्विप्) की कामना की गयी है। इसके निमित्त निम्नलिखित देवताओं और वस्तुओं अथवा कारकों को मानव-समाज के कल्याणार्थ अपना आशीर्वाद देना है—

क : वैदिक देव

१. इन्द्र और अग्नि (इन्द्राग्नी, देवताद्वन्द्व)
२. इन्द्र और वरुण (इन्द्रावरुण)
३. इन्द्र और सोम (इन्द्रसोमा)
४. इन्द्र और पूषन् (इन्द्रापूषणा)
५. भग
६. अर्यमा
७. धाता (= वरुण —सायण के अनुसार)
८. धर्ता
९. उरुचुची (विवर्तगमना पृथिवी)
१०. द्यौः और पृथिवी (रोदसी = द्यावापृथिवी)
११. देवगण के सुहव
१२. अग्नि
१३. मित्रावरुण
१४. अश्विन्
१५ वात
१६. वसुओं के साथ इंद्र
१७. आदित्यों के साथ वरुण
१८. रुद्र जलाष
१९. त्वष्टा
२०. सोम
२१ ब्रह्म (= स्तोत्र, सायण)
२२. सूर्य
२३. अदिति
२४. मरुत्
२५. विष्णु
२६. पूषन्
२७. वायु

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२८. सविता
२९. उषा
३०. पर्जन्य
३१. शंभु क्षेत्रस्यपति (खेत का देवता)
३२. विश्वदेव
३३. सरस्वती
३४. ऋभु
३५. पितर
३६. अज एकपात्
३७. अहिर्बुध्न्य
३८. अपां नपात् (पेरु अर्थात् उपद्रव से पार करनेवाला)
३९. पृश्नि (स्पृश् + नि) = मरुतों की माता

ख: यज्ञात्मक पदार्थ—

४०. ग्रावाण (यज्ञार्थ पत्थर)
४१. यज्ञ
४२. यज्ञीय स्तम्भ
४३. प्रस्व (घास)। सायण के अनुसार प्रस्व = ओषधि।
४४. वेदि

ग: वैदिक प्राकृतिक पदार्थ और सृष्ट तत्त्व

४५. अद्रि (पर्वत)
४६. नदियाँ
४७. जल
४८. वन के वृक्ष और ओषधियाँ
४९. चार दिशाएँ
५०. समुद्र

घ : प्राणिगण—

५१. द्युलोक, जल और पृथिवी में रहनेवाले उदाराशय प्राणी (अभिषाचः रातिषाचः = यज्ञसेवक और दानसेवक)
५२. घोड़े
५३. गाय (शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे (ऋ० १०. ८५, ४३)

ङ : विविध—

५४. शंस (= नराशंस)
५५. पुरन्धि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

५६. रयि
५७. सुयम (सत्य)
५८. सत्कर्म करनेवालों के सुकृत
५९. जिष्णु रजसस्पति अर्थात् जयशील रजस् का पति
६०. सत्य के पति (= सत्यशील देव—सायण के अनुसार)

स्पष्ट है कि जहाँ द्यु स्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय, पृथिवीस्थानीय, जलस्थानीय और अन्य छोटे-बड़े देवताओं[१] से व्यापक कल्याण की कामना की गयी है वहाँ सुख के भौतिक आधार घोड़ों और गायों के भी कल्याण की कामना वैदिक कवि कर रहा है। खेत के देवता से कल्याण की याचना करना तत्कालीन कृषिप्रधान समाज का द्योतक है। स्पष्ट है कि पार्थिव धरातल पर स्वस्थ सुखी समाज की कामना ऋग्वेद के युग में की जाती थी।

(७) दुरितानृतशोधन और वैदिक राजनीति : (Politics and Ethics)

इदमापः प्रवहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्। (ऋ० १, २३, २२)

हे आपः, जो कुछ दुर्वृत्ति मुझमें है, जो कुछ अभिद्रोह मैंने किया है, जो झूठी शपथ मैंने ली है और जो अनृत किया है, उन्हें प्रवाहित करो। सायण के अनुसार शेपे का अर्थ है साधुजन को शाप दिया। दुरित अज्ञाननिष्पन्न है और बुद्धिपूर्वक किये गये द्रोह को व्यक्त करने के लिये अभिदुद्रोह प्रयुक्त हुआ है।

इस मंत्र में नैतिक विकास की सूचना मिलती है। दुरित और अनृत से मुक्ति एक उत्कृष्ट वैदिक भावना है। द्रोह और झूठी शपथ भी कवि को चिंतित करते हैं।

वसिष्ठ मरुतों की प्रार्थना में कहता है कि जब कुछ पाप, पुरुष होने के नाते, हम करें तब उनका (मरुत का) चमकीला अस्त्र दूर रहे—ऋध्वक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यदू आगः पुरुषता कराम (ऋ० ७, ५७, ४)। नैतिक भावनाओं का विकास न केवल सामाजिक व्यवस्था में तर्कणा का अनुप्रदेश करता है, अपितु, राजनीतिक सत्ता की विवर्धित विकृति को भी रोकने का आधार हो सकता है। किंतु वेद में अंतरात्मन् के आधार पर साम्राज्यवाद और विराड्वाद को प्रतिरुद्ध करने का प्रस्ताव नहीं व्यक्त किया गया है। शत्रुओं को जलाने, नष्ट करने और उनका समूलोच्छेद करने के अनेक मंत्र बताते हैं कि शत्रुनाश की कामना अनैतिक नहीं मानी गयी थी।

---

१. तुलनीय—
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः
(ऋ० १०, ९, ४)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अष्टम अध्याय

वैदिक देवगाथाशास्त्र और राजनीति

(१) धर्म का उदय और स्वरूप

धर्म का उदय मानव-हृदय में व्याप्त भय की भावना में होता है। जीवन में सबसे बड़ा भय मृत्यु का है। जब मानव किसी प्रिय व्यक्ति का चिर वियोग अनुभव करता है तब वह मृत्यु से त्राण पाना चाहता है। या तो वह योग या तप से अमरता की कामना करता है अथवा किसी प्रेत या अन्य जंतु की तुष्टि कर दुःखनिवृत्ति चाहता है। भय ही धर्म का जनक है। यह ठीक है कि सांसारिक वस्तुओं की अभिलाषा मनुष्य को अनेक देवी-देवताओं की अभ्यर्थना करने को बाध्य करती है और संभव है कि वैज्ञानिक और तकनीकी सभ्यता के उदय से मनुष्य में भौतिकवाद और जड़वादाश्रित धर्मनिरपेक्षतावाद की वृत्ति मजबूत हो, किंतु मृत्यु का भय सार्वत्रिक, सार्वकालिक और सार्वजनीन रहेगा और धर्म की ओर मनुष्य सर्वदा प्रेरित होगा।

ऋग्वेद का धर्म मुख्यतः प्राकृतिक शक्तियों के आंशिक दिव्यीकरण पर आधृत है। इंद्र मेघस्तनन या मेघनिर्घोष (thunder) का देव है। अग्निदेव का भौतिक आधार पूरा स्पष्ट है। ऋग्वेद-काल में देवताओं की उपासना में भय की भावना प्रेरिका रूप में दीखती है। बाहरी शत्रुओं पर विजय हो और प्राकृतिक शक्तियाँ मृत्यु का कारण न बनें, इसी कारण यज्ञादि के द्वारा मनुष्य देवों की अभितुष्टि के लिए यत्नवान् होता है। जादू टोना आदि की बातें जो अथर्ववेद में हैं, वे भी भय से संबद्ध हैं। ऋग्वेद के प्रथम और दशम मंडलों में और यजुर्वेद के कुछ अध्यायों में तथा अथर्ववेद के कुछ कांडों के कुछ अनुवाकों में जो सृष्टिरहस्योद्घाटनमूलक अथवा काल, ब्रह्म, प्रजापति आदि के प्रशंसामूलक मंत्र मिलते हैं, उनमें भी छिपे हुए परिव्याप्त भय की भावनात्मक और काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रकट हो सकती है, क्योंकि मृत्यु की विभीषिका ही, जिसे पतंजलि ने अभिनिवेश कहा है, मानव को परम सत् की ओर प्रेरित करती है।

धार्मिक विकास की कुछ अवस्थाएँ नृविज्ञान-शास्त्र (ऐंथ्रोपोलोजी) और विकासवादी परंपरा के आधार पर यों बताई जा सकती हैं—

१. सर्वप्रथम भूतप्रेत की पूजा
२. भौतिक वस्तु में देवत्व का आरोपण (Fetishism)
३. वस्तु को आत्मसंयुक्त मानना अर्थात् जडात्मवाद (Animism)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४. पशुपूजा और देवों की पशुरूप में कल्पना। मत्स्यावतार, वराहावतार, कूर्मावतार, नृसिंहावतार आदि इस अवस्था के द्योतक हैं।

५. प्रकृतिपूजा, बहुदेववाद और देवों को मानवभावाविष्ट मानना। सृष्टि को देखकर आश्चर्य, विषम और कुतूहल से भर जाना और विधाता को धन्यवाद देने के निमित्त स्तुति करने लग जाना, धार्मिक विकास की अवस्था सूचित करते हैं। आकाशगंगा, सूर्यचंद्रोदय, उषा का सुनहला सौन्दर्य, ऋतुओं का क्रमबद्ध परिवर्तन आदि मनुष्य की निसर्गजात भावनाओं को उत्तेजित करते हैं। अन्नं ब्रह्म, प्राणं ब्रह्म, मनो ब्रह्म, वायुर्ब्रह्म, आदि सूत्र भी इसी स्तर के द्योतक हैं।

६. एकेश्वरवाद। विश्वकर्मा, प्रजापति, हिरण्यगर्भ आदि की कल्पना इस अवस्था में की जाती है।

७. सर्वेश्वरवाद और अद्वैतवाद। इस अंतिम अवस्था में, अयमात्मा ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म और तत्त्वमसि का बोध होता है और निखिल विश्व परमबृहत् धिषणा अथवा चिन्मयशक्ति से परिव्याप्त दीखता है।

धार्मिक पुरुषों में, किसी में सामाजिक आक्रोश और प्रतिरोध, किसी में जागतिक लिप्सा, किसी में संन्यास और त्याग, और किसी में ईश्वरानुग्रहाभिभूति की भले ही विशेषता दीख पड़े, किंतु धर्म का मानव-सभ्यता में जब प्रथम उदय हुआ था, उस पुरातन काल का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने से हमें भय की भावना ही मुख्य दीख पड़ती है। और भय के कारणों में मृत्यु का भय प्रबलतम है। मिश्र देश की सभ्यता भी मृत्यु के भीषण भय से आक्रांत थी, इसका प्रमाण यही है कि इस देश के प्रमुख निवासी पिरामिड बना कर शव को दीर्घकाल तक स्थायी बनाये जाने का समर्थन करते थे।

वैदिक राजनीतिक व्यवस्था के सम्यक् अनुशीलन के क्रम में इसके ऐतिहासिक, आर्थिक और सामाजिक आधारों का विवेचन किया गया है। कोई भी व्यवस्था परमसत्ता के विषय में, व्यक्त या अव्यक्त रूप से, कुछ आस्थाओं में विश्रम्भ स्थापित करती है अथवा उनका अनुमोदन करती है। वेदों में मुख्यतः बहुदेवतावाद का प्रतिपादन है। तथापि सृष्टि-शास्त्रीय मीमांसा के क्रम में, पीछे चलकर, प्रजापति, हिरण्यगर्भ, काम, सहस्रशीर्षा पुरुष, तपस्, एकं सत् आदि परम विराट् तत्त्वों से सृष्टि का विस्तार बताया गया है। इतना निश्चित है कि बहुदेवतावाद और एकेश्वरवाद दोनों ही भौतिकवादी मीमांसा का तिरस्कार करते हैं। वैदिक राजनीतिक व्यवस्था का व्यापक ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैदिक धर्म का राजनीतिक दृष्टि से विवेचन करना है। राजनीतिक आदर्श, नियम, आशय, अर्घ आदि के उपस्तंभन और अनुमोदन में व्याप्त धार्मिक विश्वासों का कर्तव्यमूलक योगदान रहता है। दूसरी ओर राजनीतिक जगत् के तनावों, विशृंखलाओं, असंगतियों, विरोधाभासों आदि का सम्यक् समाधान न मिलने पर, कवि धार्मिक कविताओं में या तो इस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दुरवस्था-सूचक तथ्यों से पलायन करता है अथवा ईश्वर से इनके समाधान की याचना करता है। यह भी संभव है कि कवि यदि राजसत्ताधरों का वेतनभोगी या आश्रित है तो वह इन दुरवस्था-सूचक तथ्यों को दैवी नियति का विधान मानता है। वैदिक कवि साधारण जनता की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक पीड़ा से चिंतित नहीं है। एक बार दशम मंडल में अक्षकितव के अवसाद का जरूर वर्णन मिलता है, किंतु वैदिक ऋचाओं को जनता अथवा सामाजिक नेताओं की खिन्नता, ग्रंथि-विस्फोट, अथवा आक्रोश की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं कल्पित किया गया है। फिर भी इतना अवश्य है कि सामाजिक और राजनीतिक जगत् में परिव्याप्त संघर्ष, युद्ध, सत्तासंचय आदि के व्यापक प्रभाव से वैदिक देव-गाथा-शास्त्र अछूता नहीं है। बाह्य व्यवस्था में वर्तमान संघर्षों के प्रति कवियों और ऋषियों के आशय-स्थापन और तत्त्वाभिज्ञापन की शैली का आंशिक ज्ञान वैदिक देव-गाथा-शास्त्र से मिलता है। इस अध्याय में कुछ दूर तक इसी दृष्टि का अवलंबन कर वैदिक देवविज्ञान का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ऋतावान वरुण, वृत्रहन्ता इंद्र, गृहपति अग्नि और पवमान सोम तत्कालीन प्राकृतिक वातावरण और सामाजिक व्यवस्था का दिग्दर्शन अवश्य कराते हैं।

(२) वैदिक देवताओं का वर्गीकरण[१]

विभिन्न वेदकालीन देवों और देवियों का यों वर्गीकरण कर सकते हैं—

(क) द्युस्थानीय (दिविष्ठ)

१. द्यौः (तुलनीय-जीयस या जुपीटर)
२. वरुण (तु०[२] औरानस या नेपचून)
३. मित्र
४. सूर्य (तु० हेलीओस)
५. पूषन्
६. सविता — सूर्य से सम्बद्ध
७. विवस्वत्
८. आदित्य
९. विष्णु
१०. उषा (तु० औरोरा, इओस)
११. अदिवन्

(ख) अन्तरिक्षस्थानीय

१२. इन्द्र (तु० रोमीय देवी वीनस)
१३. रुद्र

---

१. यास्क, बर्गेन, हिलेब्राण्ट और मैक्डोनल ने इस विषय का विवेचन किया है।
२. तु=तुलनीय।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१४. मरुत् (तु० इटली का देव मार) ┐
१५. वायु │
१६. वात ├ वायु
१७. मातरिश्वा ┘
१८. अपांनपात्
१९. अज एकपात्
२०. अहिर्बुध्न्य
२१. त्रित आप्त्य
२२. पर्जन्य
२३. आपः

(ग) पृथिवीस्थानीय

२४. अग्नि (तुलनीय इग्निस)
२५. सोम
२६. पृथिवी
२७. सरस्वती
२८. बृहस्पति

(घ) अमूर्त देव

१. धाता,
२. विधाता,
३. त्राता
४. नेता[1]
५. त्वष्टा (त्वष्टृ=त्वक्ष् + तृच्)[2]
६. रोहित, (अथर्वा)
७. विश्वकर्मा
८. प्रजापति
९. मन्यु
१०. श्रद्धा कामायनी
११. अनुमति (ऋ० १०,९६,६),

---

१. ते ते देवनेतर्ये चेमां अनुशसे ।

× × ×

एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः (ऋ०५,५०,२,५) ।

२. त्वष्टा की पुत्री शरण्यू, विवस्वत् की पत्नी और यम, यमी की माता है—

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश । (ऋ० १०,१७,१)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१२. अरमति (ऋ० २,३८,४।७,१,६। ७,३४,२१। ८,३१,१२। १०। ६४,१५। १०,९२,४। ४,४३,६,५,५४,६। ७,३६,८। ७,४२,३, । १०,९२,५)।

१३. सूनृता (ऋ० १,४०,३।१०,१४१,२)।

१४. असुनीति (ऋ० १०,५९,५)।

१५. निर्ऋति (ऋ० १,३८,६।५,४१,१०)।

१६. अदिति, दिति।

(ङ) देवियां

१. रात्रि
२. वाक्
३. पुरन्धि
४. धिषणा
५. इडा[1]
६. बृहद्दिवा
७. राका
८. सिनीवाली
९. गुंगू[2]
१०. पृश्नि
११. शरण्यू
१२. इन्द्राणी
१३. वरुणानी
१४. अग्नायी
१५. अश्विनी
१६. देवानां पत्नीः
१७. वरूत्री (ऋ० ५,४१,१५।७,३८,५।७,४०,६।१,२२,१०।७,३४,२२। ३,६२,३)

---

१. इलामकृण्वन्मनुषस्य शासनीम् (ऋ० १,३१,१०) पर सायण ने अपने भाष्य में कहा है कि मनु की पुत्री इला (इडा) धर्मोपदेशकर्त्री थी। वैदिक राजनीति-शास्त्र की दृष्टि से शासनी का प्रशासिका अर्थ भी संभव है।

२. या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये। (ऋ० २,३२,८)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१८. होत्रा
१९. भारती[1]

(च) देवता-द्वन्द्व

१. मित्रावरुणा
२. इन्द्राग्नी
३. इन्द्रावरुणा
४. इन्द्रवायू
५. द्यावापृथिवी
६. इन्द्रासोमा
७ इन्द्राबृहस्पती
८. इन्द्राविष्णू
९. इन्द्रापूषणा
१०. सोमापूषणा
११. सोमारुद्रा
१२. अग्नीषोमा
१३. इन्द्रनासत्या
१४. इन्द्रापर्वता
१५. इन्द्रामरुतः
१६. अग्निपर्जन्या
१७. पर्जन्यावाता या वातापर्जन्या
१८. उषासानक्ता या नक्तोषासा
१९. सूर्या-मासा या सूर्याचन्द्रमासा

(छ) देव-वर्ग

१. मरुद्गण
२. रुद्रगण
३. आदित्याः
४. वसवः
५. साध्याः
६. विश्वे देवाः

---

१. अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भारती दक्षिणाभिः (ऋ० ३,६२,३)। भारती शब्द राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से आज भी राजनीतिशास्त्र में प्रयुक्त हो सकता है। सायण ने भारती का अर्थ सरस्वती, वरूत्रीः का देवपत्न्यः और होत्रा का वाक् किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(ज) देवाधम (Lower Deities)

१. ऋभवः (ऋभुक्षन्, वाज, विभ्वन्)

२. अप्सरा (उर्वशी, उग्रजित् अथर्व० ६,११८,१-८, उग्रम्पश्या, राष्ट्रभृत्, मेनका[१])

३. गन्धर्व (विश्वावसु)

४. रक्षणकारी अधिदेव—वास्तोष्पति, क्षेत्रस्यपति

(झ) गाथात्मक पुरोहित और वीरमानुष

१. मनु

२. भृगु

३. अथर्वन्

४. दध्यञ्च्

५. अङ्गिरस्

६. विरूपस्, नवग्वस्, दशग्वस्, सप्तर्षि

७. अत्रि, कण्व, कुत्स, काव्य उशना

(ञ) पशु और जडद्रव्य

१. अश्व—दधिक्रा (ऋ० ७,४४,१ । ऋ० ३,४,५), तार्क्ष्य, पैद्व, एतश

२. सूर्य और अग्नि का प्रतीक अश्व

३. वृषभ और गौ[२] (अघ्न्या)

४ अज, गर्दभ, श्वा (सारमेय), वराह, कच्छप, वृषाकपि, मण्डूक

५. पक्षी, श्येन, गरुत्मत्

६. मृग, अहि (सर्प)

७. पशुपूर्वजवाद (Totemism)—मनुष्य-जाति या मानव-परिवारों की उत्पत्ति पशुओं से हुई है, ऐसा विश्वास ।

---

१. राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से अप्सरा का नाम राष्ट्रभृत्—महत्त्वपूर्ण है । उग्रजित् (उग्रजितौ) और उग्रम्पश्या नाम दुर्धर्ष उग्र राजनीति का बोधक हैं ।

२. गोहत्यानिरोध का प्रस्ताव वैदिक राजनीतिक आदर्शवाद का एक अंग है । गाय का वर्णन करते हुए उसके सम्बन्ध में यह मंत्र है—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।

प्रनु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ।। (ऋ०८,१०१,१५)

गाय—(१) रुद्रों की माता, (२) वसुओं की पुत्री, (३) आदित्यों की बहन, (४) अमृत की नाभि, (५) पापरहिता और (६) अदिति है । जमदग्न भार्गव नामक ऋषि कहता है कि मैं जानने वाले लोगों से कहता हूं कि गाय को मत मारो ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अ—कूर्मः (= प्रजापति = कश्यप)
आ—मत्स्याः—(मछली)
इ—अजासः—अज (बकरा)
ई—शिग्रवः—अश्वमूली
उ—गोतमः—गौ
ऊ—वत्साः—वत्स (बछड़ा)
ऋ—शुनकाः—श्वा (कुत्ता)
ऌ—कौशिकाः—कुशिक (उल्लू)
ए—माण्डूकेयाः—मण्डूक (मेढक)

(ट) पार्थिव वस्तुओं को देवतात्मा मानना

१. नदियाँ
२. पर्वत
३. ओषधि
४. वनस्पति, अरण्यानी
५. स्वरु, बर्हिस्, ग्रावन् (आदि), उच्छिष्ट, शुन, सीरा, दुन्दुभि
६. प्रतीक— { चक्र—सूर्य का प्रतीक
हिरण्य - सूर्य का प्रतीक

(ठ) मृत्युपुराण (Eschatology)

ऋव्याद अग्नि, असु, मनस्, स्वर्ग, नारक लोक (अथर्व०), पितर, यम

(३) वैचारिक सूक्ष्मता की दृष्टि से वैदिक देवतावाद का विश्लेषण

वैदिक देवतावाद और गाथापुराण में वर्णित विषयों का यों वर्गीकरण किया जा सकता है—

उत्	उत्तर	उत्तम
१. पृथिवी	१. इन्द्र	१. धाता
२. अग्नि	२. अश्विन्	२. ब्रह्मणस्पति
३. सोम	३. वरुण	३. एकं सत्
४. सूर्य	४. अज एकपात्	४. आनीदवातं स्वधया तदेकम्
५. वायु	५. अहिर्बुध्न्य	
६. द्यौः	६. अपां नपात्	
७. (आपः	७. त्रित आप्त्य	
(सिन्धु	८. पूषन्	
(सरस्वती	९. वात	
	१०. विष्णु	

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उत्	उत्तर	उत्तम
	११. सविता	
	१२. विश्वकर्मा	
	१३. वाचस्पति	
	१४. हिरण्यगर्भ	
	१५. प्रजापति	

(४) द्यौ :

द्यौ :[1] (द्यु+डो) आकाशवाची है। वैदिक साहित्य में द्यावापृथिवी शब्द अनेक बार मिलता है। यदा-कदा अग्नि, सूर्य, आदित्य, उषा, पर्जन्य, मरुत् आदि द्यौः की सन्तति माने गये हैं। यूनानी साहित्य में जीयस (Zeus) देवों में परम प्रमुख है। संभवतः द्यौ : का कभी सम्राट्वत् प्रभाव कल्पित किया गया हो, किन्तु वैदिक साहित्य इस कल्पना को पुष्ट नहीं करता है।

द्यौः में कतिपय देवों में पितृत्व का आरोप पितृमूलक समाज का प्रतिफल हो सकता है। निम्नलिखित अर्धर्च से वैदिक रागात्मकता का पता लगता है, जिससे देशभक्ति को भावनात्मक संपोषण मिलता है—**द्यौष्पितः पृथिवी भ्रातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृलता नः** (ऋ० ६,५१,५)। द्यौः पिता है, पृथिवी माता है, और अग्नि भ्राता है।—वृषा त्वा वृषगं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे (ऋ० ५,३६,५)। यहाँ द्यौः को वृषभ और बृहत्—अर्चा दिवे बृहते (ऋ० १,५४,३) कहना उस कृषक-समाज के अनुरूप है, जिसमें नर-पतितंत्र मजबूत हो रहा हो। शूर सधमाद इन्द्र की प्रशंसा करते हुए वामदेव कवि कहता है कि द्यौः की भाँति इन्द्र अपना महत् क्षत्र पुष्ट करे—**द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात्** (ऋ० ४,२१,१)। इस विशेषणात्मक कथन से द्यौः की महिमा प्रकट हो रही है। किन्तु यहाँ सायण ने द्यौः का अर्थ द्योतमान सूर्य किया है। क्षत्र का अर्थ स्वकीय बल वा तेज और अभिभूति का अर्थ अन्यों के बल को परास्त करने वाला—परकीयं बलमभिभावुकम्, सायण ने किया है।

(५) वरुण

वरुण (वृ+उनन्) हजार आंखों वाला (सहस्रचक्षाः) और उग्र है। उसे राष्ट्रों का राजा और नदियों का गौरव कहा गया है, जिसका समस्त जीवित प्राणियों के ऊपर क्षत्र है। (ऋ० ७, ३५, ११)। वरुण के महान् क्षत्र, बल और क्रोध का उल्लेख भी राजनीतिक पक्ष में महत्त्वपूर्ण है—**नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः** (ऋ० १, २४, ६)

वरुण को राजा मानने के अनेक उल्लेख हैं—

अवुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः (ऋ० १,२४, ७)।

: : : : : : : : : : : :

---

१. दिव+उन्=द्यु।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ। (ऋ० १, २४, ८)

: : : : : : : : : : : :

अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्। (ऋ० १, २४, ८)

अपां नपात्सुखतमाय शोकैर्हिरण्यवर्णा मधुमन्त ऊर्मयः। (ऋ० २, ३५, ३)

अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिवृधः। (ऋ० २, ३५, ४)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, १०)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ११)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, १२)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, १३)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, १४)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, १५)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, १६)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, १७)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, १८)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, १९)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, २०)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, २१)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, २२)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, २३)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, २४)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, २५)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, २६)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, २७)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, २८)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, २९)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ३०)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ३१)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ३२)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ३३)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ३४)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ३५)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ३६)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ३७)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ३८)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ३९)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ४०)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ४१)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ४२)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ४३)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ४४)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ४५)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ४६)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ४७)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ४८)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ४९)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५०)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५१)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५२)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५३)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५४)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५५)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५६)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५७)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५८)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ५९)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६०)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६१)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६२)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६३)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६४)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६५)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६६)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६७)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६८)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ६९)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७०)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७१)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७२)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७३)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७४)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७५)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७६)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७७)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७८)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ७९)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८०)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८१)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८२)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८३)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८४)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८५)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८६)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८७)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८८)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ८९)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९०)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९१)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९२)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९३)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९४)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९५)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९६)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९७)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९८)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, ९९)

अपां नपादवतु मामदिष्टाद्दुरोणात्पाहि निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० २, ३५, १००)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(२) चन्द्र और तारागण को प्रशासन में रखना

(३) वर्षा करना

इलां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानु । (ऋ० ७, ६४, २)

(४) ऋतुओं का नियंत्रण करना

वरुण विराट् नैतिक देव और ऋत का संधारक है। जो ऋत का उल्लंघन करते हैं, उन्हें वह अपने पाश में आबद्ध करता है। पापियों को बीमारी से ग्रस्त कर वरुण त्रस्त करता है। किन्तु, जो स्तुतिकर्ता हैं, उनकी आपत्काल में रक्षा करता है। असुर (अच्छे अर्थ में असु + र= प्राणवान्) वरुण की माया भी है (ऋ० ५, ८५, ५)। वरुण के गृह के हजार दरवाजे—सहस्रस्थूण आसाते (ऋ० २, ४१, ५) तथा सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते (ऋ० ७, ८८, ५) तत्कालीन स्थापत्यकला के विकास की घोषणा करने के बदले कवियों की कल्पनाशक्ति के परिचायक हैं।

परवर्त्ती साहित्य में वरुण सिर्फ जल का देवता रह गया है।[1] ऋतवाद का और वरुण के नैतिक नियंतृत्व का प्रायः साथ ही तिरोभाव हुआ। अथर्ववेद के अनुसार वशा (गाय) वरुण के उदर में प्रविष्ट हो गयी (अथर्व १०,१०,२२)।

हिलेब्राण्ट और ओल्डेनबर्ग का यह विचार कि वरुण मूलतः चन्द्रमा का ही देवरूप है, निराधार, प्रतीत होता है। वरुण को सूर्य का देवरूप मानने के भी प्रमाण पर्याप्त नहीं हैं। भारतीय परम्परा में वरुण को आच्छादक या परिव्याप्तिकारक माना गया है और इस प्रकार उसे आकाश से सम्बद्ध मान सकते हैं। आकाश में परिद्रष्टा की भावना तो है, किन्तु नैतिक नियंत्रण की उस कल्पना का अभाव है, जो वरुण का एक मुख्य कार्य है।

पाश्चात्त्य शोधकों ने ध्वनिसाम्य के आधार पर वरुण और यूरानस को भारोपीय देव माना है। यूनानी देवशास्त्र में यूरानस (Uranus) पृथिवी (Gaia) का पुत्र या पति और क्रोनस (Chronos—काल) का पिता माना गया है। वह विशालकाल राक्षसों का भी पिता है।

यदि इन्द्र सम्राट् है तो वरुण राजा है। इन्द्रश्च सम्राट् वरुणश्च राजा (वा० सं० ८, ३७)। कूर्म गार्त्समद ने आपत्तियों (भियसं) को हटाने की प्रार्थना करने के अवसर पर वरुण को ऋतावा सम्राट् माना है—अपो सुम्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राडृतावोऽनु मा गृभाय (ऋ० २,२८,६)। वरुण को सम्राट् भी अत्रि ने कहा है—

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय (ऋ० ५,८५,१) सम्राट् वरुण के व्रत विश्वव्यापी हैं—आसीद्विश्वा भुवनानि सम्राट् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि (ऋ०८,५२,१)। सम्राट् वाजपेययाजी और राजा राजसूययाजी होता है। वरुण क्षत्रधर है। अग्नि, बृहस्पति और नासत्यों को भी क्षत्रधर कहा गया है।

१. वरुणोपामधिपतिः स मावतु (अथर्व, ५, २४, ४)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कतिपय देवताओं के साथ नियंतृत्व सम्बद्ध है। जो नैतिकता का हनन कर वरुण के प्रशासन में व्यवधान उपस्थित करते हैं, उन्हें पाशबद्ध होना ही पड़ेगा। नियंत्रण की कल्पना का विकास कैसे हुआ, इस पर वैदिक साहित्य से इतना ही मालूम पड़ता है कि नियंत्रण भयाधृत है। संत्रस्त मानव देवों की पुकार करता है। वैदिक कवि या तो स्वयं अपने हृदय में विराजमान भय की भावना को कविता में प्रकट कर रहा था अथवा तत्कालीन समाज में सामान्यतः व्याप्त शासन-भावना को साहित्यिक रूप दे रहा था। देवताओं में नियंतृत्व का आरोप सामाजिक और राजनीतिक नियंत्रण का ही साहित्यिक प्रकटीकरण है। नियंत्रण का प्रकटीकरण सामाजिक शोषण और राजनीतिक दमन से सम्बद्ध है, ऐसा प्रतीत होता है। वरुण के दूतों की बात भी उसके शासकत्व की सूचिका है।

(६) मित्र

ऋग्वेद में एक ही पूरा सूक्त (३,५९) मित्र (√ञिमिदा+क्त्र) की स्तुति में है, अन्यत्र वरुण और मित्र की साथ-साथ वन्दना की गयी है। सूर्य ही मित्र का भौतिक आधार है। अवेस्ता के मित्र से वैदिक मित्र की तद्रूपता व्यक्त की जाती है।

प्रजापति विश्वामित्र कवि ने मित्र और वरुण को युवा सम्राट् कहकर उनकी अभ्यर्थना की है—

मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः

(ऋ० ३, ५४,१०)

मित्र के सूर्याधृत होने से उसके रूप में प्रकाश और सूर्य त्विषि का ही महत्त्व व्यक्त किया गया है। प्राचीन वैदिक वाङ्मय में मित्र और अमित्र शब्द मिलते हैं, किन्तु, सखा के अर्थ में प्रयुक्त मित्र, और सूर्य से सम्बद्ध मित्र देवता में कोई तादात्म्य नहीं व्यक्त किया गया है।

मित्र शक्ति का अंशतः प्रकटीकरण करता है अतः उसका कुछ गौण राजनीतिक रूप तो है ही। मित्र का कार्य लोगों को निद्रा से उद्बुद्ध करना और कर्त्तव्य करने को प्रेरित करना है। कर्त्तव्य में राजनीतिक कर्त्तव्य भी परिगृहीत हो सकते हैं। वरुण के साथ मित्र भी ऋत का धारणकर्त्ता है। कह सकते हैं कि विराट् व्यापक नियमों की अनुकृति, अंशतः, सामाजिक और राजनीतिक जगत् में भी व्याप्त मानी जा सकती थी और इस दृष्टि से मित्र का कुछ योगदान अवश्य राजनीतिक अवस्था के निभाने में माना जा सकता है।

(७) सूर्य

सूर्य (√सृ+क्यप्) को समस्त विश्व का गुप्तचर कहा है—

तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति।

(ऋ० ४, १३, ३)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भारत के परवर्ती इतिहास में सूर्य से वंशारम्भ मानने की क्षत्रियों में प्रथा थी, किन्तु वेद में सूर्य क्षत्रियोत्पादक न होकर एक प्राकृतिक देव है।

सूर्य की दुहिता ससर्परी, जमदग्निदत्ता अर्थात् जमदग्नियों से दी हुई मानी जाती है। उसने (सर्सपरी ने) अमृत, अविनश्वर (अजुर्य) प्रभा विखेरी है। उसने पाञ्चजन्यों की सन्ततियों में (पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु) अपना अधिश्रव व्यक्त किया है।

(ऋ० ३, ५३, १५—१६)।

सूर्य की महत्ता व्यक्त करने में वामदेव का यह मंत्र उल्लेखनीय है—

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसद्ऋतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्।

(ऋ० ४, ४०, ६)

सूर्य है—

(१) हंसः शुचिषत्—प्रकाशस्थ हंस
(२) वसुः अन्तरिक्षसत्—अन्तरिक्ष में वर्तमान वसु
(३) होता वेदिषत्—वेदि के पास स्थित पुरोहित
(४) अतिथिः दुरोणसत्—गृह में बैठा अतिथि
(५) नृषत्—मनुष्यों में बैठाहुआ
(६) वरसत्—श्रेष्ठ स्थानों में बैठा हुआ
(७) ऋतसत्—ऋत में स्थित
(८) व्योमसत्—आकाश में स्थित
(९) अब्जा—जलोत्पन्न
(१०) गोजा—गाय से उत्पन्न
(११) ऋतजा—ऋत से उत्पन्न
(१२) अद्रिजा—पर्वत से उत्पन्न
(१३) ऋतम्—सत्य, नियम

सूर्य को नृषत् कहना उसके जनतांत्रिक रूप की अभिव्यक्ति है। ऋतसत्, ऋतजा और ऋतम् कहना सूर्य का व्यापक विराट् नियमों से सम्बन्ध उद्घोषित करता है।

प्लेटो ने रिपब्लिक में सूर्य को महत्तम देव मानकर उसे जगत्रूपी गुफा को तेज प्रदान करनेवाला माना है। प्लेटो के क्रेटायलस नामक ग्रंथ में सूर्य के पर्यायवाची यूनानी शब्दों की निरुक्ति में तीन अर्थ बताये गये हैं—(क) उदित होने पर सूर्य मनुष्यों को एकत्र करता है। (ख) अपनी कक्षा में पृथिवी के चारो ओर, वह परिभ्रमण करता है। (ग) पार्थिव उत्पादित पदार्थों में वह प्रभिन्नता लाता है।

(८) सविता

गायत्री मंत्र से सम्बद्ध होने के कारण सविता (√सू+तृच्) का महत्त्व हिंदू-इतिहास और संस्कृति में परम प्रकृष्ट है। हिरण्यपाणि सविता, सूर्य का ही एक नाम है, किंतु वेदोंमें

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जहाँ-तहाँ सूर्य और सविता में पार्थक्य भी बताया है (ऋ० ४, १४, २)। सविता का मुख्य कार्य है प्रेरणा देना। सविता व्रतों का रक्षक—**अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते** (ऋ० ४, ५३, ४) और सत्यधर्मा है—**व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा** (ऋ० १०, ३४, ८)। सत्यधर्मा विशेषण कुछ दूर तक पश्चिमी राजनीतिक दर्शन की, नैसर्गिक नियम (Natural Law) की याद दिलाता है। सविता को बुद्धि का प्रेरक माना है। इस अंश में उसकी तुलना यूनानी देवी फेरसेफोनी (Phersephone) से कर सकते हैं।

सविता असुर और सुनीथ है (ऋ० १, ३५, ७)। वह हिरण्याक्ष और हिरण्यपाणि या हिरण्यहस्त (१, ३५, १०) है। ये शब्द बताते हैं कि वैदिक अर्थ-व्यवस्था में हिरण्य (सोना) का उपयोग था।

सविता राक्षसों और यातुधानों को खदेड़ता है—**अपसेधन्रक्षसा यातुधानान्**—(ऋ० १, ३५, १०)।

राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से सविता का महत्त्व है। सविता को असुर (ऋ० ४, ५३, १) और द्यौः का धारणकर्ता तथा भुवन का प्रजापति (ऋ० ४, ५३, २) मानना, स्पष्ट ही, उसकी कल्पना को राजनीतिक सत्तावाद से प्रेरणा मिलती है, यह बताता है। उसे राजनीति के दार्शनिक और बौद्धिक पक्ष को प्रशस्त करनेवाला मान सकते हैं। वह कष्ट (दुःख) को दूर हटाता है—**अपामीवां बाधते** (ऋ० १, ३५, ९)। जल और वायु को भी उसके नियम का अनुवर्तन करना पड़ता है (ऋ० २, ३८)। ऋत से सविता का सम्बन्ध है—**ऋतं देवाय कृण्वते सवित्रे** (ऋ० २, ३०, १)।

(९) पूषन्

पूषन् (पूष्+कनिन्) यास्क के अनुसार सूर्य ही है। **विश्ववेदान् पूषन् आघृणी**[1] (ऋ० ६, ५३, ३, ८, ९) अर्थात् पूषन् दीप्तिमान् है। पुष्टिम्भर, अनष्टपशु, अनष्टवेदस् पूषन्, मृतात्माओं को मार्ग पर ले जाता है—पथस्पते, ऋ० ६, ५३, १। वह प्रपथ्य (वा० सं० २२, २०) अर्थात् मार्गदर्शक और मार्गरक्षक है।

राजनीतिक दृष्टि से पूषन् को दस्म और दस्मवर्चस्[2] कहना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन शब्दों से उसकी आश्चर्यकारिणी शक्ति का अभिबोध होता है। पूषन् के चक्र का भी उल्लेख है—**पूष्णश्चक्रं न रिष्यति** (ऋ० ६, ५४, ३)। वह पुरुवसु है और विमोचनकर्ता भी है। एक राजा (संभवतः सोम) जो गुहा में छिपा है उसे भी पूषन् ने ढूँढ डाला—**पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहाहितम् अविन्दच्चित्रबर्हिषम्**। (ऋ० १, २३, १५)। वह अदब्ध, रक्षिता और पायु है (ऋ० १, ८९, ५)। पूषन् वीरों का नाशक—**नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे** (ऋ० १, १०६, ४) और संग्राम में

---

१. रायो वाराय्याघृणे वसो राशिरजाश्व (ऋ० ६, ५५, ३)

२. पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इडस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः (ऋ० ६, ५८, ४)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

साहाय्यदाता है—अभि रुयः पूषन् पृतनास् नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा। (ऋ० ६, ४८ १९)। यह भी पूषन् का राजनीतिक पक्ष पुष्ट करता है।

संभव है, अगोह्य (छिपाने योग्य नहीं) पूषन्, आरम्भ में मेषपालकों[1] का देव रहा हो और पीछे वैदिक धर्म में उसे स्थान मिला हो।

(१०) विवस्वत्

विवस्वत् (वि + √वस् + क्विप् + मतुप्) में तेज की प्रधानता है अतः इस देव का मूलाधार या तो अग्नि या उदीयमान सूर्य है।

राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से विवस्वत् का महत्त्व है। त्वष्टा की दुहिता सरण्यू विवस्वत् की जाया है (ऋ० १०,१७,१—२,)। ओल्डेनबर्ग के अनुसार विवस्वान् आदि यज्ञकर्त्ता और मानव-जाति के मूल पुरुष हैं।

तैत्तिरीय संहिता में मानवों को विवस्वान् आदित्य का प्रजा माना है—

तनो विवस्वानादित्योऽजायत तस्य वा इयं प्रजा यन्मनुष्यास्तास्वेक एवर्धो यो यजते स देवानां भोगाय भवति। (तै० सं० ६, ५, ६, २)

मैत्रायणी संहिता में विवस्वान् को आदित्य कहा गया है—

स वाव विवस्वानादित्यो यस्य मनुश्च वैवस्वतो यमश्च मनुरेवास्मिँल्लोके यमोऽमुष्मिन्नेते वै देवयानान्पथो गोपायन्ति। (मै० सं० १, ६, १२)

(११) आदित्य

अदिति के आठ पुत्र उसके शरीर से उत्पन्न हुए (ऋ० १०, ७२, ८)। अपने सात पुत्रों के साथ अदिति देवों के पास गयी। मार्तण्ड उसका आठवां पुत्र था (ऋ० १०, ७२, ९)।

अदिति (√दो + क्तिन्) के पुत्र अथर्ववेद में आठ ही माने गये हैं। यद्यपि परवर्ती साहित्य में द्वादश आदित्य की कल्पना है। आदित्य अनृतद्वेषी हैं और प्रार्थनाकर्त्ताओं का संरक्षण करते हैं। दुरितनाश भी आदित्यों का कार्य है।

आदित्यों से अभय की याचना का मंत्र भी राजनीतिक महत्त्व रखता है, क्योंकि अभय ही राजनीतिक सत्ताधरों के प्रतिरोध के लिए आत्मिक बल प्रदान करता है—

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगाः न कर्त सुपथा स्वस्तये॥
(ऋ० १०, ६३, ७)

हे आदित्यो, सात वषट्कर्त्ता ऋत्विजों के साथ, समिद्धाग्नि मनु ने, मन से प्रथम यज्ञीय आहुति तुम्हें दी। तुम हमे भय रहित सुख (शर्म) दो और हमारे क्षेम के लिये अच्छा और सुगम मार्ग बनाओ या करो। सायण ने अभय और सुख को पृथक्-पृथक् माना है।

---

१ अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः (ऋ० ६, ५८,२)
: : : : : : : : : :
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः (ऋ० ६, ५४, ५)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

राजनीतिक दृष्टि से, आदित्य तेज का प्रकटीकरण कर सामाजिक और राजनीतिक जीवन में प्रभुत्व का मंडन करते हैं। इस प्रकार की कल्पना उदारवादी राजनीति के बदले सत्तावाद को ही प्रश्रय दे सकती है।

(१२) विष्णु

ऋग्वेद में विष्णुपरक सूक्त कम हैं, यद्यपि परवर्ती हिंदूधर्म में विष्णु परमोत्कृष्ट देव हैं। विष्णु (विष् + नुक्) के तीन पादनिक्षेप हैं [१]। इसका प्राकृतिक आधार सूर्योदय, मध्याह्नसूर्य और सूर्यास्त है। शम्बर के ९९ पुरों के विनाश और वर्ची के हजारों वीरों की हत्या में, इन्द्र को विष्णु ने सहयोग दिया है (ऋ० ७, ९९, ५)। विष्णु उरुक्रम (ऋ० ७, ९९, ६) हैं और मन्त्र से उसका संवर्धन होता है। विदथ में उसकी स्तोम से सुष्टुति होती है। वृणशिप्र दास की माया का वह विजय करता है (ऋ० ७, ९९, ४)। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से विष्णु शक्ति की मध्यमप्रतिपदा का प्रतीक है। न उसमें इंद्र की दुर्धर्षता और उद्दामता है और न प्रजापति और ब्रह्मणस्पति की विचार-निमग्नता।

(१३) उषा

लगभग बीस सूक्तों में उषा (√उष् + असि) का अभिनन्दन किया गया है।

उषा प्रकाशदायिनी और तमिस्राविनाशिनी है। वह देवों की माता है और अदिति को प्रकट करती है तथा यज्ञकेतु और वरदा है (ऋ० १, ११३)। वह अज, अमृत, देवी है। वह अश्वावती, गोमती और वीरवती है (ऋ० ७, ४१, ७)। वह विश्व का प्राणन (ऋ० १, ४८, १०) और जीवन है। वह पुराणी, अमर्त्या, चन्द्ररथा, सूनृता है (ऋ० ३ ६१, १, २)।

सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से निम्नलिखित मंत्र (ऋ० १, ११३, ५—६) महत्त्वपूर्ण है—

जिह्मश्ये चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उत्त्वम्।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ।५।

धनवती उषा वक्र सोने वाले को चलने के लिए (जगाती है)—एक को आभोग के लिये, एक को रयि के लिये और एक को यज्ञ करने के लिए। जो अल्प देखते हैं, उन्हें प्रभूत दिखाने के लिए। उषा ने समस्त विश्व को जगाया है। सायण ने आभोगये का अर्थ शब्दादि विषय के लिए, और दभ्र का अल्प किया है। सायण के अनुसार उषा 'अंधकारावृत होने के कारण कम देखने वाले मनुष्यों के लिए तमस् से तिरोहित पदार्थों को प्रकाश प्रदान करती है।'

---

१. त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन्। (ऋ० १, २२, १८)
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूळ्हमस्य पांसुरे। (ऋ० १, २२, १७)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीवताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ।६।

एक को क्षत्र के लिये, एक को श्रवस् (वैदिक ज्ञान) के लिये, एक को महती अग्निष्टोमादि इष्टि के लिये और एक को अपेक्षितार्थ गमन अथवा श्रम के लिये, भिन्न जीवनोपायों के लिये, उषा ने समस्त विश्व को जगाया है। सायण ने क्षत्र का अर्थ धन, श्रवस् का अन्न, विसदृशा जीविता का नानारूप जीवनोपायभूत कृषिवाणिज्यादि किया है।

छठे मन्त्र में लुडविग चतुर्वर्णवाद की स्पष्ट ध्वनि पाता है।
शत्रुओं का दमन करने के लिये भी द्यौः पुत्री उषा से प्रार्थना की गयी है। (ऋ० १, ४८, ७—१०)।

उषा-सूक्तों में कवित्वपूर्ण सौन्दर्यानुभूति है। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से इतनी ही बात महत्त्वपूर्ण है कि वैदिक कवि उषा की प्रार्थना में भी शत्रुनाश की कामना करना, भूल न सका। विदित होता है कि भयंकर संकटों और शत्रुओं से वैदिक कवियों का पाला पड़ा होगा।

(१४) अश्विनौ

अश्विनों के कुछ प्रमुख विमोचनात्मक और हिंसात्मक कार्य और उनके द्वारा संरक्षितों के नाम निम्नलिखित हैं। इनमें कुछ नाम तो अवश्य ही वैदिक राजनीति से सम्बद्ध विशिष्ट पुरुषों के हैं—

अघाश्व (ऋ० १, ११६, ६)
अतिथिग्व (ऋ० १, ११२, १४)
अत्रि (को मायावी दस्युओं के जाल से छुड़ाना—ऋ० १, ११९, ६)
अधृगु (ऋ० १, ११३, २०)
अन्तक (ऋ० १, ११२, ६)
उर्जानी (ऋ० १, ११९, २)
उपस्तुत (ऋ० १, ११२, १५)
उशना काव्य

ऋज्राश्व—सायण के अनुसार वृषागिर का पुत्र ऋज्राश्व था। ऋज्राश्व ने पौरों के १०० मेषों को खण्ड-खण्ड कर अश्विनों की वृकी को खिला दिया था, इसी कारण (अर्थात् उनकी मेषें लेकर), पौरों का अहित कर रहा है, यह देख वृषागिर ने उसे (ऋज्राश्व) अन्धा कर दिया था। अश्विनों ने उसे पुनः चक्षुर्दान दिया।

—चक्षदानमृज्रश्वं तं पितान्धं चकार (ऋ० १, ११६, १६)।

ऋतस्तुभ (ऋतस्तुप्)
औशिज (ऋ० १,११२,११)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कक्षीवान्, औशिज (उशिज्पुत्र) (ऋ० १,११६,७। १,१२०,९८,९,१०)।
वह पञ्चकुलोत्पन्न था। सायण के अनुसार पञ्च का वंशज कक्षीवान् ऋषि था ऋ० १,१२१,५,)
कर्कन्धु (ऋ० १,११२,६)
कशोजुव (कशोजु) - (ऋ० १.११२,१४)
कलि—(ऋ० १,११२,१५)
कुत्स आर्जुनेय (ऋ० १,११३,२३)
कृशानु (ऋ० १,११३,२१)
घोषा—कक्षीवान् की पुत्री घोषा कुष्ठरोगनिपीडिता थी। उसके लिए पति खोज देना (ऋ० १,११७,७)
च्यवान—को युवा बनाना (ऋ० १,११६,१०)
जह्नावी - जह्नु की सन्तानों को वाज युक्त करना (ऋ० १,११६,१९)
जाहुष—जाहुष की रात्रि में रक्षा (ऋ० १,११६,२०)
त्रसदस्यु
त्रिशोक—ऋ० १,११२,१२
तुर्वीति—ऋ० १, ११३, २३
तौग्र्य—तुग्र के पुत्र का समुद्रोद्धार (ऋ० १,११७,१४,१५)
दभीति—ऋ० १, ११३, २३
दिवोदास्—ऋ० १,११६,१८। १,११९,४
दध्यञ्च्—आथर्वण (अथर्वा के पुत्र) दध्यञ्च् को अश्व का सिर देना (ऋ० १,११६,१२। १,११९,९)
नर्य—ऋ० १,११२,९। ऋ० १,५४,६ के अनुसार इन्द्र नर्य की सहायता करता है
नार्षद—नृषद् के पुत्र नार्षद (अर्थात् कण्व या उसका वंशज श्याव) की कुष्ठ रोग से रक्षा और रुशस्ति से उसका विवाह
पञ्च—पञ् के पुत्रों (पञ्चासः) को साहाय्यदान
पठर्वा—ऋ० १,११२,१७
परावृज—ऋ० १,११२,८
पुरन्धि—ऋ० १,११७,१९
पुरुकुत्स—ऋ० १,११२,७
पृथि
पृश्निगु—ऋ० १,११२,७
पेदु—इन्द्रजूत सर्पहन्ता अश्व पेदु को दिया (ऋ० १,११६,६।१,११८,९।१,११९,१०।)
भरद्वाज—ऋ० १,११२,१३

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भुज्यु—समुद्र से उद्धार (ऋ० १,११६,३,।१,११९,४।)

मन्धाता—ऋ० १,११२,१३

मनु—ऋ० १,११२,१६

रेभ—दश दिन और दश रात्रि तक वह जलगर्त में था, उसका उद्धार—
ऋ० १,११२,५।१,११६,२४।१,११९,६।

वन्दन—ऋ० १,११२,५।१,११६,१।१,११७,५।१,११९,७

वम्र—ऋ० १,११२,१५

वध्रिमती—हिरण्यहस्त नामक पुत्र उसे देना

वश अश्व्य—उसे रणार्थ शक्तिशाली बनाना (ऋ० १,११२,१०।१,११६,२२)

वसिष्ठ—

व्यश्व—ऋ० १,११२,१५,८,९,१०

विमद—पौरुमित्री (पुरुमित्र की पुत्री ऋ० १,११७,२०) को विमद की जाया के रूप में देना (ऋ० १,११६,१)

विश्पला—राजा खेल की सम्बन्धी थी। उसे एक नयी लोहे की टांग दी गयी—
जंघामायसीं (ऋ० १,११६,१५)

विश्वक—कृष्ण के पुत्र विश्वक को उसका पुत्र विष्णायु प्राप्त करा देना
(ऋ० १,११६,२३)

विश्वाच—विश्वाच की संतति की विष से नासत्यों द्वारा हत्या। जातं विश्वाचो अहतं विषेण (ऋ० १,११७,१६)

शयु—उसे गोदुग्ध प्रदान (ऋ० १,११२,१६।१,११६,२२।१,११७,२०।१,११८,८)

शर—ऋचत्क के पुत्र (आर्चत्क) शर को पीने के लिए जल देना
(ऋ० १,११६,२२)

शर्यात—ऋ० १,११२,१७

श्याव—असुरों द्वारा तीन टुकड़ों में कटे श्याव को जीवनदान (ऋ० १,११७,२४)

शुचन्ति—(ऋ० १,११२,७)

श्रुतर्य—ऋ० १,११२,९

स्यूमरश्मि—ऋ० १,११२,१६।८,५२,२

सुदास्—ऋ० १,११३,१९

सुभरा—

हिरण्यहस्त—ऋ० १,११६,१३।११७,२४।

इन व्यक्तिगत त्राणकार्यों के अतिरिक्त अश्विनों ने दासों का दमन किया और आर्यों को ज्योति प्रदान की—

अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तो ज्योतिश्चक्रथुरार्याय (ऋ० १,११७,,२७)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अश्विनों (नासत्यों) का राजनीतिक योगदान भी है। दस्युओं के पराभव का कुछ श्रेय उनको भी है। आर्थिक और राजनीतिक शक्ति से वे स्तुतिकर्त्ताओं को युक्त करते हैं—

रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायु : सुवीयं नासत्या वहन्ता (ऋ० १,११६,१९)

पृथी वैन्य ने नासत्यों का आवाहन किया था—पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो (ऋ० ८,९,१०)। महाभारत शांतिपर्व के अनुसार मानव-जाति का वह दूसरा राजा था, प्रथम उसका पिता स्वयं वेन था।

(१५) इंद्र

सवज्र इन्द्र (√इन्द् + ख) वैदिक आर्यों का दैवी चिरकालिक राष्ट्रपति[1] है। सोमपान कर दुर्दान्त[2] बना हुआ अधिवक्ता इन्द्रस्तुतिकारों का रक्षण और दुष्टों का दमनी करता है। अतः वार्षागिर उसकी प्रभूत स्तुति करते हैं (ऋ० १,१००,१७)। अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधा के साथ ऋज्राश्व उसकी प्रार्थना में संलग्न रहता है (ऋ० १, १००, १७)।[3] संवरण प्राजापत्य नामक वैदिक कवि (ऋ० १, ३३, ९-१०) इन्द्र क प्रार्थना करता है और फलस्वरूप मारुतश्वा, व्यवतान और लक्ष्मण के पुत्र ध्वन्य उसकी अश्वदान से सहायता करते हैं। इन्द्र के मुख्य कारनामें, जिनमें से कुछ का अतिशय राजनीतिक तात्पर्य भी है, निम्नलिखित हैं—

(१) सूर्य को प्राप्त कराना

(२) जल-विमोचन

(३) क्षेत्र (भूमि) का विजय

ये तीनों कर्म अहिवृत्र के वध से सम्बद्ध हैं। ऋग्वेद (१,१००,१८) के अनुसार दस्युओं के साथ शिम्यु[4] (ऋ० १,१००,१८) पर भी इन्द्र ने विजय प्राप्त किया है।

१—तुलनीय रोथ = "der nationale Gott und Liebling der arisch—indischenstamme."

रोथ के अनुसार इन्द्र √शब्द इन् या √इन्द् से बना है।

२—नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन्।

नकिरेवा यथा त्वम् (ऋ० ४,३०,१)

३—एतत्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः।

ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधा : ॥ (ऋ० १,१००,१७)

४—शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः (ऋ० ७,१८,५)। ग्रासमैन (कोश) के अनुसार शिम्यु जनवाची है और इसका अर्थ द्रोही, शत्रु भी है (तुलनीय शिमी, शिमीवत्)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इन्द्रादिति की स्तुति में वामदेव कवि इन्द्र के विषय में कहता है- **कस्ते मातरं विधवाम चक्रत्** (ऋ० ४, १८,१३) अर्थात् किसने तुम्हारी (इन्द्र की) माता को विधवा बना दिया है ? इन्द्र द्वारा व्यंस की हत्या (ऋ० ४,१८,९) का संभवतः यहाँ उल्लेख है। संभव है, इन्द्र की छोटी प्रतिमा भी ऋग्वेदकालीन भारत में बनती और बिकती हो। वामदेव कहता है—**क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः। यदा वृत्राणि जंघनदथैनं मे पुनर्ददत्** (ऋ० ४,२४,१०) अर्थात् कौन मेरे इस इन्द्र को दश धेनुओं से खरीदेगा ? जब वह वृत्रों को मार डालेगा तब मुझे पुनः दे देगा। स्पष्ट है कि दश गायों के मूल्य के बराबर होना इन्द्रप्रतिमा के विशिष्ट महत्त्व का द्योतक है। सायण ने दश धेनुओं का तात्पर्य दश स्तुतियाँ ग्रहण किया है। बालोचित सरलता से कुत्स आङ्गिरस इन्द्र से प्रार्थना करता है (ऋ० १,१०४,८) कि हमारे आण्डों (गर्भस्थ शिशुओं) को नष्ट न करो और न हमारे प्रिय भोजनों को चुराओ (प्रमोषीः)।

इन्द्र को मनुष्यों ने क्षेम का त्राणकर्त्ता बनाया है (ऋ० १,१००,७)। यहाँ मनुष्य या जनता के लिये क्षितयः शब्द प्रयुक्त हुआ है।

इन्द्र को समस्त करुण अर्थात् अभिमत फलनिष्पादनरूप कर्म का ईश माना गया है—**स विश्वस्य करुणस्येश एको** (ऋ० १,१००,७)।

इन्द्र सत्यराध (सच्चा वरदाता) और ब्रह्मवाह अर्थात् स्तुतियों से आह्वातव्य है (ऋ० १,१०१,८,९,)। इन्द्र के प्रसंग में उत्सव शब्द का प्रयोग मिलता है—**तमप्सन्त शवस उत्सवेषु** (ऋ० १,१००,८)। शवसः उत्सवेषु का अर्थ सायण ने किया है—बलसम्बन्धी उत्सव अर्थात् संग्राम। ग्रिफिथ ने इसका अर्थ किया है शक्ति के ऊँचे दिवस (high days of prowess)।

इन्द्र उक्थ्य है और उसकी वीर्यशक्ति सुप्रवाचन है (ऋ० २,१३,११)। क्योंकि, वह तेजस्वी विराट् कर्म करता।

नोधा गौतम ने इन्द्र को धियावसुः कहा है (ऋ० १,६१,१६। १,६२,१३। १,६२,९। १,६४,१५)। सायण के अनुसार विद्या या कर्म से जिसने धन प्राप्त किया है, उसे धियावसुः कहते हैं।

पौंस्य और नृम्ण के साथ ही इन्द्र अपने याचकों को प्रभूत धन का देनेवाला है।[1]

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम्।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते॥ (ऋ० ७,३२,१६)

इन्द्र ! सबसे छोटा धन तुम्हारा ही है, मध्यम धन का तुम्हीं पोषण करते हो, समस्त परम धन पर तुम्हीं राज्य करते हो। पशुओं के निमित्त युद्ध में कोई भी तुम्हारा विरोध नहीं करता।

१—"तं वनाय" (ऋ० १,१००,८)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यूनानी देवशास्त्र में प्लूटो (Pluto) को धनदा कहा गया है। उसके नाम का अर्थ है, जो पृथिवी के गर्भ से निकले धन को दूसरे को दे। लुडविग ने ध्वनिसाम्य के आधार पर इन्द्र की तुलना पुराने स्लाभोनिक जेद्रु[1] (Jedru = तेज, शीघ्रगामी) से की है।

यूनानी देव अरेस (Ares) युद्धदेव है। वह पौरुष का प्रतीक माना गया है। उसकी वृत्रहन्ता नमुचिसूदन शचीपति से आंशिक समता है, क्योंकि, वह, प्लेटो के ग्रंथ 'क्रेटायलस' के अनुसार, युद्ध का दुर्धर्ष भीमदेव है।

इन्द्र का ऋग्वेद में अतिमात्र राजनीतिक महत्त्व है। शक्तिकृष्टता के कारण उसे सहस्रमुष्क (ऋ० ८, १९,३२) कहा गया है। पृथु नामक कवि इन्द्र से अपनी स्तुति सुनने की प्रार्थना करता है—श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वैन्यस्यार्कैः (ऋ १०,१४८,५)। परवर्ती परंपरा में पृथु वैन्य का अभिषिक्त नरपतित्व को प्रशस्त करने में महान् योगदान है। पुरन्दर, जिष्णु, पुरुहूत, इन्द्र अपने समस्त सपत्नों का पराभव और प्रणाश कर डालता है—हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः (ऋ० १०, १५५,४)। स्पष्ट है कि इन्द्र का प्राचीन भारतीय राजनीतिशास्त्र के यथार्थवाद को व्यक्त करने में महत्त्व है। नृतम, (ऋ० ७,१९,१०) कह कर इन्द्र का मानव-जगत् से संबंध बताया गया है। वसुक्र कवि ने उसे नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् (ऋ० १०,२९,१) और, नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् (ऋ० १०,२९,१) कह कर व्यक्त किया है कि इन्द्र की कल्पना की परिपुष्टि तत्कालीन राजनीतिक केन्द्रीकरण (नृतमम क्षपावान् अर्थात् पृथिवीपाल, की पृष्ठभूमि में ही हुई है। उसे सत्पत्ति भी कहा है, (ऋ० १,१७४,१)।

ऋग्वेद (१०,४९) में इन्द्र के प्रचंड कारनामों में कुछ का उल्लेख 'इन्द्र वैकुण्ठ' नामक ऋषि ने किया है। उद्दाम शक्ति और अनियंत्रित विजीगिषा इन्द्र के रूप में प्रकट हुई है। वह तुविग्रीव (मजबूत गर्दनवाला), वपोदर (दीर्घकाय), सुबाहु, विश्वेशान, दीर्घाङ्कुश, शाचिग (ज्योति के लिए प्रसिद्ध) है और आखण्डल (प्रणाशविधाता) के नाम से आहूत होता है (ऋ० ८,१७,८-१२)। सायण के अनुसार शृंगवृष (ऋ० ८,१७, १३) और पृदाकुसानु (सर्प के समान शीर्ष या पृष्ठ को उठानेवाला, ऋ० ८,१७,१५) भी इन्द्र के विशिष्ट नाम हैं। आर्य पुरुषों की, अनेक बार त्राता, अविता इन्द्र ने रक्षा की है। उसके कुछ महत्त्वपूर्ण कर्म निम्नलिखित हैं—

१. अत्क—कवि (उशना काव्य) के लिये अत्क को ताड़ित करना (ऋ० १०,४९,३)

२. अध्रिगु—अध्रिगु की रक्षा (ऋ० ८,१२,२)

३. अभ्यावर्ती चायमान—अभ्यावर्ती चायमान के लिए वरशिख का मूलोच्छेद—वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् (ऋ० ६,२७,५)

---

१. मैक्समूलर : ऐनथ्रोपोलोजिकल रेलिजन (लौंगमेन्स, १८९१), पृ० ३९८।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४. अरु—अरु की हिंसा—
अमिमीता अरुं यश्चतुष्पात् (ऋ० १०,९९,१०)

५. अर्णा और चित्ररथ—सरयु नदी के उस पार आर्य अर्णा और चित्ररथ का वध—उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः। अर्णाचित्ररथावधिः (ऋ० ४,३०,१२)

६. असमाति—रथप्रोष्ठ कुल और तत्कुलोत्पन्न असमाति के कल्याणार्थ इन्द्र से प्रार्थना। (ऋ० १०,६०,२,५)

७. आस्त्रबुध्न—आस्त्रबुध्न के लिए वैन्य को मुक्त करना।

८. इट—इट (Ita) के रथ की रक्षा (ऋ० १०,१७१,२)

९. उशीनराणी—उशीनराणी के अनड्वाह को हाँकना। कवि हाँकने की प्रार्थना करता है (ऋ० १०,५९,१०)

१०. ऋज्राश्व—महाराज वृषागिर् के पाँच पुत्रों (वार्षागिर)—ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधस् की सहायता (ऋ० १,१००,१७)

११. एतश—दशव्रज के विरोध में एतश या वश की सहायता (ऋ० ८,५०,९ : बालखिल्य)

१२. ओगणास—ये शत्रु महान् अंधकार को प्राप्त हों, ऐसी इन्द्र से प्रार्थना है (ऋ० १०, ८९, १५)। सायण ने ओगणासः को व्यक्ति या जातिवाचक न मानकर उन्हें संघीभूत शत्रु माना है।

१३. कक्षीवान्—उशिज् के पुत्र कक्षीवान् के लिए वचया नाम की वधू प्राप्त कराना (ऋ० १,५१, १३)। कक्षीवान् का नाम ऋग्वेद (ऋ० १,१८,१/१,११३,११) में अन्यत्र भी है—कक्षीवन्तं च औशिजः। वैदिक इन्डेक्स (१,१५१) के अनुसार संभवतः, कक्षीवान् दासी उशिज् का वंशज था (He appears to have been a descendant of a female slave named Usij)।

१४. कवष—वृद्ध कवष को जल में डूबोना (ऋ० ७,१८,१२)

१५. कालकाञ्ज—ये असुर थे। इन्द्र ने इनका पराजय किया। काठक संहिता (८,१)—कालकाञ्जा वै नामासुरा आसंस्त इष्टका अचिन्वत तदिन्द्र इष्टकामप्युपाधत्त। मैत्रायणी संहिता (१,६,९) में कालकाञ्जों के इन्द्र द्वारा पराभव का उल्लेख है।

१६. कुत्स—पिता के समान कुत्स की रक्षा (ऋ० १०,४९,४)

१७. कुयवाच—कुयवाच को मारने के लिये घर ले आना
नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् (ऋ० १,१७४,७)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१८. कृष्ण—अंशुमती (यमुना) नदी के किनारे दश हजार अनुचरों से युक्त कृष्ण का इन्द्र द्वारा पराभव (ऋ० ८,९६, १३-१५)

१९. गोशर्य—दीर्घनीथ और गोशर्य को धन दान (ऋ० ८,५०,१०। वालखिल्य)

२०. चुमुरि—चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर और शुष्ण का पराभव और उनके पुरों का नाश—

स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित्॥
(ऋ० ६,१८,८)

२१. जातूष्ठिर—जातूष्ठिर की सहायता

जातूष्ठिरस्य प्रवयः सहस्वतो (ऋ० २,१३,११)

२२. तुजी—तुजी को दान देना (तुजये न प्रियाधृषे—ऋ० १०,४९,४/६,२६,४)

२३. तुर्वश—यदु और तुर्वश की रक्षा (ऋ० १०,४९,८/८,४५,२७/१,१७५,९)

२४. तुर्वीति—तुर्वीति[1] और वय्य किनारे लग जायँ इसलिए आपप्रवाह को अवरुद्ध करना

सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून्। (ऋ० ४,१९,६)

२५. त्रिशोक—त्रिशोक के लिए गिरि का कृन्तन। (ऋ० ८, ४५,३०)

२६. दध्यञ्च्—दध्यञ्च् आथर्वण की अस्थियों से ९९ वृत्रों को मारना—

इन्द्रो दधीचो अस्थभि र्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव।
(ऋ० १,८४,१३)

२७. दशग्व—दशग्वों की रक्षा (ऋ० ८,१२,२)। -दशग्व→ऋषिकुल का नाम, या सूर्य (लुडविग) या आदित्य, या दश महीनों का यज्ञ

२८. दशोणी—पणियों से उसका युद्ध हुआ था। इन्द का वह प्रिय था—

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये (ऋ० ६,२०,४)

२९. दशद्यु—युद्ध के समय दशद्यु की सहायता—

त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् (ऋ०६,२६,४)

३०. दाशराज्ञ—दाशराज्ञ युद्ध के समय सुदास् के शत्रुओं को परुष्णी (रावी) नदी में डुबाना। (ऋ० ७,१८,१०,१२)

३१. दास—दास के लिए पृथिवी को आच्छादिका बनाना—

क्षां दासायोपबर्हणीं कः (ऋ०, १,१७४,७)

३२. दैववात—दैववात के लिए वृचीवन्तों को देना—

वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् (ऋ० ६,२७,७)। संभवतः सृञ्जय ही दैववात है—अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते।
(ऋ० ४,१५,४)। देववाततमाः का भी ऋग्वेद (६,२९,४) में प्रयोग है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

३३. नमुचि—नमुचि के लिए सिर को मथना—

अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो (ऋ० ५,३०,७)

: : : : : :

शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् (ऋ० ५,३०,८)

३४. नहुष्—इन्द्र का नहुष् से अपनी प्रकृष्टता व्यक्त करना।—अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टर. (ऋ०१०,४९,८)

३५. नार्मर—नार्मर की हत्या की योजना, जिससे दास नष्ट हो जायँ—

यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः

(ऋ० २,१३,८)

ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यम् (ऋ० २,१३,८) में लुडविग ने ऊर्जयन्ती को नार्मर के दुर्ग का नाम माना है।

३६. पिठीनस्—पिठीनस् के लिए रजि को देना—

त्वं रजि पिठीनसे दशस्यन् (ऋ० ६,२६,६)

३७. पिप्रु—पिप्रु के दुर्गों का नाश और औशिज् ऋज्रिश्वन् की रक्षा

(ऋ०, १०,९९,११)

३८. बृहद्रथ—बृहद्रथ और नववास्त्व का पराजय। (ऋ० १०,४९,६)

३९. भेद—भेद की हत्या (यमुना के किनारे) (ऋ० ७,१८,१९)

४०. मान्यमान देवक—मन्यमान के पुत्र (मान्यमान) देवक की हत्या।

(ऋ० ७,१८,२०)

४१. मृगय—मृगय को, आखेटपशु के रूप में श्रुतर्वण को दे देना। (ऋ० १०,४९,५)

४२. युध्यामधि—युध्यामधि की हत्या। (ऋ० ७,१८,२४)

४३. रुधिक्रा—रुधिक्रा का नाश—

यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत

(ऋ० २,१४,५)

४४. रूम, रुशम, श्यावक और कृप के साथ इन्द्र मोद प्राप्त करता है।

(ऋ० ८,४,२)

४५. रौहिण—रौहिण का विदारण

यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुः (ऋ० २,१२,१२)

४६. वशिष्ठ की प्रार्थना—षड्विध राक्षस की पाषाण (वज्र) से हत्या की प्रार्थना—

(क) उलूकयातु—उल्लू के रूप से वर्तमान

(ख) शुशुलूकयातु—शिशु उलूक के रूप से वर्तमान

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(ग) श्वयातु—कुत्ते के रूप से वर्तमान
(घ) कोकयातु—चक्रवाक के रूप से वर्तमान
(ङ) सुपर्णयातु—श्येन के रूप से वर्तमान
(च) गृध्रयातु—गृध्र के रूप से वर्तमान

—(ऋ० ७,१०४, २२)

सायण ने ठीक ही षड्विध नामों से नानाकार राक्षसों का ग्रहण माना है। ऋ०, ७,१०४, २४, में पुमान् राक्षसों के साथ स्त्री-राक्षसों को भी माया से मारने के लिये वशिष्ठ प्रार्थना करता है (स्त्रियं मायया शाशदानाम्)।

४७. शण्डिक—शण्डिक लोगों के नेता की हत्या। (ऋ० २, ३०,८)

४८. शतयातु—पराशर, शतयातु और वसिष्ठ को साहाय्य-प्रदान

(ऋ० ७,१८,२१)

४९. शंबर—कुलीतरपुत्र शंबर के ९९ दुर्गों का नाश। (ऋ० ९,२६,३)

५०. शुष्ण—शुष्ण की हत्या (श्नथिता)। (ऋ० १०,४९,३)

—शुष्णं पशि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः (ऋ० १०,२२,१४)

५१. षड्गृभि—षड्गृभि को सव्य के हाथ में देना। (ऋ० १०,४९,५)

५२. विश्वरूप—त्वाष्ट्र विश्वरूप का नाश

—अस्मभ्यं तत् त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय—

(ऋ० २,११,१९)

५३. वसुरोचिष्—अङ्गिरसकुलोत्पन्न वसुरोचिषों का नेतृत्व कर एक हजार घोड़े प्राप्त करना। (ऋ० ८,३४,१६)

५४. वायत—वायत (= वयतपुत्र) पाशद्युम्न द्वारा सुत सोम की अपेक्षा वसिष्ठों का वरण करना।

पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रो ऽवृणीता वसिष्ठान्

(ऋ० ७,३३,२)

५५. वृकद्वरस्—असुर वृकद्वरस् (ऋ० २,३०,४) से रक्षा।

५६. वेश—आयु के लिये वेश को नम्र बनाना (अर्थात् पराभूत करना) (ऋ० १०,४९,५)—अहं वेशं नम्रमायवेऽकरम्।

५७. वैकर्ण—दोनों वैकर्णों (= कुरु-क्रिवि) के इक्कीस जनों को विकीर्ण करना

—एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयो जनान् राजा न्यस्तः।

(ऋ० ७,१८,११)

५८. व्यंस—व्यंस की हत्या (ऋ० ३,३४,३)

५९. सनक—अयज्वा होने के कारण सनक (सनकाः) का नाश (ऋ० १,३३,४)

६०. सृञ्जय—सृञ्जय के लिये तुर्वश को देना।

—स सृञ्जयाय तुर्वशं परादात् (ऋ० ६,२७,७)

---

१. श्रोयडर, हेरेक्लस और इन्द्र (जर्मन में), १९१४।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

६१. स्मदिभ—स्मदिभ, तुग्र और वेतसूओं का नाश। (ऋ० १०,४९,४)

६२. स्वर्भानु—आसुर (स्वर्भानु) के द्वारा सूर्य के तमसावृत होने पर उसकी माया का निराकरण (ऋ० ५,४०,५-६)

महान् पराक्रमी इन्द्र की शक्ति का जो ओजस्वी वर्णन ऋग्वेद में है, वह परवर्ती साहित्य में नहीं मिलता है। अथर्ववेद में इन्द्र एक साधारण देव है। जैमिनीय-उपनिषद्-ब्राह्मण (१,२,२) में लिखा है कि आजिकेशी कुल के बक दालभ्य ने इन्द्र को रोका—बको दालभ्यः आजिकेशिनामिन्द्रं ववर्ज।

इन्द्र द्यौः और पृथिवी का महान् सम्राट् है (महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्—ऋ० १,१००,१)।

न केवल बौद्धिक दृष्टि से इन्द्र बहुज्ञ (सहस्रचेताः) और बहुस्तुत (शतनीथ) है किन्तु उसकी शक्ति उग्र है। वह भीम है और शक्ति में सोम के समान है (चम्रीषो न शवसा—ऋ० १,१००,१२)

इन्द्र के शवस् का अन्त देव और मनुष्य नहीं जान सकते। अपने बल से वह पृथिवी और द्यौःलोक का प्रकृष्ट रेचक (प्ररिक्वा अर्थात् बल में बढ़ा हुआ) है (ऋ० १,१००,१५)। जो शूर हैं (शूरिभिः), जो भीरु हैं (भीरुभिः), जो दौड़ते हैं (धावद्भिः) और जो भगेड़ु हैं (जिग्युभिः), इन चारों से इन्द्र आहूतव्य है (ऋ० १,१०१,६)। वह भूरिकर्मा और सत्यशुष्मा है (ऋ० १,१०३,६)।

इन्द्र का वज्र त्वष्टा का बनाया हुआ है (ऋ० १,८५,९)। ऐसा भी कहा गया है कि कविपुत्र काव्य उशना ने अपने मित्र इन्द्र के लिए वज्र बनाया (ऋ० १,१२१,१२)।

इन्द्र सर्वविजयी विभीषण है—इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो (ऋ० ५,३४,६)। इन्द्र की इतनी भीषण नरसंहारिणी लीला को देखते हुए भी संवरण प्राजापत्य इन्द्र को अजातशत्रु कहता है—अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते (ऋ० ५,३४ १)। इन्द्र परमज्य (अविनश्वरमौर्वीधारी) और ऋचीषम (स्तुतिकरणीय) है (ऋ०८,९०,१)। वह ईशानकृत् और बल का पुत्र (शवसः पुत्रः) है (ऋ०८,९०,२)। वह विप्र, धर्मकृत्, विपश्चित् (ऋ०८,९८,१) है।

इन्द्र समस्त चराचर प्राणियों का ईशान है (ऋ० ७,३२,२२)। वशिष्ठ, मघवा इन्द्र से रक्षक (वरुथ बनने की कामना करता है (ऋ० ७,३२,७) और चाहता है कि मारे गए लोगों का धन उसे मिले तथा दुर्जेय (दूणाश) लोगों का धन भी—बि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् (ऋ० ७,३२,७)। इन्द्र में श्रद्धा रखने से ही युद्ध में शक्तिधर शक्ति प्राप्त करता है—श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति (ऋ० ७,३२,१४)। यहाँ सायण ने यज्ञात्मक शैली का अनुसरण कर पार्ये दिवि का अर्थ सौत्येऽहनि (यज्ञ का दिन) कर दिया। राजनीति की दृष्टि से युद्धदेव वृत्रहा इन्द्र के साथ पार्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नामधारी का युद्ध अधिक संगत है। हर्यश्व पुरुहूत इन्द्र से आजि (युद्ध) में धनार्थी को रक्षा के लिए भिक्षा माँगनी पड़ती है—

त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युनाम भिक्षते॥

(ऋ० ७,३२,१७)

इन्द्र ने प्रार्थनाकर्त्ताओं की शक्ति (तविषी) को बढ़ाया है और अनेक प्रकार की भाषा बोलनेवाले को हजारों की संख्या में मारा—यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान (ऋ० १०,२३,५)।

इन्द्र महान् और शक्तिशाली[1] प्रजापतियों का सम्राट् (महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ऋ० १०,१३,४) है।

इन्द्र के राजनीतिक महत्त्व को विदित कराने में निम्नलिखित मन्त्र महत्त्वपूर्ण हैं—

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन॥

(ऋ० १, ५१, ८)

हे इन्द्र, आर्यों को और जो दस्यु हैं, उन्हें अच्छी तरह जानो। जो व्रतरहित हैं उनका शासन करते हुए उन्हें उनको अर्पित करो, जिनका घास बिछा है (बर्हिष्मते)। यजमान का बलवान् उत्तेजक अर्थात् उत्साहवर्धक बनो। तुम्हारे समस्त काम, पर्वों पर हमें प्रसन्नता देते हैं।

यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद् यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे॥

(ऋ० १, १०१, ३)

द्यौः और पृथिवी जिस इन्द्र का महान् पौरुष है, जिसके अनुशासन (व्रत) में वरुण और सूर्य हैं, जिस इन्द्र के व्रत का नदियाँ भी अनुसरण करती हैं (सश्चति), उस मरुद्युक्त इन्द्र की मैत्री के लिये हम आवाहन करते हैं।

इन्द्र के लिये "स्वराजे" का प्रयोग राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से प्रभूत महत्त्व का है—

इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसे ऽवाचि।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम। (ऋ०१,५१,१५)

वृषभ (के समान बलवान्) स्वराट् अर्थात् स्वयंप्रकाश, सचमुच में शक्तिशाली, महान् इन्द्र के लिए यह मन्त्र कहा गया है। हे इन्द्र, इस युद्ध में हम और समस्त वीर तथा सूरिगण, तुम्हारी संरक्षा में हैं।

इस मन्त्र में इन्द्र को स्वराज और सत्यशुष्म कहना राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि शक्ति का महत्त्वाभिज्ञापन हो रहा है। वीर और वृजन शब्द भी भौतिक तथा राजनीतिक जगत् में व्याप्त आतंकपूर्ण स्थिति के बोधक हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्वसमर्थित (विश्वगूर्त) इन्द्र को अन्य मन्त्रों में भी स्वराड् कहा गया है—स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः (ऋ० १,६१,९)।[1]

ऋग्वेद के अनेक स्थानों पर इन्द्र की शक्ति की संस्तुति है—

अभी दमेकमेको अस्मि निष्षाडभीद्वा किमु त्रयः करन्ति।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥
(ऋ० १०,४८,७)

इसे अकेले प्रबलतर शक्ति से मैंने जीता, दो को भी,—तीन मेरा क्या कर सकेगा। जमीन पर रक्खे अनेको अन्न के बोझों के समान मैं इन्हें कुचल डालूँगा। मेरे शत्रु, इन्द्र-रहित (जिनकी इन्द्र में आस्था नहीं है) होकर मेरी क्या निन्दा कर सकेंगे ?

यहाँ शत्रुओं को अनिन्द्र कह कर बताया है कि जिनका इन्द्र में विश्वास नहीं है, वे रणक्षेत्र में पराजित होंगे ही।

सप्तगु नामक ऋषि इन्द्र वैकुण्ठ देव को (ऋ० १०, ४७), स्वायुध, स्ववस, सुनीथ सनद्वाज, विप्रवीर, रथी, धनस्पृत, सुदक्ष, गंभीर, गोपति आदि कहता है। इन्द्र वैकुण्ठ नामक ऋषि ने इन्द्र वैकुण्ठ देवता की स्तुति में इन्द्र को घन का विजयकर्ता कहा है (१०, ४८, १)।

इन्द्र और विष्णु दोनों ही शक्तिपूर्ण दुर्धर्षता के प्रतीक हैं और निम्नलिखित मंत्र में उनके संबंध का वर्णन है—

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः।
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्। (ऋ० ८,७७,१०)

कुरुसुति काण्व नामक ऋषि इन्द्र की स्तुति में कहता है—इन सभी वस्तुओं को चौड़े डेगवाला (उरुक्रम) विष्णु जिसे तुमने भेजा था, ले आया—सौ भैंसे, दूध और चावल का पाक (पायस, खीर)। इन्द्र ने वराह को मारा। सायण ने इस मंत्र की व्याख्या में नैरुक्त पक्ष और ऐतिहासिक पक्ष (चरक ब्राह्मण) का उल्लेख किया है।

काठक संहिता (८, १७) में इन्द्र को अधिराज, जनों का भवाधिपति, विराजोजा, अमर क्षत्रवान् कहा गया है—

त्वमिन्द्रास्याधिराजस्त्वं भवाधिपतिर्जनानाम्।
दैवीर्विस्त्वमुता विराजोजस्वत् क्षत्रमजरं ते अस्तु।

शतक्रतु इन्द्र सत्ता का मूर्तिमान् विग्रह है। वह तवस् (शक्तिधर) और तुर (विजयी) है। हाथी और सिंह के समान उसमें पराक्रम है। वह अजर, शक्र, और शची-

---

१. काठक संहिता (८, १७) में भी यह मन्त्रांश है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

युक्त है। शतपर्व (ऋ० ८, ८९, ३) वज्र उसकी महती तविषी का प्रतीक है। वह वज्र-बाहु, वज्रदक्षिण, वज्रभृत् और वज्री कहा गया है। अश्म और पर्वत के समान वज्र को धारण कर रथेष्ठा इन्द्र उद्दाम यौवनयुक्त (अजर) है।

इन्द्र की कल्पना राजनीतिक सत्ता का दिव्यीकरण है। इन्द्र को विश्व-भुवन अर्थात् समस्त लोक का राजा कहा है। गतिशील और प्राणधारियों का भी वह ईश है। न केवल इन्द्र को राजा कहा है, अपितु पृथिवी का सम्राट् (भुवः सम्राट्—ऋ०४, १९, २) भी माना है। दैवी और मानुषी जनता का वह अग्रणी है—इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा (ऋ०३, ३४, २)। इन्द्र का देवता के रूप में स्वीकार बताता है कि तत्कालीन ऋग्वैदिक समाज और राजनीति में शक्तिवाद का कितना प्राबल्य था। वैदिक राजनीतिशास्त्र में सत्ता उग्र रूप में वर्तमान है, ऐसा माना जा सकता है। शक्ति-क्षेत्रों की बहुलता और तज्जनित विकेन्द्रीकरण के बदले शक्ति के एकत्व अर्थात् केन्द्रीकरण का पोषण है।

इन्द्रऋषभ (अथर्व० १२, १, ६), इन्द्रगुप्त (अथर्व १२, १, ११), इन्द्रजा (अथर्व० ४, ३, ०), इन्द्रजाल (अथर्व० ८, ८, ८), इन्द्रधनुष (अथर्व० १५, १, ६), पद अथर्ववेद में मिलते हैं। इन्द्रगोप (ऋ० ८, ४६, ३२), इन्द्रजूत (ऋ० १, ११८, ९), इन्द्रज्येष्ठ (इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः (ऋ०१, २३, ८), इन्द्रत्वोत (ऋ० १, १३२, १), इन्द्रपत्नी (ऋ० १०, ८६९), इन्द्रपीत (ऋ० ९, ८, ९) पद भी ऋग्वेद में प्राप्त हैं।

तैत्तिरीय संहिता (३, ५, ८, १) में इन्द्रज्येष्ठ शब्द प्रयुक्त है—

देवेभ्योऽग्निजिह्वेभ्यस्त्वर्तायुभ्य इन्द्रज्येष्ठेभ्यो वरुणराजभ्यः॥

अथर्ववेद (१९, १३) में इन्द्र के लिये निम्नलिखित शक्तिबोधक शब्द प्रयुक्त हुए हैं—

१. आशुः—तीव्रगामी
२. शिशानः—तीक्ष्ण
३. वृषभो न भीमः—वृषभ के समान भयंकर
४. संक्रन्दन—दीर्घ शब्द करता हुआ
५. एकवीरः—वीरोत्तम
६. शतं सेना अजयत्—सौ सेनाओं का विजयी
७. जिष्णु—विजेता
८. दुरुच्यवन—हटाने योग्य नहीं, दुर्धर्ष
९. धृष्णु—बहादुर
१०. वीर, प्रवीर और अभिवीर
११. सहस्वान् और सहमान—शक्तिशाली, महान् जयी
१२. पृतनाषाड्—आक्रान्ता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१३. नेता—नेता, अग्रणी
१४. उग्र-शर्ध—दुर्धर्ष तेजस्वान्
१५. वाजी—बलवान्
१६. शत्रुप्रभंजक—शत्रुविदारक
१७. अज्मजयी—रणञ्जय
१८. जैत्ररथस्थ—विजयीरथारूढ़
१९. ग्रामजित्, गोजित्—सेनाजयी या ग्रामजयी और गोविजयी
२०. शतमन्यु—सौ क्रोधवाला

ये सभी शब्द लोकतांत्रिक जनताधिकारवाहिनी परम्परा के प्रायः विरोधी हैं। इनसे अधिनायकवाद की ध्वनि निकलती है। सिकन्दर, लुई चौदहवाँ (जिसकी गर्वोक्ति थी कि मैं ही राज्य हूँ) और विस्मार्क की परम्परा का इनसे पोषण हो सकता है। वैदिक यथार्थवाद के ये सभी शब्द उग्र सत्तावाद के परिचायक हैं।

इन्द्र के मानवीय आधार का उल्लेख उसके पारिवारिक सम्बन्धियों के वर्णन में हुआ है। उसकी माता का नाम निष्टिग्री है—निष्टिग्रयः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाधं इह सोमपीतये (ऋ०१०, १०१, १२)। अथर्ववेद में असुरपुत्री विलिष्टेङ्गा दानवी का उल्लेख है जिसके साथ इन्द्र रहने लगा था—येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि (अथर्व० ७, २८, २) पारिवारिक सम्बन्धियों का वर्णन इन्द्र की दुर्धर्षता को समाजशास्त्रीय विश्लेषण का विषय बनाता है। इन्द्र की सत्ता कवित्वपूर्ण कल्पना नहीं है, अपितु लौकिक जगत् से उसका गहरा सम्बन्ध है और लौकिक आधार पर ही उसका विचारात्मक निर्माण हुआ है। हापकिन्स के मत में यदि वरुण दार्शनिकों का देव है तो इन्द्र योधों का, जिसका अपनी स्वार्थ-सिद्धि में पुरोहितों ने उपयोग किया है।[1] इन्द्र की कल्पना में कुछ अंश एक विषयग्रस्त दानव के भी हैं।[2] हापकिन्स का ऐसा भी मन्तव्य है कि इन्द्र पहले, कुशिक और गोतम पुरोहित कुलों का उर्वराशक्ति का देव था, पीछे वह भारद्वाज कुल के द्वारा संग्राम-देव के रूप में पूजित हुआ।

कात्यायन श्रौतसूत्र (५,१३,१) में वैदिक देवतावाद और राजनीतिशास्त्र के विषय में एक महत्वपूर्ण वर्गीकरणात्मक उल्लेख है, जिसे यों दर्शाया जा सकता है—

१. सोमो राजा राजपती राज्यमस्मिन्यज्ञे मयि दधतु।
(=तै० ब्रा०, २,५,७,३)

सोम राजा और राजपति (=वैदिक राजपती) है। इस यज्ञ में मुझमें राज्य स्थापित करे।

२. वरुणः सम्राट् सम्राट्पतिः साम्राज्यमस्मिन्यज्ञे मयि दधतु।

---

१. हापकिन्स, दी रेलीजन्स ऑफ इण्डिया, पृ० ९५
२. वही, पृ० ९६ : "..as popularly conceived a sensual griant,"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वरुण सम्राट् और सम्राट्पति है। इस यज्ञ में मुझमें साम्राज्य स्थापित करे।

३. मित्रं क्षत्रं क्षत्रपतिः क्षत्रमस्मिन्यज्ञे मयि दधतु।

मित्र क्षत्र और क्षत्रपति है। इस यज्ञ में मुझमें क्षत्र स्थापित करे।

४. इन्द्रो बलं बलपतिः बलमस्मिन्यज्ञे मयि दधतु।

इन्द्र बल और बलपति है। इस यज्ञ में मुझमें बल स्थापित करे।

५. बृहस्पतिः ब्रह्म ब्रह्मपतिर्ब्रह्मवर्चसमस्मिन्यज्ञे मयि दधतु।

बृहस्पति ब्रह्म और ब्रह्मपति है। इस यज्ञ में मुझमें ब्रह्मतेज स्थापित करे।

६. सविता राष्ट्रं राष्ट्रपती राष्ट्रमस्मिन् यज्ञे मयि दधतु।

सविता राष्ट्र और राष्ट्रपति (= वैदिक राष्ट्रपती) है। इस यज्ञ में मुझमें राष्ट्र धारण करा दे।

७. पूषा भगो भगपतिर्भगमस्मिन्यज्ञे मयि दधतु।

पूषाभग और भगपति है। इस यज्ञ में मुझमें भग धारण करावे।

८. सरस्वती पुष्टिः पुष्टिपतिः पुष्टिमस्मिन्यज्ञे मयि दधतु।

सरस्वती पुष्टि और पुष्टिपति है। इस यज्ञ में मुझमें पुष्टि धारण करावे।

९. त्वष्टा रूपाणां रूपकृत् रूपपती रूपेण पशुनस्मिन्यज्ञे मयि दधतु।

त्वष्टा रूपों का रूपकर्ता है और रूपपति है। इस यज्ञ में रूप से पशुओं को मुझमें धारण करावे।

इस प्रकरण में राजनीतिशास्त्रोपयुक्त पदों का देवताओं के लिये प्रयोग वैदिक देवगाथाशास्त्र का राजनीतिक आशय प्रकट करता है--

सोम	राजपती
वरुण	सम्राट्पति
मित्र	क्षत्रपति
इन्द्र	बलपति
बृहस्पति	ब्रह्मपति
सविता	राष्ट्रपती (वैदिक प्रयोग, राष्ट्रपति के लिये)
पूषा	भगपति
सरस्वती	पुष्टिपति
त्वष्टा	रूपपति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इस वर्गीकरण में राजपती (सोम) और राष्ट्रपती (सविता) में पार्थक्य बताया गया है। इन्द्र, जिसका इस प्रकरण में विवेचन हो रहा है, साधारण स्थान (बलपति) प्राप्त करता है और वरुण उससे महत्तर (सम्राट्पति) है।

(१६) रुद्र

कुत्स आङ्गिरस ने रुद्र (रुद् + रक्) से शत्रुओं के वीरों के नाश की प्रार्थना की है—क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते (ऋ० १,११४,२)।

रोगमुक्ति के लिए भी रुद्र की अभ्यर्थना होती है—भिषक्तमो भिषजाम्।

परवर्ती संस्कृत-साहित्य में शिव और रुद्र का संश्लेषण हो गया। रुद्र और शिव का सश्लिष्ट रूप, अंशतः, प्लेटो के ग्रंथ क्रेटायलस में वर्णित अपोलो की जो व्याख्या मिलती है उससे साम्य रखता है। वहाँ अपोलो के चार कार्य कथित हैं—(क) संगति, (ख) भविष्य-वाणी (ग) चिकित्सा (घ) धनुर्वाणाभ्यास।

राजनीतिक दृष्टि से रुद्र शक्ति का प्रतीक है। उसका कार्य दीर्घ शब्द करना अथवा चिग्घाड़ना है। रुद्र स्थिरधन्वन् (ऋ० ७,४६,१) तथा क्षयद्वीर (ऋ० १०,९२,९) है। वह अषालह, सहमान, तिग्मायुध और साम्राज्यवान् है—साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति। (ऋ० ७, ४६, २)।

वसिष्ठ रुद्र की सत्ता को स्वीकार करता है—विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं (ऋ० ७,४०, ५) किन्तु इसका श्रेय विष्णु को देता है। परवर्ती भारतीय धार्मिक इतिहास में प्रसिद्ध विष्णु-शिव संघर्ष का बीज यहाँ देखा जा सकता है।

तैत्तिरीय संहिता में रुद्रों की संख्या ३३—त्रिंशत्त्रयश्च गणिनो रुजन्तो दिवं रूद्राः पृथिवीं च सचन्ते। एकादशासो अप्सुषदः सुतं सोमं जुषन्ताम् सवनाय विश्वे। (तै० सं० १,४,११,१) यहाँ रुद्रों को नाशक (रुजन्तो) और द्यौः तथा पृथिवी में आनेजाने वाला (सचन्ते) बताया है।

तैत्तिरीय संहिता के अनुसार रुद्र अग्नि है[1]—रुद्रो वा एष यदग्निर्यजमानः पशुर्यत् पशुमालभ्याग्निं मन्थेद्रुद्रायायजमान। (तै० सं० ६,३,५,१)।

पाश्चात्य वेदज्ञों के अनुसार रुद्र का स्वरूप यों हैं—

१. ग्रासमैन—रुद्र वह जो चमकीला है।

२. पिशेल—रुद्र रोहित (ruddy) रक्तवर्ण है।

३. हिलेब्रांट—ग्रीष्म ऋतु से लेकर श्रावणावधि (शरद्) तक का देव है।

४. श्रोयडर—मृतात्माओं के प्रधान को ही रुद्र रूप में बैठाया गया है। राजनीति-शास्त्र की दृष्टि से यह मन्तव्य विचारणीय है, क्योंकि सत्ता का वर्गीकरण प्रेतों तक में है, यह आशय यहाँ परिगृहीत है।

---

१. आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रम् (ऋ० ४,३,१) में भी अग्नि को रुद्र कहा गया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

५. ओल्डेनवर्ग—पर्वत-देवों और अरण्यदेवों से रुद्र की समानता है।

६. आर्बमैन[1]—रुद्र एक प्राचीन नरभक्षी मृत्यु-दानव था, उसी का पुरोहितों ने परिष्कार किया।

(१७) मरुत

मरुत् (मृ + उति) का निम्नलिखित मन्त्र में उपस्तम्भन है—

स्थिराः वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीलू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥
(ऋ० १, ३९, २)

हे मरुतो, तुम्हारे अस्त्रशस्त्र शत्रुओं के भगाने अथवा अपनोदन (पराणुदे) के लिए स्थिर हों और उनके प्रतिबंध के लिए दृढ़ (वीलू) हों। तुम्हारा बल अतिशय स्तोतव्य अथवा तेजपूर्ण (पनीयसी) हो। मायावी मनुष्य को बल न हो।

शत्रुओं के अपनोदन और प्रतिबंध की कामना का सामाजिक और राजनीतिक लक्ष्य अवश्य है। ऐसा लगता है कि तत्कालीन राजनीति में छद्मचारी मनुष्यों का प्रवेश बढ़ता जाता था। अतः ऐसी प्रार्थना की आवश्यकता पड़ी। रोथ के अनुसार मरुत् वायु देव है (der Gotter der Winde)।

शक्तिशाली मरुत् अपनी महिमा से बढ़े—तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना (ऋ०, १, ८५, ७)। वे युद्ध में सुव्यवस्थित खड़े रहे (पृतनासु येतिरे ऋ० १, ८५, ८) और क्रूरताविष्ट राजाओं के समान हैं (राजान इव त्वेष संदृशो नरः—ऋ० १,८५, ८)। मरुत् शत्रुओं पर आक्रमणकारी हैं—अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः (ऋ० ३,२९,१५)। राजनीतिक दृष्टि से, मरुतों को गणश्री (ऋ० १, ६४,९) मानवों का सखा, (नृषाचः), शूर, और सर्प के समान क्रोधवाला (अहिमन्यु) कहना उल्लेखनीय है। उनके पास गोघाती (गोहा) मनुष्यघाती (नृहा) अस्त्र भी हैं (ऋ० ७, ५६, १७)। विद्युत् उनका रथ है और भास्या उनका अस्त्र है— विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो (ऋ० ३, ५४, १३)

तैत्तिरीय संहिता में मरुतों को देवों की प्रजा कहा है—मरुतो वै देवानां विशो देवविशेनैवास्मै मनुष्यविशमवरुन्धे सप्तकपालो भवति सप्तगणा वै मरुतो गणशः एवास्मै सजातानवरुन्धेऽनूच्यमान आ सादयति विशमेवास्मा अनुवर्त्मानं करोति। (तै० सं० २, २, ५, ५)। मरुत देवताओं में विशः (प्रजा) हैं। देवविश है, इसी लिए, वह मनुष्यविश पर विजयी होता है।

हविः सात कपालों पर है। मरुत् सात गण वाले हैं। अवश्य ही गणवान् होने से ही वह सजातों को जीतता है। वेदश्रवण काल में हवि का आसादन (स्थापन) होता है। विशः उसका अनुसरण करती हैं।

---

१. आर्बमैन : प्राचीन भारतीय विश्वास और क्रिया (जर्मन में), १९२२।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मरुत् का तीन तात्पर्य संभव है—(क) जो प्रकाशवान् है, (२) जो चूर्ण करे अर्थात् वृक्षों को नष्ट करे, (३) मृत पुरुषों (मर-मरणार्थक) का आत्मा, जो हवा में वेगपूर्वक दौड़े। अडालबर्ट कुह्न[१], बेन्फे[२], इ० एच० मायर[३], श्रोयडर[४] और हिलेब्रांट ने इस तृतीय कल्पना का समर्थन किया है, किन्तु विचारणीय है कि धातुपाठ में मर कोई धातु नहीं है, यह एक कल्पित वैदिक धातु है।

अथर्ववेद में मरुत्, पूषा, बृहस्पति और अग्नि से प्रजा, धन, दीर्घायुष्य की याचना मरुतों के लौकिक महत्त्व को व्यक्त करती है—**सं मा सिञ्चतु मरुतः सं पूषां सं बृहस्पतिः। सं मायमग्नि सिञ्च प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु यं।** (अथर्व०, ७, ३३, १)

(१८) वायु-वात

वायु, हवा का देव है। वह शुचिप है। इन्द्र और वायु (इन्द्रवायू) स्वर्ण, गाय, अश्व, वसु आदि के दाता हैं (ऋ० ७, ९१, ६)।

राजनीतिक दृष्टि से वायु के रथ के अश्वों का वर्णन महत्त्वपूर्ण है। वायु के रथ को रोहित या अरुण अश्व खींचते हैं। उसमें ९९, १०१ या १००० घोड़े हैं। निम्नलिखित मंत्र में इन्द्रवायू के घोड़ों का उल्लेख है—

आ वां सहस्र हरय इन्द्रवायू अभिप्रयः।
वहन्तु सोमपीतये (ऋ० ४, ४६, ३)॥

विश्वमना वैयश्व ने वायु को ऋत का पति, त्वष्टा का जामाता, अद्भुत, ईशान, सुष्परस्तम (अत्यन्त रूपवान्) माना है (ऋ० ८, २६, २१-२४)। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से यहाँ ऋतस्पते और ईशान शब्द महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि यदि ईशान सत्ता का बोधक है तो ऋत, सत्य और औचित्य का। दोनों के साथ प्रयोग से यथार्थवाद और आदर्शवाद का समन्वय व्यक्त होता है।

वाजसनेयी संहिता (३८, ७) में वात को अनाधृष्य (अजेय), अप्रतिधृष्य (प्रतिरोधरहित), अवस्यु (रक्षणकामी) और अशिमिद (अनाशकारी वा क्लेश-निवर्तक) कहा है। स्पष्ट है कि ये चारों शब्द सामाजिक और राजनीतिक वातावरण और प्रक्रिया में संगत रूप से हो सकते हैं।

(१९) मातरिश्वा

मातरिश्वा अग्निवाची है किन्तु आकाश से उसे अग्नि ले आया, ऐसा भी कथन है—

---

१. कुह्न, हेराब्कुन्फ्ट डेरफोयर्स उन्ट देस गोयटररांक्स।
२. बेन्फे, ओरियंट उन्ट ओकसिडेन्ट।
३. इ० एच० मायर—गन्धर्वेन-केन्टौरेन (स्त्रियाँ) (जर्मन में)।
४. श्रोयडर—यूनानी देव और वीर पुरुष (जर्मन में)। आर्यधर्म (जर्मन में) दो खंड

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि।
(ऋ० ३, २९, ११)

आसुर गर्भ के रूप में उसे तनूनपात् कहते हैं, जब जन्म लेता है तब वह नराशंस होता है, जब मातरिश्वा के रूप में माता में निर्मित होता है तब वायु का तीक्ष्ण प्रवहण होता है।

: : : : : : : :

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परिश्येनो अद्रेः।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम्।
(ऋ० १, ९३, ६)

मातरिश्वा दूसरे को (अग्नि को) द्यौः से ले आया, श्येन ने दूसरे को (सोम को) पर्वत से छीना। ब्रह्म के द्वारा प्रवर्धित अग्नि और सोम ने यज्ञ के लिए लोक को चौड़ा किया।

राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से, द्युलोक से अग्नि को लाने की गाथा को यदि प्रतीकात्मक मानकर इसे दिव्य स्वतंत्रता को पार्थिव धरातल पर लाने का आशय व्यक्त करनेवाला मानें तब इसका विराट् महत्त्व स्पष्ट है। कृषिप्रधान सभ्यता में अग्नि स्वतंत्रता का उद्घोषक ही है ऐसा कह सकते हैं। भरद्वाज बार्हस्पत्य वैश्वानर की उपासना में कहता है।

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम्।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः।
(ऋ० ६, ८, ४)

विवस्वत् का दूत मातरिश्वा, अग्नि वैश्वानर को, जिसे बलशालियों ने जल के गर्भ में पकड़ रक्खा था, दूर से यहाँ ले आया। विशः (जनता), स्तुतिकरणीय (ऋग्मयम्) राजा (अग्नि) के लिए बैठी (उपतस्थुः)। सायण ने आपः का अर्थ अन्तरिक्ष, मातरिश्वा का वायु, विवस्वत का सूर्य और महिषा (—महान्तः) का मरुत किया है।

(२०) अपांनपात्

अपांनपात् के (अपांनपात् = जल का पुत्र। न + √पत् + ण्वि अथवा √पा + शतृ, फिर उससे नञ् समास) साहाय्य से अग्नि ने वृत्र को मारा (ऋ० ६, १३, ३)। अपांनपात आशुहेमन् अर्थात् शीघ्रजव है—अपां नपादाशुहेमा कुवित्स (ऋ० २, ३५,२)।

हिरण्यवर्ण (ऋ० २, ३५, १०), अनभिम्लातवर्ण (ऋ० २, ३५, १२) अपांनपात् के प्राकृतिक आधार की गवेषणा करते हुए उसे चन्द्र (हार्डी तथा हिलेब्राण्ट), सूर्य (मैक्स-मूलर), विद्युत् या आग्नेय या जलीय माना गया है।

भुवनों का जनक अपांनपात् को मानकर उसका कुछ लौकिक सत्ताधारी का रूप प्रकट किया है—

अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्ययों भुवना जजान (ऋ० २, ३५, २)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अर्य (मित्रभावापन्न) अपांनपात् ने असुर (देव) की महत्ता से समस्त भुवनों को उत्पन्न किया है।

: : : : : : : : :

सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर्वसुदेयाय विधते विभाति (ऋ० २, ३५, ७)

अपांनपात्, जल में ऊर्जस् प्राप्त करते हुए अपने अर्चनकर्ता को धन देने के लिए प्रकाशित होता है। ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टि से अपांनपात् का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

(२१) अज एकपात्

अज एकपात् के भौतिक आधार को खोजते हुए चन्द्रमा, सूर्य (निरुक्त् १२, २९) बिजली, या झंझावात से उसकी तद्रूपता व्यक्त की जाती है।

नामध्वनि के आधार पर यूनानी देव अजक्स (Ajax) से अज एकपात् का साम्य प्रतीत होता है। प्लेटो के क्रेटायलस नामक ग्रंथ में उद्धृत एक यूनानी प्रार्थना में कहा गया है—मनुष्यों का पति, टेलामन (Telamon) का पुत्र अजक्स विख्यात है। अज एकपात् में अज को अजन्मा (बर्गेन का अनुमान) का बोधक न मानकर, बकरे (हार्डी के अनुसार) का यदि ज्ञापक माना जाय तो उसकी आंशिक समता क्रेटायलस में वर्णित यूनानी देव पैन (Pan) से भी हो सकती है क्योंकि वह सब वस्तुओं को चलाने वाला होने के साथ अज-पाल भी है।

राजनीतिक पक्ष में अज एकपाद् को सत्ता का केन्द्रीकरण करने वाला देव मान सकते हैं। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद का यह मन्त्र विचारणीय है—

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान।
तत्र शिश्रियेज एकपादोदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन। (अथर्व, १३, १,६)

रोहितवर्ण सूर्य ने द्यौः और पृथिवी को उत्पन्न किया। परमेष्ठी ने तन्तुओं को ताना। वहाँ अज एकपात् आश्रित रहा (शिश्रिये), बल से उसने (अज एकपात्) द्यौः और पृथिवी को दृढ़ किया।

(२२) अहिर्बुध्न्य

वेदों के परवर्ती संस्कृत-साहित्य में अहिर्बुध्न्य रुद्र और शिव का बोधक है। संभव है, वेदों में अहिर्बुध्न्य का सम्बन्ध अहिवृत्र से हो किन्तु इस कल्पना में यह दोष है कि अहिर्बुध्न्य देव है और वृत्र दानव या असुर। यास्क के अनुसार बुध्न का अर्थ अन्तरिक्ष है।

ऋग्वेद में उस सम्बन्ध में मन्त्र है—

अञ्जामुक्थैरहि गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन्।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः।
(ऋ० ७, ३४,१६, १७)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मन्त्रों से, मैं, जलों से उत्पन्न सर्प (अहि) की स्तुति करता हूँ, जो नदियों के बुध्न में, अन्तरिक्ष में, बैठा है। अहिर्बुध्न्य हमारी हानि न करे, इस विश्वस्त पुरुष (कवि) का यज्ञ कभी असफल न हो।

राजनीतिक दृष्टि से अहिर्बुध्न्य का वैदिक धर्म में स्वीकार सांस्कृतिक समन्वय का पोषण करता है। संभवतः, अहिर्बुध्न्य मोअन-ज-दारो-सभ्यता का देव रहा हो। उसका वेद में देवरूप में स्थापन इस तत्त्व का सूचक है कि भारत में व्यापक सर्ववर्गीय धर्म ही स्थायी हो सकता है।

(२३) त्रित आप्त्य

आकाश या वायु या झंझा या चंद्र में त्रित आप्त्य का भौतिक आधार खोजा गया है। सायण के अनुसार त्रित आप्त्य जल का पुत्र है। सायण ने वायु या इन्द्र या अग्नि से भी त्रित की तद्रूपता बताई है।

ऋग्वेद में दानवहत्या में इन्द्र और त्रित का आपसी सहयोग है। अर्बुद के पराजय में त्रित का सहयोग है। वृत्र-पराजय में मरुतों ने इन्द्र और त्रित का सहयोग किया। त्वाष्ट्र के पुत्र त्रिशिरस् विश्वरूप की हत्या और गोविमोचन का श्रेय भी त्रित को दिया गया है। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से इन बातों का यही महत्त्व है कि वे बताती हैं कि युद्धविजय सहायाश्रित है। इन्द्र-जैसे स्वराट् एकवृष एकवीर को भी सहायता की अपेक्षा है। महान् राजनीतिक कर्म किसी एक के बल से संसिद्ध नहीं हो सकता।

ऋग्वेद में बताया है कि जिस अश्व को यम ने दिया, उसे त्रित ने कसा और उस पर इन्द्र सवार हुआ—

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एनं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।

(ऋ० १, १६३, २)

पाश्चात्त्य वेदविद्याविशारदों के मत में त्रित आप्त्य का स्वरूप इस प्रकार बताया जा सकता है—

१. रोथ—त्रित वायु और जल का देव है।
२. हिलेब्राण्ट—आप्त्य-कुल में पूजित भास्वर आकाश का वह देव है।
३. हार्डी—त्रित चन्द्रदेव है।
४. पिशेल—पहले त्रित मानव भिषक् था। पीछे उसका दिव्यीकरण हुआ।
५. पेरी—त्रित, इन्द्र से पुराणतर देव था। इन्द्र ने उसको पदच्युत कर प्रधानता प्राप्त की। राजनीतिक दृष्टि से यह कल्पना देव-जगत् में, लौकिक नरपतियों में व्याप्त, सत्ता-संघर्ष का ज्ञान कराती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

६. वाकरनेगेल—त्रितवन (तीन वार मजबूत) का संक्षिप्तरूप त्रित है। राजनीतिक दृष्टि से यह कल्पना भी विचारणाय है, क्योंकि उग्र भीषण सत्तासंघर्ष की ध्वनि इससे मिलती है।

त्रित से मिलता-जुलता शब्द त्रैतन है। संभवतः, त्रैतन एक दास था, जिसका दीर्घतमा से युद्ध हुआ था, किन्तु त्रैतन की हार हुई—

त्रैतनो वितक्षत्स्वचं दास उग्रो अंसावपि ग्रभ। (ऋ० १, १५८, ५)

(२४) पर्जन्य

भारतीय परम्परा में गर्ज-मेघ को पर्जन्य (पृष् + शन्य) कहा गया है। वर्षायुक्त मेघ (वृष्टिमन्तम्) को भी पर्जन्य कह सकते हैं।

शक्तिधर होने के कारण पर्जन्य को वृषभ भी कहा है—स रेतोधा वृषभ शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थूषश्च—(ऋ० ७, १०१, ६)

राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से इतना ही महत्त्वपूर्ण है कि पर्जन्य को विश्व का ईश माना गया है—

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे।
(ऋ० ७, १०१, २)

स्वराट् की संज्ञा से दिवस्पुत्र (ऋ० १, १०२, १) पर्जन्य को भूषित करना इस शब्द के प्रचण्ड राजनीतिक महत्त्व को व्यक्त करता है—

इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् (ऋ० १, १०१, ५)

(२५) आपः

आपः का प्रमुख समुद्र (समुद्रज्येष्ठाः) है और समुद्र ही उनका उद्देश्य है—समुद्रार्थाः (ऋ० ७, ४९, १, २)। इन्द्र ने उनका मार्ग खोदा है (ररद) और खोदे हुए मार्गों से वे चलती हैं—उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा (ऋ० ७, ४९, २)। सत्यानृत का द्रष्टा राजा वरुण उनमें जाता है—यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् (ऋ० ७, ४९,३)। वैश्वानर अग्नि आपों में प्रविष्ट है (ऋ० ७, ४९, ४)। आपः अनेक रूप से पवित्र हैं —शतपवित्राः (७, ४७,३)।

राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से यह कथन महत्त्वपूर्ण है कि आपः इन्द्र के अनुशासन का उत्क्रमण नहीं करते—ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि (ऋ० ७, ४७, ३)।

(२६) अग्नि

कृषिप्रधान वैदिक सभ्यता में अग्नि का अतिमात्र महत्त्व देखते हुए मधुच्छन्दाः ऋषि के "अग्निमीडे" से ऋग्वेद का आरम्भ हुआ है। अंगिरा ऋषि ने ही सर्वप्रथम

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यज्ञीयाग्नि का प्रयोग किया था।[१] अग्नि को अंगिरा[२] (ऋ० १,३१) और अंगिरस्तम[३] कहा है। हिरण्यस्तूप कवि अंगिरस अग्नि को "नहुषस्य विश्पतिम्"[४] (ऋ० १, ३१,११) कहता है। नहुष एक प्रख्यात विशिष्ट मानव था और, उसका विश्पति, यह प्रयोग, खटकता है, यदि विशः का एक जनविशेष की जनता, अर्थ करें। ऐसा भी कहा है कि पूर्वकाल में अग्नि मनु (मनुष्वत्), अंगिरा (अंगिरस्वत्) और ययाति (ययातिवत्) के घर गया था (ऋ० १,३१,१७)। इन कथनों से ऐसा प्रतीत होता है कि विशिष्ट मानववाद के, जिसे गीता की भाषा में विभूतिवाद कहेंगे, पोषण में आग्नेय यज्ञ का भी योगदान था। शतवनि के पुत्र पुरुनीथ ने अग्नि वैश्वानर की प्रभूत स्तुति की (ऋ० १,५९,७)। इन तथ्यों से अग्नि का राजतंत्र से सम्बन्ध प्रतीत होता है।

पर्वत, ओषधी, जल और मानुषों (मनुष्य) में जो वसु (धन) है, अग्नि ही उसका राजा है (ऋ० १,५९,३)। अग्नि मानुषी कृष्टियों (निवासस्थान) का भी राजा है (ऋ० १,५९,५)। किन्तु अग्नि को, मनुष्यों के धन का और कृष्टि का, राजा मानने का तात्पर्य साम्यवाद का पोषण नहीं है। यह एक सामान्य स्तुतिमूलक वाक्य है। इस प्रसंग में अग्नि को विश्वकृष्टि (ऋ० १,५९,७) भी कहा है।

अग्नि शुचि, जातवेदस्, होता, पुरोहित और स्तुतिकरणीय है। ऋग्वेद (४,१५, १३) में उसे "**अग्निर्होता गृहपतिः स राजा**" कहा है। इससे मालूम पड़ता है कि गृहपति नामक पदवीधारी, संभवतः, सामाजिक संस्था के रूप में वर्तमान होगा, अर्थात् मात्र घर का मालिक, इसका अर्थ नहीं है। वह "**दूतो देवानाम्**" (ऋ० ४,१५,९) भी है।[५]

वह सदसस्पति (ऋ० १,१८,६) है अर्थात् सदस् का अधीश है। विश्वचर्षणि (विश्वदेव), घृतपृष्ठ, इडेन्य अग्नि दस्युहन्ता है (ऋ० ५,१४,४) और अन्धकार का नाश कर गाय, जल और ज्योति (स्वः) को प्राप्त करता है (ऋ० ५,१४,४)।

अग्नि यज्ञ का शासक है—**राजन्तमध्वराणां** (ऋ० १,१,८) और ऋत का दीप्तिमान् रक्षक—**गोपामृतस्य दीदिविम्**—(ऋ० १,१८) है। गोपा शब्द का अग्नि के लिये प्रयोग यह बता सकता है कि संभवतः राजनीतिक प्रक्रिया में, रक्षक के लिये इसका (गोपा का) प्रयोग होता हो। अग्नि को राजा कहना बताता है कि तत्कालीन राजनीतिक प्रक्रिया में नृपति का नीतिविनिर्णय और नीतिक्रियान्वयन में महत्त्वपूर्ण स्थान है, अन्यथा मित्र गृह-

१. काठक संहिता (१६,३,४) में अथर्वा द्वारा अग्नि-मंथन का उल्लेख है—
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः।

२. त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषि र्देवानामभवः शिवः सखा (ऋ० १,३१,१)।

३. त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् (ऋ० १,३१,२)

४. सायण के अनुसार नहुष राजविशेष था। विश्पति=सेनापति।

५ यदग्ने यासि दूत्यम् (ऋ० १,७४,७)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पति अग्निदेव को अधामित्रो न सुधितः पावकोग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु—ऋ० ४,६,७ ऐसी उपाधि क्यों दी जाती—

वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम (ऋ० ६,१,१३)
: : : : .: :

अग्ने वसु विधते राजनि त्वे। (ऋ० ६,१,१३)
: : : : : :

स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः (ऋ० ६,४,४)
: : : : : :

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये (ऋ० ९,११,२)

कुत्स आङ्गिरस (ऋ० १,९४) अग्नि को अद्भुत मित्र मानता है और कामना करता है कि उसकी मैत्री (सप्रयस्तमे सख्ये) में सदा कल्याण (शर्मन्) हो। राजनीतिक दृष्टि से यह भी कथन महत्त्वपूर्ण है कि अग्नि-रश्मियों से द्विपद और चतुष्पदों का रक्षण करते हुए, उसके (अग्नि के) जन्तु, जो जनता के त्राता हैं—विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो (ऋ० १,९४,५), विचरण करते हैं। सायण ने यहाँ "विशां" का अर्थ सब प्राणी किया है। अग्नि यजिष्ठ (ऋ० ४,७,१), ऋतावान (ऋ० ४,७,३), विचेतस (ऋ० ४,७,३), और विवस्वान् का आशु दूत (ऋ० ४,७,४) है।

नोधा गौतम के अनुसार अग्नि वैश्वानर सत्यशुष्म है (ऋ० १,५९,४)। वह वाजंभर है (ऋ० ४,११,४)। वह चतुरक्ष (ऋ० १,३१,१३), और उरुशंस (ऋ० १,३१,१४) है। वह (हव्य को) मिश्रित करता हुआ और गतिमान् है—श्रीणन्नुपस्थाद्दिवं भुरण्युः (ऋ० १,९८,१) सायण ने भुरण्यु का अर्थ हविष् का भर्ता या धारयिता किया है।

राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से शक्तिपुत्र (ऊर्जोनपातम्—ऋ० ८,१९,४), प्रकाशशील (सुदीदितिम्—ऋ० ९,१९,४), तीक्ष्ण दाँत वा जबड़े वाले (तिग्मजम्भाय—ऋ० ८,१९,२२) अग्नि को सम्राट् कहना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि राजनीतिक सत्ता की गतिशीलता और प्रवाह पूर्णता का इससे बोध होता है—

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम्। देवं मर्तास इन्धते समध्वरे।
(ऋ० ३,१०,१)

ओ अग्ने, तुम प्रजाओं के सम्राट् देव हो। तुम्हें धीमान् मनुष्य यज्ञ में आहुतियों से उद्दीप्त करते हैं।

: : : : : : : : :

कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः (ऋ० ६,७,१) कवि, सम्राट्, यजमानों के अतिथि, आस्यभूत, रक्षक अग्नि को देवों ने उत्पन्न किया। (अग्नि के मुख से देवगण हविः का भक्षण करते हैं—सायण)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अग्नि ने जरूथ का नाश किया—अदहो जरूथम् (ऋ० ७,१,७)। **अग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम्** (ऋ० १०,८०,३) पर भाष्य करते हुए सायण ने कहा है कि अग्नि ने जरूथ नामक असुर को दग्ध किया। **जरूथं हन्यक्षि राये पुरन्धिम्** (ऋ० ७,९,६) पर भाष्य करते हुए सायण ने जरूथ का अर्थ परुषाभाषी या जरणीय राक्षसगण किया है। यास्क (निरुक्त ६.१७) ने जरूथ का अर्थ मंत्र (जरूथं गृणोतः) कर दिया है। अग्नि द्वारा जरूथ की हत्या की गाथा से भी यथार्थवादी राजनीति को पोषण मिलता है।

अग्नि शत्रुदहन भी है—

घृताहवन दीदिवः प्रतिष्म रिषतो दह अग्ने त्वं रक्षाविनः (ऋ० १,१२,५)

हे दीप्तिमन् अग्ने, तुम, जिसे घृत की आहुति दी जाती है, हमारे शत्रुओं को, जिन्हें राक्षस सहायता अथवा त्राण देते हैं, जला[1] डालो। यहाँ शत्रुओं को जला डालने की प्रार्थना कवि की क्रूरता का दारुण प्रतीक है। इस प्रकार की प्रार्थनाएँ तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक दुरवस्था की सूचिका हैं। ऋग्वेद १,२१,५ में कवि कामना करता है कि शत्रु निस्सन्तान हो जाय (अप्रजाः सन्त्वत्रिणः)।

अग्नि को पालनकर्त्ता मानना भी वैदिक राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव है—

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठय। (ऋ० १,३६,१५)

हे अग्ने, राक्षसों से हमारी रक्षा करो, दुष्टेच्छायुक्त पुरुषों (अथवा धूर्त कृपणों) से हमारी रक्षा करो। जो हमको मारने और हमारी हत्या करने की इच्छा करता है उससे रक्षा करो, तुम पूर्णयुवा (यविष्ठ्य) और उच्चप्रकाश युक्त हो।

परवर्ती भारतीय राजनीतिशास्त्र में पालन, राजा का महत्त्वपूर्ण कार्य, माना गया। यहाँ अग्नि से पालन की कामना (पाहि) की गयी है।

अन्यत्र भी रक्षण की कामना है—

पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च (ऋ० १,३१,१२)

हमारी (हमारे पुत्रों की—सायण) और हमारे धनदाताओं की पायुओं (पालनैः—सायण) से रक्षा करो।

× × × ×

अनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते (ऋ० १,२१,१२)

अपने व्रत में सतत रक्षा करते हुए।

: : : : : : : : :

---

१. शत्रुओं के जलाने की अग्नि से प्रार्थना अन्यत्र भी है—
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह (ऋ० १,३६,१४)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

त्वमग्ने प्रचतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः (ऋ० १,३१,१५)
हे अग्ने, दक्षिणा देने वाले नर की, सिले हुए वर्म की भाँति सर्वत्र रक्षा करते हो।
शत्रुनाश की अन्य प्रार्थना भी है—

घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मधुक्।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत॥ (ऋ० १,३६,१६)।

अग्ने, तुम अग्निदन्त हो, गदा से मारो, जो दुष्ट है उसे मार ही डालो। जो हमारे विरुद्ध रात्रि में षड्यंत्र करता है, अथवा जो अन्य रिपु हैं, उन्हें हमारे ऊपर विजयी न होने दो।

आश्चर्य होता है कि ऋग्वेद के अनेकानेक मन्त्रों में पुनरुक्ति का बिल्कुल ख्याल न करते हुए शत्रुहनन की इतनी प्रार्थनाएँ क्यों हैं।

अग्नि का वैदिक राजनीति में विश्वधाया (धारण करने वाला) रूप भी व्यक्त है—

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी॥
(ऋ० १,७३,३)

पराशर कवि कहता है कि अग्निदेव सर्वजगत् का धर्ता है (विश्वधाया)। वह पृथिवी पर निवास करता है, अनुकूल मित्रवाले राजा की तरह (हितमित्रो न राजा)। अग्नि के सामने बैठे हुए पुरुष पितृगृह में वर्तमान पुत्रों की तरह बैठते हैं। अग्नि अनिन्द्य, पतिसेवित नारी की भाँति है। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से विश्वधाया शब्द महत्त्वपूर्ण है। समस्त जगत् का धारयिता अग्नि है यह कल्पना विश्वमानववाद और अन्तरराष्ट्रीयवाद का समर्थन कर सकती है। हितमित्रो न राजा, में राजा का सर्वजनमित्र होना अथवा विश्वस्तमित्रों से युक्त रहना भी स्मरणीय है, क्योंकि विना अनुकूल मित्रों के राजा शासन और युद्ध में समर्थ नहीं हो सकता।

अग्नि के प्रसंग में स्वधर्मन् (ऋ० ३,२१,२) शब्द राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सायण ने इसका मात्र याज्ञिक अर्थ कर दिया है—स्वधर्मन् स्वायत्तधर्मके सांगेऽस्मिन्यज्ञे। किन्तु स्मार्त और गीतोक्त स्वधर्मवाद के आंशिक पूर्वरूप में यदि स्वधर्मन् शब्द को लिया जाय तो इसका और राजनीतिक महत्त्व विदित होता है।

काठकसंहिता (७,६) में अग्नि को सूर्यवर्चा कहा गया है। वैश्वानर अग्नि राजा है (५,१६)। उससे अजर और सुवीर क्षत्र की प्रार्थना की गयी और ऐसी कामना है कि शतसंख्यक और सहस्रसंख्यक भी हार जायँ—वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः। इन्द्र के विशेषण, वृत्रहणं, पुरंदरम् और धनंजयं रणे-रणे—भी अग्नि के लिये प्रयुक्त हुए हैं (१६,३) अग्नि को सहस्र भर, शुचिजित्व, सुदक्ष और अदब्धव्रतप्रमिति भी माना है (१६,३)। प्रजा की कामना भी की गयी है—प्रजावदस्मे (१७,१)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वाजसनेयी संहिता में अग्नि को एक सम्राट् कहा है—**अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको विराजति**—(वा० सं०१३,११७)। उसे ऊर्जापति और वसु भी कहकर पालन की आशा की गयी है (वा० सं० २७,४३) और शरीरत्राता—**त्राता तनूनाम्** (२७,४४) भी माना गया है।

वाजसनेयी संहिता (२७,७) में अग्नि के लिये प्रयुक्त अनाधृष्य (अपराजेय), अनिष्टत (अविजित)), विराड् (प्रभास्वर), और क्षत्रभृत्[1] (सत्ताधारी) संप्रभुता के लिये प्रयुक्त, ब्लैक्स्टोन, आष्टिन और बर्जेस की शब्दावलि का स्मरण कराते हैं।

शक्तिवाहक और शुष्मी रूप में अग्नि राजनीतिक केन्द्रीकरण का समर्थक हो सकता है और इसी रूप में यहाँ उसका विवेचन हुआ है; किन्तु प्रत्येक सद्म में वर्तमान भौतिक अग्नि का एक लोकतांत्रिक रूप भी है। भौतिक अग्नि मानवमात्र का सखा है। ऋग्वेद में कहा है—

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः। (ऋ० १,३६,१९)

हे प्रकाशरूप अग्ने! तुम्हें मनु ने (या मनुष्य ने) शाश्वत जन के लिये स्थापित किया है। तुम ऋत से उत्पन्न हविस्तपित (घृतभोजी) हो, कण्व के लिये तुम दीप्तमान् हो। जनता (कृष्टयः) तुम्हें नमस्कार करती है। सायण ने मनु का अर्थ प्रजापति किया है।

यूनानियों ने हेफायस्टस को अग्नि का देव माना और रोमनों ने भलकन (Vulcan) को। प्लेटो ने क्रेटायलस नामक ग्रन्थ में हेफायस्टस (Hephaestus) को शक्ति का अधीश माना है। वैदिक अग्नि में भी शक्ति का तत्त्व वर्तमान है। यूनानियों का एक देव था हर्मिस (Hermes), जो जीयस और माइया (Maia) का पुत्र कल्पित किया गया है। हर्मिस देवताओं का दूत है, अग्नि भी देवदूत है। हर्मिस ज्ञान और वाग्वैलक्षण्य का देव है, अग्नि भी वैदिक साहित्य में जातवेदस् माना गया है। यद्यपि इन्द्र ही मुख्यतः वृत्रहन्ता है तथापि सोम, अश्विन्, मरुत् और अग्नि को भी वृत्रहन् कहा गया है। वृत्र इस प्रकार दानवता का प्रतीक है। मैक्सूलर ने वृत्र की समता यूनानी देवशास्त्र के आर्थ्रोस (Orthros) से बतायी है और अहि की अवेस्ता के अझि (Azhɛi) से।[2]

(२७) सोम

मुञ्जवत् पर्वत पर मिलनेवाली सोमलता शक्तिपेय थी।[3] इरानी भी हउम (haoma) का पान करते थे। सोम का उत्तर-ऋग्वैदिक काल में चन्द्रमा से तद्रूपत्व

१. यह मन्त्र काठक संहिता (१८,१६) में भी है। अनिभृष्टतेजा शब्द भी व्यवहृत है
२. मैक्समूलर, मिथोलोजी, पृ० ७५७।
३. मैक्समूलर ने माना है कि. सोम, पुराकाल में वर्षा (rain) का नाम था. पृ० १४५,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्यक्त किया गया है।[1] सोमरस का देवताकरण उसकी अमरत्वदायिनी शक्ति का अभिनन्दन था। सोम को आयुधास्त्रधारी भी कहा गया है। कतिपय स्थलों पर सोम की वृहस्पति से तद्रूपता है। सोम को मति (= उक्थ), द्यौः, पृथिवी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र और विष्णु का जनिता माना गया है (ऋ० ९,९६,५)। वह देवों का ब्रह्मा, कवियों की पदवी (= नेता), विप्रों का ऋषि, वन्य पशुओं का महिष, गृध्रों में श्येन, वनों का स्वधिति(छेदक, कुल्हाड़ी) और पवित्र है (ऋ० ९,९६,६)। वह सहस्रधार (ऋ० ९,९६,९), शतवाज (ऋ९,९६,९), मधुमान् (ऋ९,९६,१३), वसुवित् (ऋ०,९९६,१०) है। राजनीतिक दृष्टि से उसे शत्रुपरिरक्षक और भुवन का राजा–अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा[2] (ऋ०९,९६,१०) मानना शक्तिवादिनी परम्परा का उदाहरण है। वह शत्रुनाशक हैं—अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून् (ऋ० ९,९६,२३)।

सोम को भेड़ के ऊन की छननी से छाना जाता था। छने हुए उत्कर्षवान् सोम की तुलना ऋग्वेद का कवि (ऋ०१०,१६,६) उस वीर से करता है जो युद्ध के अनन्तर चुराई हुई गौओं के पास खड़ा हो। इससे यह मालूम पड़ता हैं कि उस समय युद्ध में गायों को चुराते थे। गोधन उस समय की अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण था।

इन्द्र सोमरस पीकर उन्मत्त होकर ही वृत्र का हनन करने में समर्थ होता है। सोम भद्रक्रतु, सत्पति, प्रियस्तोत्र, वनस्पति, जीवनदाता ही नहीं, अपितु राजा भी है (ऋ० १,९१,५-६)। युवा वा वृद्ध, जो कोई ऋत का अनुसरण करता है (ऋतायते, ऋ० १,९१,७), सोम उन्हें जीवन देता है। सोमराजन् से गोतम राहूगणपुत्र सार्वत्रिक रक्षा की कामना करता है–त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन् (ऋ० १,१८१,८)। जो सोम की पूजा करता है, उसे सोम, धेनु, अश्व, वीर कर्मण्य, गृहकार्यकुशल (सादन्य), विदथ्य (विदथ में जाने योग्य), सभेय, पितृश्रवण मनुष्य (पुत्र) देता है (ऋ० १,९१,२०)। यहां विदथ्य और सभेय शब्द राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से विचारणीय हैं। वह लोककृत् (ऋ०, ८६,२१) है।

राजनीतिक दृष्टि से सोम, सहस्, महस् या शक्म का साधन है। न केवल गोदाता (गोषा), पुरुषदाता (नृषा), अश्वदाता (अश्वसा) है, अपितु शक्तिदाता (वाजसा) भी है (ऋ० ९,२,१०)। उसको सहस्रवर्चस् (ऋ० ९,४३), सहस्रवाज (ऋ० ९,४२,३) और सुवीर्य का प्रदाता (ऋ० ९,४३,६) कहा गया है। वह राक्षसहन्ता (ऋ० ९,४९,५) भी है। सहस्राजित् सोम (ऋ० ९,५५,४) राजा[3] (ऋ० ९,४८,३) है, और सौ पुरों का

१. मैक्समूलर ने सोम को चन्द्र और वर्षाप्रदाता माना है।
—कन्ट्रिब्यूशन्स टू दि सायंस आफ मिथोलोजी, खण्ड १, पृ० २०८। (संक्षित नाम मिथौलोजो)।

२. सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे (ऋ० ५,८६,३६)

३. सोमं नमस्य राजानं (ऋ० ९,११४,२) तथा यत्ते राजन् (ऋ० ९,११४,४)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नाशक शतं पुरो रुरुक्षपिम्, (ऋ० ८.४८,२) । युद्ध में अप्रतिहतता (महे समर्यराज्ये) के लिये सोम में आनन्दोपलब्धि होती है (ऋ० ९,११०,२) ।

सोम को राजा की संज्ञा दी गयी है—

सोमराजन्विश्वास्त्वं प्रजाऽउपावरोह विश्वास्त्वां प्रजाऽउपावरोहन्तु ॥

(वा० सं० ६,२६)

राजन् सोम, समस्त प्रजा के पास नीचे आओ। तुम्हारे पास सारी प्रजा नीचे आवे ।

वाजसनेयी संहिता (१२,९६) में अन्यत्र भी सोम को राजा कहकर सम्बोधित किया है—सोमेन सह राज्ञा तथा राजन् पारयामसि । सोमराज्ञी शब्द भी प्रयुक्त होता है (वा० सं० १२,९२,९३) । वाजसंगथ (भवा वाजस्य सङ्गथे । वा० सं० १२,११२) अर्थात् शक्ति के समागम-स्थान पर सोम को रहने के लिये भी प्रार्थना है ।

(२८) सरस्वती

रोथ, लुडविग, ग्रासमैन और जीमर के अनुसार सरस्वती का तात्पर्य बड़ी नदी से था । संभवतः सिन्धु को ही सरस्वती कहते थे । मैक्समूलर के मत से मध्यदेश में सरस्वती कोई छोटी नदी थी । हिलेब्रांट के मत में अफगानिस्तान की हरहवती नदी को ही सरस्वती कहते थे ।

सरस्वत्[1] का भी उल्लेख है, जिसे हिलेब्रांट और हार्डी[2] ने अपांनपात् से तद्रूप बताया है । रोथ के अनुसार सरस्वन्त दिव्य जल का संरक्षक है ।

सरस्वती अम्बा है, सुभगा है, असुर्या (दिव्य) और पावीरवी (बिजली की पुत्री) है । सरस्वती लोहे का दुर्ग-आयसी पूः (ऋ० ७,९५,१) है ।

राजनीतिक दृष्टि से सरस्वती के प्रति असीम रागात्मकता को जनपदीय अनुरक्ति और राष्ट्रीय भावना का पूर्वरूप कह सकते हैं । पर्वतों से लेकर समुद्र तक बहनेवाली पवित्र, अनुपम सरस्वती को वैदिक आर्यों की राष्ट्रीय नदी कह सकते हैं—

एका चेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आसमुद्रात्

(ऋ० ७,९५,१)

(२९) बृहस्पति

पाश्चात्त्य वेदज्ञों ने बृहस्पति का विवेचन करके उसके स्वरूप का यों वर्णन किया है—

१. रोथ—बृहस्पति श्रद्धा की शक्ति का मूर्तिकरण है ।

---

१. सरस्वन्तं हवामहे (ऋ० ७,९६,४)

२ हार्डी—वैदिक और ब्राह्मण युग (जर्मन में)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२ लगलोया
३. विलसन
४. मैक्समूलर[1] } —बृहस्पति अग्नि का ही एक रूप है। तुलनीय, सायण, ऋ० ५,४३—१२—अग्निरेव बृहस्पतिः।

५. वेबर
६. हापकिन्स } —इन्द्र का ही अमूर्त तत्त्व बृहस्पति है।

७. ओल्डेनबर्ग
८. कैथगी } —पौरोहित्य कर्म का अमूर्त तत्त्व बृहस्पति है।

९. हिलेब्रांट—बृहस्पति वनस्पति है और चन्द्रमा का व्यक्तीकरण।

राजनीतिक पक्ष में कह सकते हैं कि वाणी, पौरोहित्य, ज्ञान आदि का महत्त्व व्यक्त कर बृहस्पति यथार्थवाद के बदले राजनीतिक आदर्शवाद का पक्षानुमोदन करता है।

(३०) अदिति

पुरुप्रिया (ऋ० ८,१८,४) सदावृधा (ऋ०, ८,१८,६) अदिति की कई प्रकार से व्याख्या की गयी है। (१) निघंटु के अनुसार अदिति, पृथिवी, वाक्, गौ और द्यावापृथिवी का बोध कराती है। (२) पृथिवी, सूर्य, क्षितिज क्षादि के अतिरिक्त जो सीमा-रहित लोकलोकान्तर हैं उनका बोध अदिति से होता है, ऐसा मैक्समूलर[2] का मन्तव्य है। (३) जागतिक गौ और अग्नि का भी बोध अदिति से होता है। (४) रोथ के अनुसार अदिति अविनश्वरता या शाश्वतता की बोधक है। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से यह तात्पर्य महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह पश्चिमी नैसर्गिक नियम की कल्पना से साम्य रखता है। (५) ओल्डेनवर्ग[3] ने अदिति (विश्वेषामदितिर्यज्ञियानाम्—ऋ० ४,१,२०) का अर्थ बन्धन से स्वतंत्रता किया है। यह निबंधता या निष्प्रतिबंधता राजनीतिशास्त्र के मूला-धारों के अधिक समीप है। ऋग्वेद के "को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेचंमातरं च च ॥ (१,२४१) मन्त्र में सायण ने अदिति का अर्थ पृथिवी किया है, किन्तु मैक्डोनेलने अदिति से स्वतंत्रता का तात्पर्य ग्रहण किया है। वैदिक काल की बढ़ती हुई राजनीतिक केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के सन्दर्भ में अदिति के रूप में स्वतंत्रता का मूर्त करना राजनीतिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण बौद्धिक प्रयास माना जायगा।

बृहद्दिवा के बदले यदाकदा अदिति त्वष्टा की पत्नी मानी गयी है और इस प्रकार वह सरण्यू की माता है। अदिति का मातृत्व कई बार मन्त्रों में उद्घोषित हुआ है। वह दक्ष की माता है (ऋ० २,२७,१)। वह राजाओं की माता भी कही गयी है—

---

१. मैक्समूलर, मिथौलोजी खण्ड २, पृ० ८२९। मैक्समूलर के अनुसार वैदिक देवों का भौतिक क्रियाकारी (Acteurs physiques) के रूप में महत्त्व है। पृ० २०८, मिथौलोजी।

२. मैक्समूलर, मिथौलोजी, पृ० ५५६।

३. ओल्डेनबर्ग, वेदिक हिम्स, २, पृ० ४२८। मैक्समूलर, मिथौलोजी, पृ० ५५७।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पितु नो अदिति राजपुत्राति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभि. (ऋ० २,२७,७)

अदिति और आदित्य[1] को गयप्लात ऋषि ने सम्राट्-पद से विभूषित किया है और इस प्रकार इनका राजनीतिक महत्त्व बताया है।

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ।
(ऋ० १०,६३,५)

महान् आदित्य और अदिति, सम्राट् हैं और सम्यक् वर्धित हैं, वे यज्ञ में आये हैं, कभी भी आक्रान्ता नहीं हैं, (अपरिह्वृता = अहिंसिताः—सायण) द्यौः में उनका निवास-स्थान है। इन्हें नमस्कार और मन्त्रों से हम विमन्त्रित करते हैं, कल्याण के लिये। यहाँ सायण ने सम्राजः का अर्थ किया है—सर्वेषां राजानः स्वतेजोभिः सम्यग्राजमानाः अर्थात् सब्रों के राजा, अपने तेज से सम्यक् प्रकाशित, स्वस्ति का अर्थ सायण ने अविनाश किया है।

(३१) मित्रावरुणौ

मित्रावरुण को राजा कहा गया है –

राजाना मित्रावरुणा सुपाणी (ऋ० १,७१,९)

मित्रावरुण को एक ही साथ सम्राट् कहा है—

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दशा
(ऋ० ५,६३,२)

: : : : : :

सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
(ऋ० ५,६३,३)

मित्रावरुणौ का ऋत के साथ गहरा सम्बन्ध—ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां (ऋ० ५,६२,१)। यजत आत्रेय के इस मन्त्र में भी यह तत्त्व बताया है—

ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जने जने ।
सुनीथासः सुदानवोऽहो श्चिदुरुचक्रयः । (ऋ० ५,६७,४)

वे अवश्य सत्य हैं, ऋतानुसरणकर्ता हैं और समस्त जनों में व्याप्त ऋत के अनुगामी हैं। वे अच्छे नेता हैं, सुदक्षिण हैं और विपत्तियों से त्राण करते हैं। सायण ने ऋतस्पृशः का अर्थ उदकस्पर्शत्वस्य कर्तारः, अर्थात् उदक के स्पर्शत्व के कर्ता तथा ऋतावानः का अर्थ यज्ञवंतः किया है।

ऋत से मित्रावरुण समस्त विश्व का शासन करते हैं और धर्म और आसुर माया से व्रतों का संरक्षण करते हैं—

---

१. आदित्यों की तुलना अवेस्ता के अमेश-स्पेन्तास् (Amesha Spentas) से ध्वनि-साम्य के आधार पर की जाती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया
ऋतेन विश्वं भुवनं विराजथः (ऋ० ५,६३,७)।

(३२) इन्द्रावरुणौ

इन्द्रावरुण को एक ही साथ सम्राट् कहा गया है—

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे। (ऋ० १,१७,१)।

इन्द्रावरुणौ की स्तुति में प्रयुक्त निम्नलिखित पद राजनीतिक यथार्थवाद और आदर्शवाद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं—

१. श्रेष्ठा देवताता तुजा – देवपूजन में शक्ति से श्रेष्ठ
२. शूराणां शविष्ठा—वीरों में वीरोत्तम
३. मघोनां मंहिष्ठा—दानियों में श्रेष्ठ
४. तुविशुष्म परम बलवान्
५. सर्वसेना—सेनाधीश
६. ऋतेन वृत्रतुरा—ऋत के द्वारा वृत्रहन्ता

(३३) सोमापूषणा

काठकसंहिता (८,१७) में सोमापूषणा को रयी, द्यु, पृथिवी का जनक, समस्त भुवन का रक्षक और अमृत की नाभि माना है—

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम्।

(३४) सोमारुद्रा

अथर्ववेद (७,४३) में सोमारुद्रा से गृह में प्रविष्ट बीमारी को दूर निर्ऋति में फेंकने और शरीरपुष्टि की कामना की है। साथ ही पापमुक्ति का विचार— अवस्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् (अथर्व० ७,४२,२), राजनीति को उच्चस्तरीय बनाने का आंशिक प्रस्ताव है क्योंकि पाप, पुण्य की भावना का उदय, विवेकहीन दुर्धर्ष अन्यायतंत्र का समर्थन कदापि नहीं कर सकता।

(३५) मनु

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार मनु प्रजा के द्वारा बनाया गया राजा था (चक्रिरे), जिससे लोगों को मात्स्यन्याय से त्राण मिला। शांतिपर्व में भी मनु की कल्पना प्रथम नरपति के रूप में गई है। गीता में चार मनुओं का उल्लेख है और यह भी बताया है, मनु ने विवस्वान् से योगशिक्षा पायी थी। किन्तु ऋग्वेद में मनु की कल्पना यज्ञ-संस्थापक के रूप में है। मनु और मनुस् दोनों प्रयोग ऋग्वेद में मिलते हैं। मनु ने ही अग्नि को लोगों के लिए प्रकाशप्रद बनाया है। अंगिरा, कण्व, अत्रि, दध्यङ् अथर्वा, ययाति और भृगु के साथ प्राचीन यज्ञकर्त्ता के रूप में मनु का भी उल्लेख है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऋग्वेद में मनु (मन्+उ) के विशिशिप्र पर विजय का उल्लेख है—यया मनु-र्विशिशिप्रं जिगाय (ऋ० ४,४५,६)।

(३६) भृगु

भ्राज् धातु से (अथवा भ्राज्+कु) भृगुशब्द बनता है अतः संभव है कि भृगु का मूल अर्थ अग्नि या स्तनयित्नु रहा हो। मातरिश्वा स्वर्ग से स्तनयित्नु के रूप में अग्नि को पृथिवी पर लाता है और भृगु यज्ञ का विस्तार करने के लिए अग्नि का उपयोग करता है। परवर्ती वैदिक साहित्य में भृगु शब्द ऋषिवाचक है। ऋग्वेद में भृगु शब्द पुराकालीन यज्ञकर्त्ताओं का बोध कराता है।

भृगुओं ने अग्नि का पता लगाया—गुहाचतन्तम्...इच्छन्तो धीराभृगवोऽविन्दन् (ऋ० १०,४६,२) और मनुष्य क्षेत्र में उसे ले आये- दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा (ऋ० १,५८,५६)। मातरिश्वा ने भृगुओं को अग्नि दिया—यदी भृगुभ्यः परिमातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे (ऋ० ३,५,१०)। प्रयोग भार्गव कवि कहता है कि और्व भार्गव और आप्नवान् पहले अग्नि का आवाहन करते थे (ऋ० ८,१०२,४)।

मेध्यातिथि काण्व इन्द्र की स्तुति में कहता है कि इन्द्र उसकी उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे पहले उसने यतियों, भृगु और प्रस्कण्व की की थी।

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ। (ऋ० ८,३.९)

कुह्न ने भृगु की यूनानी फ्लेगियेस (Phlegyeus) से तुलना की है और मैक्स-मूलर ने उसका अनुमोदन किया है। मैक्समूलर के अनुसार संस्कृत—भ्राज् धातु और लैटिन फलगेरे (Fulgere) में समानता है।

(३७) अंगिरस्

गुहाहित अग्नि का अंगिरसों ने पता लगाया (ऋ० ५,११,७)। बृहस्पति को भी अंगिरस् कहा जाता है और अग्नि को भी। अंगिरस् के साथ इन्द्र ने वल को चीर डाला— "भिनद् वलमिन्द्रो अँगिरस्वान्" (ऋ० २,११,२०)।

अंगिरस् पुरोहितों का कुल था और इसी कुल के कवियों ने ऋग्वेद के नवम मण्डल के सूक्तों की रचना की है। अलब्रेख्ट वेबर की मान्यता थी कि अंगिरस् उस युग के पुरोहित हैं जब वे वैदिक आर्यों और इरानियों के पूर्वज एक ही स्थान पर रहते थे।

(३८) राजनीतिक व्यवस्था का धार्मिक आधार

वैदिक संहिताओं में विचिन्तनात्मक निदिध्यासन का विशेष महत्त्व नहीं है यद्यपि वाजसनेयी संहिता के "युञ्जते मन उत युञ्जते धियः" आदि उल्लेखों से योग का आरम्भ विदित होता है। संहिताओं का धर्म स्तुति, प्रार्थना और याज्ञिक कर्मकाण्डों से सम्बद्ध है। विचिन्तन, निदिध्यासन, स्तुति और प्रार्थना का, व्यक्ति-सापेक्ष प्रयोजन है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इनका प्रतिपाद्य है, व्यक्ति की आत्मतुष्टि, उसका दिव्यस्तरीय आरोहण और सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति, किन्तु कर्मकाण्डों का समाजसापेक्ष उद्देश्य है। न केवल उनसे कामना-तुष्टि की एषणा है, अपितु यह भी प्रयोजन है कि जनपद के निवासियों से सम्पर्क बढ़े। वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी, अश्वमेध आदि यज्ञों से सामाजिक और राजनीतिक सत्ता-धारों की शक्तियों को धार्मिक औचित्य प्राप्त होता था। धर्म के अर्घीकरणात्मक और अभिव्यंजनात्मक प्रतीकत्व की प्रौढ़ता वैदिक यज्ञों में मिलती है। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास आदि सरल यज्ञ गृहपति के सद्म में ही समाप्त हो जाते थे, किन्तु विराट् राजकीय यज्ञों, उदाहरणार्थ, राजसूय और अश्वमेध, से विशाल सामष्टिक अभिचैतन्य को प्रेरणा मिलती थी, क्योंकि इनमें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भागग्रहण करनेवाले पात्र अनेक थे। भले ही भीषण नरहत्या, दस्युहत्या से सत्ता मिली हो, किन्तु सोमयज्ञों के द्वारा सत्ताधारी को औचित्य-प्रदान किया जाता था। कर्मकाण्डात्मक औचित्य की उपलब्धि नरपति को विशः की अभ्यर्थना के कर्म से बचाती थी। इन्द्र ने अपने स्तुतिकर्ताओं के लिए भयानक हत्याकाण्ड किया, किन्तु कवि इसके लिए उसे कभी भी दोषी नहीं मानता, क्योंकि इन्द्र देव है और सोमयज्ञ से उसकी तुष्टि की गयी है।

धर्म के विचिन्तनात्मक और निदिध्यासनात्मक स्वरूप की विशेष अभिव्यक्ति उपनिषद्-वाङ्मय में हुई। स्थल-विशेष पर एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद का उद्घोष होने पर भी वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य बहुदेवतावाद और देवताओं की स्तुति और प्रार्थना ही है।

वैदिक युग में धर्म का उपयोग सामष्टिक संगठन के पोषण में भी हुआ। इन्द्र से बराबर प्रार्थना की जाती है कि वह स्वयं या मरुद्गण और अन्य देवताओं के साथ स्तुतिकर्त्ताओं और अभ्यर्थना करने वालों को विजय प्राप्त करावे। इस प्रकार धर्म सामष्टिक सामंजस्य तथा व्यवस्थामूलक एकीकरण (Integration) का पोषक सिद्ध हुआ है।

दूसरी ओर, एकीकरण के साथ जो उस स्तुति और यज्ञ की व्यवस्था में आस्था-वान् नहीं है, उनसे भिन्नता स्थापित कर, उन्हें विलगावग्रस्त (Alienated) भी बनाया गया। 'अनिन्द्राः'[१] शब्द का प्रयोग इस धार्मिक विलगाव का बोधक है। उत्तरवैदिक काल में और परवर्ती युगों में धर्म की संकीर्णता को हटाकर उदारता का पक्षानुमोदन हुआ, तथापि स्मृतियों में शूद्रों और चाण्डालों के प्रति तीव्र द्वेष और घृणा व्यक्त हुई है। स्पष्ट है कि धर्म यदि एकीकरण का पोषण करता है तो दूसरी ओर धर्मभावापन्न समष्टि से इतर जनों के प्रति विलगाव को भी तीव्र करता है।

१. किं मामनिन्द्राः कृणुवन्ननुक्थाः (ऋ० ५,२,३)।

: : : : : :

दर्शन्नवत्र शृतपां अनिन्द्रान्वाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् (ऋ० १०,९७,६)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(३९) वैदिक व्यवस्था और एकेश्वरवाद

प्रारम्भिक वैदिक युग में बहुदेवतावाद का प्रचलन था। पीछे एकेश्वरवाद का आंशिक उदय हुआ और प्रजापति, हिरण्यगर्भ, काल, तपस् आदि विराट् देव और तत्त्व उसी प्रकार प्रायः अर्चित होने लगे जैसे महत्तम ईश्वर।[१] वैदिक युग के अन्त के समय सर्वेश्वरवादी और अद्वैतवादी विचारधारा का भी सूत्रपात हुआ।

बहुदेवतावाद लोकतांत्रिक व्यवस्था से सम्बद्ध माना जा सकता है। क्योंकि दोनों में शक्ति के वितरण की कल्पना है। एक ओर देवता की शक्ति दूसरे के ओज, वर्चस्, शवस् और वाज से प्रतिरुद्ध रहती है। दूसरी ओर, एकेश्वरवाद राजनीतिक व्यवस्था में बल के केन्द्रीकरण को प्रश्रय देता है। यदि हिरण्यगर्भ उत्पन्न भूतों का "एक" पति है तो फिर चालाक राजनीतिक शक्तिधर भी कह सकता है कि मैं भी एकमात्र सत्तावाहक बनूँ। यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में वाजपेय, राजसूय और अश्वमेध यज्ञ की प्रक्रियाएँ धार्मिक और राजनीतिक संजटिलता के विस्तार का स्पष्ट बोध कराती हैं। सत्ताधरों की सत्ता को लोगों की दृष्टि में औचित्य प्रदान कराना ही उनका लक्ष्य था। अग्निहोत्र, सोमपान, सौत्रामणी यज्ञ आदि सत्ता के पोषक साधन थे। इन्द्र को सोम का तालाब पीने को मिल जाय किन्तु जनता को तो उसका एक लोटा भी नहीं मिलता होगा।

(४०) ऋग्वेद का इतिहास-दर्शन

(Philosophy of History in the Rigveda)

ऋग्वेद के ऋषिगण देववाद से पूर्णतः प्रभावित थे। विराट् देवों के अपरिकल्पित ओज, वर्चस्, ऊर्जस्, पौंस्य आदि का सर्वत्र उन्हें परिदर्शन होता था। अतः प्रकृति और भूमि का देवनिरपेक्ष यांत्रिक विश्लेषण उनकी कल्पना में नहीं आ सका। देवों और शत्रुओं, अमित्रों, सपत्नों, द्वेषकारियों के बीच घोर संग्राम और अन्त में दानवों की पराजय ही ऋग्वेद का मुख्य प्रतिपाद्य है। देवगण शक्ति के मूर्तिमान् प्रतीक और केन्द्र हैं अतः विराट् देवों का आवाहन ही कवियों और होताओं का लक्ष्य है। बड़े-बड़े नरपति, ऋषियों के माध्यम से, देवों की प्रार्थना के लिए करबद्ध हैं। यदा-कदा, जैसे विश्वामित्र और वशिष्ठ के सूक्तों में बड़े नाटकीय ढंग से भी देवों के शवस और त्विषि का वर्णन किया गया है। कह सकते हैं कि ऋग्वेद के इतिहास-दर्शन में देववाद, शक्तिवाद, विराट् नरपतिवाद का प्राबल्य है। यांत्रिक भौतिकवाद और जनता के अधिकारवाद के लिए इसमें स्थान नहीं है। इतिहास के संचालन में देवातिरिक्त भौतिक कारक, जैसे रचि, पोष, यव, व्रीहि, गो, वासस् (कपड़ा), वधास्त्र आदि का यत्र-तत्र उल्लेख रहने पर भी इनको नियामक शक्ति का स्थान नहीं दिया गया है। विशः के अधिकार को कालक्रम में विश्पति समाप्त ही कर देता है।

---

१. यो देवेष्वधिदेव एकआसीत् (ऋ० १०,१२१,८)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नवम अध्याय

यजुर्वेद में अध्वराश्रित राजनीति

(Politics of Sacrifice)

(१) प्रारम्भिक (सामवेद)

भगवद्गीता में 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' कहकर सामवेद की महत्ता व्यक्त की गई है। √सो धातु से औणादिक मनिन् (सातिभ्यां मनिन्मणिनौ) प्रत्यय लगाने पर सामन् शब्द बनता है। '√साम-सान्त्वप्रयोगे' धातु भी कहा जाता है।

सामवेद के ७५ मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य सभी मंत्र ऋग्वेद से लिये गये हैं। सामवेद के कतिपय अंशों को किसी विशेष ऋषि द्वारा देखे जाने या गाये जाने के कारण उसीके नाम पर कहने की प्रणाली थी। 'सिद्धान्त-कौमुदी' में वासिष्ठं साम, औशनम् या औशनसम् साम, कालेयं साम, औपगवकम् साम, कापटवकम् साम, वामदेव्यम् साम आदि का उल्लेख है। काशिका में औञ्चम् साम, वैश्वामित्रम् साम, आग्नेयम् साम का उल्लेख है। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से सामवेद का कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं है।

सामवेद में स्वराजः (उत्तरार्चिक, ६,२,३), स्वराजम् (उ० ५,१४,२). और स्वराज्यम् (पूर्वार्चिक, ५,३,१, उ० ३,१५,१-३) का उल्लेख है। राजा (पू० ५,३,३, ६,५,८ उ० ७,२१,३), राजानः (उ० ६,२,३) तथा राजानम् (पू०, १,१,५, उ० २, ३,३) का भी उल्लेख है।

(२) कृष्ण और शुक्ल यजुर्वेद

कृष्ण यजुर्वेद की चार संहिताएँ मिलती हैं—(१) तैत्तिरीय, (२) मैत्रायणी (३) काठक (४) कपिष्ठल—कठ। यजुरुत्तम, यजुर्मय, यजुर्युक्त, यजुर्विद् यजुष्कल्प, यजुष्काम्य, यजुष्कृत, यजुष्क्रिया, यजुष्तम, यजुष्तर आदि शब्द प्राचीन आर्य-संस्कृति में यजुर्वेद की गरिमा का बोध कराते हैं। यजुर्वेदीय राजनीतिशास्त्र-प्रकरणों का विशेष विवेचन वाजसनेयी संहिता के आधार पर ही इस ग्रंथ में किया गया है।

काठक संहिता (७,८) में ऐसा उल्लेख है कि दिवोदास भैमसेनि ने आरुणि को अग्नि "अन्तम" है, यह बताया। काठक संहिता (२६,९) में सोमयज्ञ के सन्दर्भ में पञ्चालों के कुन्तियों के द्वारा पराजय का उल्लेख है—ततः कुन्तयः पञ्चालानभीत्य जिनन्ति। इसी प्रसंग में श्यापर्ण सायकायन और अषाढ़ कैशी का उल्लेख है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नेयी संहिता (२३,१८) और मैत्रायणीसंहिता (३,१२,२०) में सुभद्रिकां काम्पिल्यवासिनीम् तथा काठक संहिता (अश्वमेध, ४,८) और तैत्तिरीय संहिता (७,४,१९,१) में सुभगे काम्पिल्यवासिनि का उल्लेख है। कतिपय पाश्चात्य शोधकों के अनुसार काम्पिल्य मध्यदेश के नगर का वाची है। मैत्रायणी संहिता (२,१,३) के अनुसार कौलकावती नामक पुरुषद्वय ने रथप्रोत दार्भ्य को सलाह दी थी—रथप्रोतं वै दार्भ्यमयृशंसंभ्तं कौलकावती अबूतां। रथप्रोत नृपति था वा नहीं और था तो कहाँ का, इसका पता नहीं है। यजुर्वेद के ब्राह्मणों की रचना का प्रदेश कुरुदेश ही है, यद्यपि ऋग्वेद के काल में भी गौणतः कुरुओं का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद (८,४,१९) में कुरुङ्ग द्वारा दिविष्ट में सौ घोड़ों के दान का उल्लेख है। संभव है यह कुरुंग कुरुप्रदेशीय ही रहा हो।

वाजसनेयी संहिता[1] में पंजाब और सप्तसिन्धु प्रदेश का स्पष्ट उल्लेख है—

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्। (वा० ३४।११)
: : : : : : : :
त्री धन्व योजना सप्तसिन्धून्। (वा० ३४,२४)
: : : : : : : :
यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृहणाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम्॥
(वा० सं० ३८।२६)

राजा और इभ का उल्लेख अग्निष्टोम प्रकरण में है (तै० १,२,१४)। ज्येष्ठराज शब्द भी प्रयुक्त है—ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते (तै० २,३,१४)। सम्राट् भी उल्लिखित है—बृहस्पतिर्देवता यस्य सम्राट् (तै० २,३,१४)। सुराष्ट्र का भी निर्देश है—मित्रभृतः क्षत्रभृतः सुराष्ट्रा इह माऽवत (तै० २,४,७)। पृथिवीभाग का भी नामोल्लेख है (तै० २,४,८)।

विशः और प्रजा का समानार्थक जनता शब्द अथर्ववेद में प्रयुक्त है—एकशतं ता जनता या भूमि व्यधूनुत (अथर्व० ५,१८,१२)। काठक संहिता में भी जनता शब्द प्रयुक्त है—क्षेत्रस्य पतये चरुं यः कामयेतास्यां मे जनतायाम् ऋध्येत (९,१७)। तैत्तिरीय संहिता (२,२,१,४। २६, ४। ३,२,३,४,२) में भी जनता शब्द प्रयुक्त है। तैत्तिरीय संहिता (४,५,७) में नमो दूताय च प्रहिताय च नमः इस वाक्यांश पर विचार करते हुए सायण ने दूत को परवृत्तान्तज्ञापनदक्ष और प्रहित को प्रेषित पुरुष माना है।

---

१. इस ग्रंथ में वाजसनेयी संहिता, माध्यन्दिन शाखा का विवेचन हुआ है। सायण भाष्य काण्व शाखा पर है। दोनों शाखाओं में साधारण भेद है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

किन्तु ऋग्वेद (१०,१६५,५) में कपोत नैर्ऋत कवि ने—यस्य दूतः प्रहित एष एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे, इस मन्त्रार्ध में प्रहित को क्रियारूप में प्रयुक्त किया है।

मैत्रायणी संहिता में सभा (२,२,१) और विश्पत्याम् (२,२,१) का उल्लेख है।

ज्येष्ठपुत्र इन्द्र के निर्वासन का प्रसंग आता है—तेनेन्द्रं ज्येष्ठं पुत्रं निरवासायदिति तस्माज्ज्येष्ठं पुत्रं धनेन निरवासयन्ति (तै० २,५,२)।

वज्रबाहु मघवा से द्वेषकारी पापियों की हत्या की कामना की गयी है हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि (तै० १,४,४२)।

शत्रुविजय की कामना अग्नि के लिये की गयी है—अयं शत्रूञ्जयतु जर्हुषाणोऽयं वाजं जयतु वाजसातौ (तै० १,४,४६)। अग्नि से अधिपति बनाने की भी प्रार्थना है—स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मा अधिपतीन् करोतु (तै० १,६,६)। अग्नि नृवत्, असुर, प्रजावान् और सभावान् है (तै० १,६,६)।

राजा वरुण और बृहस्पति को भुवनों का रक्षक माना है—तेन नो राजा वरुणो बृहस्पतिराप्यायन्तु भुवनस्य गोपाः (तै० २,४,१३)। इन्द्रावरुण को सम्राट् कहा है (तै० २,५,१२)।

वाजसनेयी संहिता में आर्थिक व्यवस्था-विषयक कुछ शब्द मिलते हैं जैसे—वसु, अर्थ, वित्ति, वित्त (वा० सं० १८,१४,१५) तथा द्रविण (वा० सं० १८,८)। ये पाँच शब्द आर्थिक व्यवस्था से सम्बद्ध हैं। खनिज पदार्थों का ज्ञान इस युग में अधिक हो गया था। छः का नाम मिलता है (वा० सं० १८,१३)—हिरण्य, अयस्, श्याम, लोह, सीस, त्रपु (टीन) हिरण्य[१]—सुवर्ण। दाक्षायणों ने शतानीक के लिये हिरण्य दिया (वा० सं० ३४,५२) हिरण्य वर्चस्वत् है (वा० स० ३४,५०)।

अयस्—जस्ता, कांस्य
श्याम—तांबा
लोह—लोहा
सीस सीसा (Lead)
त्रपु (त्रप् + उ)—टीन, राँगा

तैत्तिरीय संहिता (३,१,९) के अनुसार मनु ने अपने ब्रह्मचारी पुत्र नाभानेदिष्ठ को छोडकर अन्य पुत्रों में अपनी सम्पत्ति का विभाजन किया। जब उसने मनु से पूछा तो मनु ने कहा कि अङ्गिरस् की उपासना करो—मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत् स नाभानेदिष्ठं ब्रह्मचर्यं वसन्तं निरभजत् स आगच्छत् सोऽब्रवीत् कथा (कथं) मा निरभागिति न त्वा निरभाक्षमित्यब्रवीदङ्गिरस इमे सत्रमासते ते। इससे प्रतीत होता है कि संभवतः वैदिक काल में सम्पत्ति पिता के स्वत्व और अधिकार में थी, समस्त सदस्यों का कुल की सम्पत्ति पर हक नहीं था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मैत्रायणी संहिता में कहीं-कहीं स्त्रियों की भर्त्सना की गई है—निर्ऋर्तिर्हि स्त्री (१,१०,१६)।

(३) यज्ञ और राजनीति

धातुपाठ के अनुसार यज् धातु (१) देवपूजा (२) संगतिकरण और (३) दान, इन तीन अर्थों का बोधक है। याग, यज्यु, यज्वन्, सोमयाजी, यजमान, यायजूक, यजाक, इष्टि, इज्या, यज्वा, ऋत्विज्, यज्ञवृद्ध, पाकयज्ञिक, यज्ञसंशित, यजत्त, यज्ञसंसिद्धि, यज्ञप्रयाण, यज्ञबंधु, यज्ञप्रेष, यज्ञपरिभाषा, यजुष्टर, यज्ञपदी, यज्ञनिष्कृत आदि शब्द भारतीय आर्य-संस्कृति में यज्ञ का प्रभूत महत्त्वाभिज्ञापन करते हैं। वैदिक संहिताओं के काल में यज्ञ का चरम महत्त्व था। अवेस्ता में यसन और यजत शब्द मिलते हैं। ऋग्वेद में सोमयज्ञ का अतिशय महत्त्व है। किन्तु अध्वर्यु पुरोहितों का प्रमुख वेद यजुर्वेद है, जिसमें दर्शपौर्णमास, राजसूय, वाजपेय, सौत्रामणी, अग्निचयन, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि यज्ञों का वर्णन है। यज्ञ के द्वारा देवताओं को प्रसन्न कर उनसे कल्याण और अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति की आशा की जाती थी। किन्तु याज्ञिक प्रक्रिया एक प्रकार से आदान-प्रदान पर आश्रित थी। देवताओं को पशुओं की बलि अथवा सोमरस अथवा सुरा (सौत्रामणी में) प्रदान की जाती थी और प्रसन्न हो देवगण यजमानों को मनोऽभिलषित पदार्थों की प्राप्ति कराते थे। देवताओं को उन्हीं वस्तुओं का दान दिया जाता था जो मानवों को प्रिय थीं। इस प्रकार यज्ञों का लौकिक प्रयोजन स्पष्ट है। याज्ञिक कर्मकाण्डों की विधियों की कल्पना भी लौकिक पदार्थों में से कुछ चयन पर आधृत थी। पीछे चलकर कर्मकाण्डियों ने यज्ञों का एक जागतिक और प्रतीकात्मक अर्थ उद्घोषित किया, किन्तु प्रारम्भिक संहिताकाल में यही कहा जा सकता है कि सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं से यज्ञों का प्रबल सम्बन्ध था।

तैत्तिरीय संहिता में यज्ञ के पर्याप्त उल्लेख हैं और उनकी मीमांसा है—**यः स्वां देवतामतियजते** (तै० सं० २,३,४,४)। **-यज्ञस्य मायया सर्वानवयजामहे** (तै० सं० २,३,१२,१)।—**उपयजः** (तै० सं० ६,४,१,१)।

वाजसनेयी संहिता (१,१७) में भग्नभाण्ड को सम्बोधित कर उसे ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, और सजातवनि कहा है तथा उससे पृथिवी को दृढ़ करने तथा भ्रातृव्य (सम्बन्धियों-शत्रुओं) के वधार्थ प्रार्थना की गयी है। ब्रह्मवनि = ब्रह्मस्वीकृत या ब्रह्मसंभजनीय, क्षत्रवनि = क्षत्रस्वीकृत या क्षत्रसंभजनीय, सजातवनि = सजातस्वीकृत या सजातसंभजनीय, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और यजमान के ज्ञातियों को भला लगने वाला।

वाजसनेयी संहिता (११,८) में सविता से यज्ञ को प्राप्त कराने की प्रार्थना है। यज्ञ को देवाव्य, सखिविद्, सत्राजित् और स्वर्जित् कहा है। देवाव्य का अर्थ है जिसमें

१. कपिष्ठल-कठ संहिता (४४,२) में हिरण्य का महत्त्व बताते हुए कहा है—आयुर्वै हिरण्यम्। आयुषैवात्मानमभिधिनोति।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

देव हैं। सखिविद् वह है, जो मित्रों को प्राप्त करे। सत्राजित् अर्थात् सत्यवचनजित् अथवा द्वादशाहादि यज्ञों को जीतनेवाला। यज्ञ धनजित् अर्थात् गाय आदि धन प्रदान करनेवाला भी है।

काठक संहिता में स्वाराज्य को यज्ञ की संज्ञा दी गयी है - स स्वाराज्यमगच्छत्स एष स्वाराज्यो यज्ञस्स्वाराज्यं गच्छति य एतेन यजेत (१४,४,५)।

(४) वाजपेय

संभवतः, वाज शब्द का मूल धातु वही है, जो उग्र, ओजस्, ओज्मन् और वज्र का है। वाजपेय एकाह सोम यज्ञ था। यह यज्ञ पूर्वकाल में राजाओं और सैन्यसत्ताधारी विशिष्ट पुरुषों (Political and military elite) द्वारा ही किया जाता था। साधारणतः राजसूय और बृहस्पतिसव नामक यज्ञों की निष्पत्ति के बाद ही वाजपेय यज्ञ किया जाता था। इसका मूल उद्देश्य था शक्तिपान अर्थात् ऐसा पान करना (पेय)[१] जिससे वाज की संप्राप्ति हो। रथारुढ़ लोगों की दौड़ भी इस यज्ञ में होती थी। इसमें सोमपान के अलावा सुरापान भी वैध माना जाता था।

वाजपेय यज्ञ की क्रियाओं का विवरण यों है -

१. पंच वाजपेयिक ग्रहों का ग्रहण (ग्रहाऽऊर्जाहुतयः - वा० सं० ९,४)

२. रथ-दौड़ (Chariot-race) के लिये मन्त्रपाठ।

३. अश्वप्रोक्षण और तीन अश्वों को रथ में युक्त करना और अश्वस्तुति।

४. ब्रह्मा नामक पुरोहित का रथचक्रारोहण (वा० सं० ९,१०)

५. दुन्दुभि-वादन (९,११)

६. यजमान का रथारोहण (९,१३)

७. अश्वस्तुति (९,१६-१७)

८. अध्वर्यु द्वारा द्वादशाप्ती (बारह महीनों के लिये बारह आहुति)

९. षट् क्लृप्ती (छः ऋतुओं के लिये छः आहुतियां)

१०. यजमान का उदुम्बर की आसन्दी पर, जिस पर अजाचर्म बिछा है, आरोहण

११. वाजप्रसवनीय - सात वाजप्रसवनीय मन्त्रों (वा० सं० ९,२३-२९) में वाजसंवर्धनार्थ, सोम और अन्य देवताओं से प्रार्थना की गयी है। सोम को राजा की संज्ञा दी गयी है और उसे प्रजा तथा पुष्टि का वर्धक माना गया है। ऐसी कामना है कि हम राष्ट्र में जागें (राष्ट्रे वयं जागृयाम)।

१२. वाजपेय का उज्जिति (विजय) विवरण यों है—(वा० सं० ९,३१-३४)

---

१. रोथ ने इसका जर्मन में अनुवाद किया Kampftrunk अथवा Krafttrunk अर्थात् युद्ध वा शक्ति के लिये पान।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विजयमन्त्र	विजेता	विजित
क—एकाक्षर	अग्नि	प्राण
ख—द्व्यक्षर	अश्विन्	मनुष्य
ग—त्र्यक्षर	विष्णु	तीन लोक
घ—चतुरक्षर	सोम	पशु
ङ—पञ्चाक्षर	पूषा	पाँच दिशाएँ
च—षडक्षर	सविता	छः ऋतुएँ
छ—सप्ताक्षर	मरुत्	सात ग्राम्य पशु (महोक्ष, अश्व, अवि, अज, खच्चर, गर्दभ, मनुष्य)
ज—अष्टाक्षर	बृहस्पति	गायत्री
झ—नवाक्षर	मित्र	त्रिवृत सोम
ञ—दशाक्षर	वरुण	विराज
ट—एकादशाक्षर	इन्द्र	त्रिष्टुभ्
ठ—द्वादशाक्षर	विश्वे देव	जगती
ड—त्रयोदशाक्षर	वसु	त्रयोदश स्तोम
ढ—चतुर्दशाक्षर	रुद्र	चतुर्दश स्तोम
ण—पञ्चदशाक्षर	आदित्य	पञ्चदश स्तोम
त—षोडशाक्षर	अदिति	षोडश स्तोम
थ—सप्तदशाक्षर	प्रजापति	सप्तदश स्तोम

काठक संहिता में अन्न को वाज और सोम को वाजपेय मानकर वाजपेय यज्ञ का महत्त्व संवर्धित किया है—अन्नं वै वाजो य एवं विद्वानन्नमत्ति वाजयत्येनं सोमो वाजपेयो य एवं विद्वान् सोमं पिबति वाजमेव गच्छति (१४, ४, ५)।

(५) राजसूय

राजसूय यज्ञ की विभिन्न क्रियाएँ[1] ये हैं ----

१— अपामार्गहोम

२— आठ देवसूओं की आहुतियाँ

३— व्याघ्रचर्म को फैलाना

४— दो हिरण्यमेनियों का प्रवर्तन

---

१. श्रौतसूत्रों में याज्ञिक प्रक्रिया का सविस्तर विवेचन है। द्रष्टव्य, अल्फ्रेड हिलेब्राँट, **रिच्यूल-लिटरेचर: वेदिश्शे ओपफर उन्द जौबर** (जर्मन में), स्ट्रासबुर्ग, १८९७, पृ० १४१-१४३ (वाजपेय), पृ० १४३-१४७ (राजसूय), १४९-१५२ (अश्वमेध)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

५— यजमान राजा द्वारा, तार्प्य, पाण्ड्व, अधिवास, उष्णीष, इन चार वस्त्रों का परिधान। तार्प्य रेशमी वस्त्र है। पाण्ड्व लाल कम्बल (रक्तकम्बल) को कहते हैं। अधीवास गले में बाँधा जाता है। उष्णीष शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी है। अनन्तर दृवा, रुजा और क्षुमा नामक तीन बाण, अध्वर्यु राजा को देता है।

६— मर्यों (प्रजा) के समक्ष राजा को ले आना।

७— व्याघ्रचर्मारोहण

८— अध्वर्यु द्वारा राजा के बाहुओं को उठाना

यजमान राजा का अभिषेक ——

राजसूय के सम्बन्ध में वाजसनेयी संहिता में मन्त्र हैं ——

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण। क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि॥ (वा० सं० १०, १७)

इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा॥ (वा० सं० १०, १८)

अभिषेचनीय जल राजा के शरीर पर छींटते हुए अध्वर्यु कहता है कि सोम की शक्ति, अग्नि के तेज, सूर्य की प्रभा और इन्द्र के इन्द्रिय से अभिषेक करता हूँ। क्षत्रों का क्षत्रपति बनो। बाणों का अपसारण कर अपनी रक्षा करो।

देवो! इस यजमान को शत्रुरहित कर प्रेरित करो, (सुवध्वम्)—महती क्षत्रपदवी, महान् जनाधिपत्य, इन्द्रवीर्य के लिये। इसे, इसका (पिता का) पुत्र, इसका (माता का) पुत्र, इस विश का। हे विश के लोगो! यह तुम्हारा राजा है (किन्तु) हम ब्राह्मणों का राजा सोम है। महीधर के अनुसार सोम का अर्थ या तो चन्द्र है या सोमवल्ली। किन्तु इन्द्र के इन्द्रिय का तात्पर्य आत्मज्ञानसामर्थ्य मानना, जैसा महीधर कहता है, इस अवसर पर अनुपयुक्त है।

काठक संहिता में जैत्रायण सहोजित् को राजसूययाजी माना गया हैं—**अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रायणो रथमातिष्ठ गोवित्** (१८,५)।

(६) अग्निचयन (इष्टकास्थापन)

वाजसनेयी संहिता के चतुर्दश अध्याय में (वाज० १४, १३) वैश्वदेवी इष्टकाओं के ऊपर पाँच दिश्या इष्टकाओ (इष् + तकन् = इष्टका) को स्थापित करने के समय जो मंत्र पढ़ा जाता है, उसमें राजनीतिशास्त्र के मूल शब्दों का पर्याप्त उपयोग हुआ है ——

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दिशाएं	राजनीतिक सत्ताधारी[1]
१. प्राची	१. राज्ञी
२. दक्षिणा	२. विराड्
३. प्रतीची	३. सम्राट्
४. उदीची	४. स्वराट्
५. बृहती	५. अधिपत्नी

चौदह बालखिल्य इष्टकाओं के स्थापन के समय कवि कहता है (वा० सं० १४, २१-२२) :

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥
यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

तुम मूर्धन्या हो, राट् हो, विनिश्चित धारणकर्त्री हो, धारण करने वाली पृथिवी हो। (इष्टका से) वह आयुष्य, वर्चस्, कृषि और क्षेम की कामना करता है। (पुनः कहता है) तुम यन्त्री, राट्, यमनी और ध्रुवा पृथिवी (धारण करने वाली अर्थात् धरित्री) हो, और इष् (तेज), ऊर्जस्, रयि और पोष की कामना करता है। यन्त्री और यमनी शब्द नियंत्रण के बोधक हैं, जो लोक-प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।[2]

स्पृत[3]-इष्टकाओं की स्थापना के समय भी आधिपत्य शब्द का, देवताओं के प्रसंग में, कई बार प्रयोग हुआ है (वाज० १४, २४) :

१. दीक्षा का आधिपत्य
२. विष्णु का आधिपत्य
३. धाता का आधिपत्य
४. वरुण का आधिपत्य
५. रुद्र का आधिपत्य
६. मरुत् का आधिपत्य
७. पूषन् का आधिपत्य
८. बृहस्पति का आधिपत्य
९. अयव का आधिपत्य
१० विश्वेदेवों का आधिपत्य

---

१. इसी प्रकार का वर्गीकरण वाज० १५, १०-१४ में भी है।
२. यमनी = One who restrains, controls or coerces.
३. स्पृ धातु (स्वादि) प्रीति और पालन अर्थ में है (धातुपाठ)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सप्तदश सृष्टि-इष्टकाओं का अध्वर्यु द्वारा स्थापन (वाज० १०, २८-३१), प्रजापति द्वारा स्वयंमेध करके भूतोत्पत्ति का प्रतीक है। इस यज्ञ में आधिपत्यवाहक की कल्पना राजनीतिक आधार पर ही की गयी है। राजनीतिक प्रक्रिया से सम्बन्द्ध शब्दों का सृष्टियज्ञ के विषय में व्यवहार करना राजनीतिक प्रक्रिया का विश्वात्मक गौरवान्वयन है। इष्टका-स्थापन की प्रक्रिया यों है—

स्तुतिकर्ता	सृष्ट पशु और पदार्थ	आधिपत्यवाहक अथवा अधिपत्नीत्ववाहक
१. (वाक्)	प्रजा	प्रजापति
३. (प्राण)	ब्रह्मा	ब्रह्मणस्पति
५. (प्राण)	भूतानि	भूतपति
७. (प्राण)	सात ऋषि	धाता
९. (प्राण)	पितर	अदिति
११. (प्राण और आत्मा)	ऋतु	आर्त्तव (ऋतुपति)
१३. (प्राण, पाद और आत्मा)	महीने (मासाः)	संवत्सर
१५. (शरीरेन्द्रिय तथा अंडा)	क्षत्र	इन्द्र
१७. (शरीरांग)	ग्राम्य पशु	बृहस्पति
१९. (शरीरांग और प्राण)	शूद्र और आर्य	अहोरात्र (अधिपत्नी)
२१. (शरीरावयव और आत्मा)	खुरवाले पशु	वरुण
२३. (शरीरावयव)	क्षुद्र पशु	पूषन्
२५. (शरीरावयव)	वन्य पशु	वायु
२७. (शरीरावयव)	द्यौः और पृथिवी	वसु, रुद्र और आदित्य
२९. (शरीरावयव)	वनस्पति	सोम
३१. (शरीरावयव)	प्रजा	यवस्, अयव (कृष्ण पक्ष)
३३. (शरीरावयव)	भूतगण	प्रजापति परमेष्ठी

वाजसनेयी संहिता (१५,१५-१९) में इष्टका- स्थापन के प्रसंग में सेनानी और ग्रामणी का निर्देश किया है और इनका नाम दिया है—

सेनानी	ग्रामणी
१, रथगृत्स	१. रथोजा
२. रथस्वन	२. रथेचित्र
३. रथप्रोत	३. समरथ
४. तार्क्ष्य	४. अरिष्टनेमि
५. सेनजित्	५. सुषेण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

७. सौत्रामणी यज्ञ

वाजसनेयी संहिता (अध्याय १९-२१) में सौत्रामणी (सुत्रामन्+अण्) यज्ञ का वर्णन है। इसमें सोमपान के बदले सुरापान वैध माना जाता था। अश्विन्, सरस्वती और इन्द्र को यज्ञीय पेय के रूप में सुरा अर्पित की जाती थी (वा० सं० १९, ३३-३४)। इस यज्ञ के निम्नलिखित उद्देश्य थे, जिनमें कुछ तो पूर्णतः राजनीतिक हैं —

(१) रयिकामी ब्राह्मण द्वारा पुष्टि का लाभ
(२) निर्वासित राजा द्वारा राजगद्दी की पुनः प्राप्ति
(३) योधा द्वारा सपत्नों का दमन
(४) वैश्य द्वारा धन की प्राप्ति

इन्द्र के लिए सौत्रामणी (इन्द्र = सुत्रामन्) यज्ञ निष्पन्न होता था। शांखायन श्रौतसूत्र के अनुसार यह एकाह यज्ञ है। सात हविर्यज्ञसंस्थों में इसकी भी गणना है।

सौत्रामणी का राजसत्ता से सम्बन्ध है—

प्रति क्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु।
प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रतितिष्ठामि पुष्टे प्रति
द्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे। (वा० सं० २०।१०)

(आसन्दी से कृष्णाजिन पर अवरोहण करते हुए यजमान, यजुर्वेद का उच्चारण करता हुआ यों कहता है—) मैं क्षत्र (राजसत्ता) में और राष्ट्र में प्रतिष्ठा प्राप्त करता हूँ। अश्व, गाय, अंग, आत्मा (चित्त या शरीर), पाँच प्राण, समृद्धि, द्युलोक और पृथिवीलोक, और यज्ञ में मैं प्रतिष्ठित होता हूँ। इस मंत्र में राजसत्ता की संपुष्टि के निमित्त अपेक्षित कारकों का उल्लेख है। क्षत्र और देश के वशीकरण के लिए पशुधन, आधिव्याधिराहित्य, सार्वत्रिक कीर्ति और यज्ञ अभिप्रेत हैं।

८. अश्वमेध

ऋग्वेद (५,२७,४-६) में अश्वमेध का वर्णन है। सायण ने वहाँ अश्वमेध को राजर्षि मान लिया है। अन्तिम मन्त्र में इन्द्राग्नी से अश्वमेध में सुवीर्य और अजर क्षत्र धारण कराने की प्रार्थना है। यजुर्वेद की संहिताओं में ही अश्वमेध का चरम महत्त्व व्यक्त हुआ है।

अश्वमेध (अश्+व+मेध्+घञ्) में अनेक देवताओं को आहुति दी जाती थी। (वाज० सं० २२)—

१. प्रजापति
२. अदिति
३. सरस्वती
४. प्रपथ्य पूषन्
५. त्वाष्ट्र विश्वरूप

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

६. विष्णु निभूत शिपिविष्ट
७. अग्नि
८. सोम
९. इन्द्र
१०. पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौः
११. चन्द्र
१२. सूर्य
१३. वसु, रुद्र और आदित्य
१४. मरुत्
१५. विश्वेदेव
१६. मलिम्लुच (= मलमास)

स्पष्ट है कि समस्त जागतिक, वानस्पत्य और नाक्षत्र तत्त्वों को आहुति दी जाती थी। इस प्रकार प्राणिजगत्, सौरमण्डल और समस्त दिशाओं, प्रदिशाओं के कल्याण की कामना की जाती थी। अभी इन समस्त वस्तुओं से तादात्म्य की कोई कल्पना नहीं थी। आयु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, चक्षुः, श्रोत्र, वाक्, मन, आत्मा, ब्रह्मा, ज्योति, स्वः, पृष्ठ और यज्ञ की सफलता की कामना अश्वमेध में की जाती थी। इन्द्रियों और प्राणों की परिपुष्टि से ही दीर्घायुष्य उपलब्ध हो सकता था।

अश्व की इन विभिन्न अवस्थाओं में स्वाहा (वाज० सं० २२) का उच्चारण किया जाता था—

{ १. हिङ्कार
२ हिंकृत
{ ३. क्रन्दन
४. अवक्रन्द (दीर्घ शब्द)
{ ५. प्रोथ (शब्द)
६. प्रपोथ (दीर्घ रव)
{ ७. गन्ध
८. घ्रात
{ ९. निविष्ट
१०. उपविष्ट (नीचे बैठा)
{ ११. सन्दित (थका हुआ)
१२. वल्गन करता हुआ (जाता हुआ)
{ १३. आसीन
१४. शयान
१५. सुप्त
१६. जाग्रत्
१७. कूजत्
१८. प्रबुद्ध

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१९. विजृम्भमाण (जम्हाई लेता हुआ)
२०. विचृत (फैल कर बैठा हुआ)
२१. संहान (एक साथ खींचा हुआ)
२२. उपस्थित
२३. अयन (जाता हुआ)
२४. प्रायण (तेजी से जाता हुआ)
२५. जाता हुआ
२६. दौड़ता हुआ
२७. दूर दौड़ता हुआ
२८. दूर दौड़ कर गया हुआ
२९. "शूकार" करता हुआ
३०. शूकृत
३१. बैठा हुआ
३२. उत्थित
३३. तेज चाल (जव)
३४. बल
३५. विवर्तमान (Rolling)
३६. विवृत
३७. विवर्तवान् (Tossing)
३८. विवृत
३९. ठीक से सुनता हुआ
४०. सुनता हुआ
४१. देखता हुआ
४२. देखा हुआ
४३. ठीक से देखा गया
४४. आँख बंद करता हुआ
४५. (घोड़े का) अन्न
४६. (घोड़े का) पान
४७. मूत्रोत्सर्ग करता हुआ
४८. करता हुआ
४९. कृत

वाजसनेयी संहिता (२२,२१) में अश्वमेध द्वारा संप्राप्य श्रेयस्समन्वित पुरुषों, वस्तुओं, और प्रयोजनों की सूचियाँ है—

१. ब्रह्मवर्चस्युक्त ब्राह्मण
२. शूर, धनुर्धारी, निशानाबाज, महारथारूढ़ राजन्य
३. दूध देनेवाली गौ
४. बोझा ढोनेवाला बैल
५. तेज घोड़ा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

६. पुरन्धि स्त्री
७. विजयी रथारोही, सभेय (सभ्य), वीर युवा पुत्र
८ वर्षा
९. फलवती ओषधियों का पकना
१०. योगक्षेम

इससे स्पष्ट है कि यजुर्वेद का कवि "स्वस्थ भोगवाद" (या Enlightend Hedonism) का समर्थक है। इन उपरिलिखित दश इकाइयों में त्याग, आत्मसमर्पण, लोकानुकम्पा के लिए देहविसर्जन आदि आन्तरिक शीलों अथवा परमार्थ का कहीं उल्लेख नहीं है। सभेय वीर पुत्र की अभिलाषा व्यक्त करती है कि कवि को सभा में वाचालता और प्रगल्भता अभीष्ट है। पुरुषसूक्तप्रोक्त अजा और अवि का यहाँ उल्लेख नहीं है। समाज को आर्थिक और श्रममूलक पुष्टि प्रदान करनेवाले वैश्य और शूद्रों का भी नामस्मरण यहाँ नहीं किया गया है।

(९) यजुर्वेदीय शक्तिवाद का सामाजिक और धार्मिक आधार (वाज० सं० ३० और तैत्तिरीय ब्राह्मण ३,४,१-१७)—पुरुषमेध

शिशु नामक कवि ने पवमान सोम की स्तुति (ऋ० ९,११२) में कतिपय पेशेवरलोग का उल्लेख किया है, जैसे, तक्षा (बढ़ई), भिषक्, कर्मार(लोहकार), कारु (स्तोमकर्ता), उपलप्रक्षिणी (पत्थर पर अन्न रखनेवाली), और माना है कि लोग इच्छा के अनुकूल कार्य करते हैं-नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव (९,११२,३)। किन्तु यह सामाजिक व्यवस्था भी सरल ही है। पुरुष-सूक्त में जिस चतुर्विध वर्णवाद का, एक आदर्श व्यवस्था के निमित्त, वर्णन है, वह भी सरलता की अभिव्यक्ति करता है। किन्तु, दूसरी ओर पुरुष-मेध में ही अनेक कर्मकर वर्गों का उल्लेख सामाजिक संजटिलता का घोर उदाहरण है। सामाजिक पेचीदगी, प्रभिन्नता, पेशानुसारी दक्षता और सामाजिक संजटिलता के विकास में कई सौ वर्ष लग सकते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि का अवलम्बन करने पर ऐसा माना जा सकता है कि ऋग्वेद और यजुर्वेद के काल में करीब चार सौ वर्षों का व्यवधान अवश्य हुआ होगा, जिस अन्तराल में सामाजिक परिवर्तन होते रहे होंगे। अतः, सामान्यतः, यदि ऋग्वेद का काल ई० पू० २००० वर्ष पहले (२०००-१५०० वर्ष ई० पू०) है तो यजुर्वेद का १६०० (१६००-१२०० वर्ष ई०) वर्ष ई० पू० माना जा सकता है। पुरुषमेध (वा० सं० ३०) में सामाजिक व्यवस्था की अनेक इकाइयों का यों उल्लेख है—

१. ब्राह्मण
२. राजन्य
३. वैश्य
४. शूद्र (तपसे शूद्रम्—शूद्र को तपस् के लिए)
५. तस्कर—(स्तेन)
६. वीरहण—(शूर या नष्टाग्नि)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

७. क्लीब—नपुंसक
८. अयोगू—(जुआ खेलनेवाला या व्यभिचारिणी)
९ पुंश्चलू—व्यभिचारिणी
१०. मागध—क्षत्रिया-वैश्यज या मगधदेशोत्पन्न
११. सूत—ब्राह्मणी-क्षत्रियज
१२. शैलूष—नट
१३. सभाचर—(धर्माय सभाचरम्)
१४. भीमल—भयंकर
१५. रेभ—शब्दकर्ता, वाचाट
१६. कारि—करणावशिष्ट
१७. स्त्रीषख—स्त्री का सखा
१८. कुमारीपुत्र (कानीन)
१९. रथकार
२०. तक्षं—सूत्रधार
२१. कौलाल—कुम्भकार-पुत्र
२२. मणिकार—रत्नकर्ता
२३ कर्मार—लोहकार
२४ वप—बीजवप्ता
२५ इषुकार—बाणकर्ता
२६. धनुष्कार—चापकर्ता
२७. ज्याकार—प्रत्यञ्चनकर्ता
२८. रज्जुसर्ज—रस्सी बनानेवाला, चाईं
२९. मृगयु (मृगग्राह)
३०. श्वनी—कुत्ते का नेता
३१. पौञ्जिष्ठ—अन्त्यज
३२. नैषाद—निषाद-पुत्र
३३. दुर्मद—उन्मत्त
३४. व्रात्य—सावित्रीपतित। धर्मच्युत
३५. उन्मत्त—
३६. अप्रतिपद—विकल
३७ कितव—द्यूतकार
३८. अकितव—अद्यूतकृत्
३९. विदलकारी—वंशविदारिणी
४०. कण्टकीकारी—कण्टकीकर्म करनेवाली
४१. जार—उपपति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४२. उपपति—व्यभिचारी
४३. परिवित्त--अविवाहित अग्रज
४४. परिविविदान—अविवाहित अग्रज का विवाहित अनुज
४५. एदिधिषुःपति—अविवाहित ज्येष्ठ कन्या के रहते विवाहित कन्या का पति
४६ पेशस्कारी—रूपकर्त्री
४७. स्मरकारी—कामदीप्तिकरी
४८. उपसद—समीपस्थित
४९. अनुरुध जिद्दी पुरुष या अनुसरणकर्ता
५०. उपदा—उपायनदाता
५१. कुब्ज—वक्राङ्ग
५२. वामन—ह्रस्वाङ्ग
५३. स्राम—जलार्द्र नेत्र
५४. अन्ध—नेत्रहीन
५५. बधिर—कर्णेन्द्रियहान
५६. भिषज—वैद्य
५७. नक्षत्रदर्श—गणक
५८. प्रश्नी—शकुनप्रष्टा
५९. अभिप्रश्नी अभिप्रश्नवान्।[1]
६० प्रश्नविवाक—किये हुए प्रश्नों को जो बोले—कृतान् प्रश्नान् यो विविनक्ति ब्रूते
६१. हस्तिप—गजपालक
६२. अश्वप—हयपालक
६३. गोपाल—धेनुपालक, परवर्ती साहित्य में आभीर
६४. अविपाल—भेड़पालक
६५. कीनाश—कर्षुक
६६. सुराकार—मद्यकृत्
६७. गृहप—गेहपालक
६८. वित्तध—धनकर्ता
६९. अनुक्षत्ता—सारथ्यनुसारी
७०. दार्वाहार—काष्ठाहर्ता
७१. अग्न्येध—अग्निवर्धक
७२. अभिषेक्ता—सींचने का जल छींटने वाला
७३. परिवेष्टा—वस्त्र से आच्छादित करनेवाला

---

१. वेदिक इन्डिक्स, १, पृ० २८ के अनुसार प्रश्नी मुद्दई, अभिप्रश्नी मुद्दालह और प्रश्नविवाक न्यायाधीश था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

७४. पेशिता—प्रतिमावयवकर्ता
७५ प्रकरिता—वितरणकर्ता या विक्षेप्ता (महीधर)
७६. उपसेक्ता—उपसेचनकर्ता
७७. उपमथिता—झगड़ालू
७८. वासःपल्पूली—कपड़ों का प्रक्षालनकर्ता
७९. रजयित्री - रंग करनेवाली, रंगरेज (स्त्री)
८०. स्तेनहृदय—चोर-जैसे हृदयवाला
८१. पिशुन—परवृत्त सूचक
८२. क्षत्ता—प्रतीहार (द्वारपाल) (Door-keeper)
८३. अनुक्षत्ता – प्रतीहार-सेवक (द्वारपाल का अनुचर)
८४. अनुचर—सेवक
८५. परिष्कन्द—दौड़ते हुए चलनेवाला
८६. प्रियवादी—प्रिय बोलनेवाला, मधुरभाषी
८७. अश्वसाद—अश्वारोही
८८. भागदुघ—विभागप्रद
८९. अयस्ताप—लोहतापक
९०. निसर—दूर करनेवाला—नितरां सर्तारम् (महीधर)
९१. योक्ता—योगकर्त्ता
९२. अभिप्रर्त्ता—संमुख आनेवाला
९३. विमोक्ता—विमोचनकर
९४. त्रिष्ठी—विद्यादि में स्थित (शीलवान्)। या ऊपर-नीचे तीन पैर से अर्थात् लगुड़ के सहारे चलने वाला
९५. मानस्कृत्—पूजाकर्ता या अभिभानकर्ता
९६. अञ्जनीकारी—अञ्जनविद्याकारी
९७. कोशकारी—खड्गादि बनाने वाली
९८. असू—वन्ध्या
९९. यमसू - युग्मप्रसवित्री
१००. अवतोका निरपत्या
१०१. पर्यायिणी—अनुक्रमप्रज्ञा
१०२. अविजाता—अप्रसूता
१०३. अतीत्वरी—(अत्यन्त कुलटा)
१०४. अतिष्कद्वरी—अतिस्कन्दति स्रवति, जो नियम भंग करे।
१०५ विजर्जरा—शिथिलशरीरा
१०६. पलिक्नी—श्वेतकेशा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१०७. अजिनसन्ध—चर्मसन्धाता
१०८ चर्मम्न—चर्माभ्यासकर
१०९. धैवर—कैवर्तापत्य
११०. दाश—धीवर या दाता
१११. वैन्द—निषादापत्य
११२. शौष्कल—मत्स्यजीवी
११३. मार्गार—मत्स्य खोजने वाला
११४. कैवर्त्त—मत्स्य पकड़ने वाला
११५. आन्द—बन्धनकर्ता
११६. मैनाल—जाल लगाने वाला
११७. पर्णक—भिल्ल
११८. किरात—पर्वतवासी
११९. जम्भक—हिंसक
१२०. किम्पुरुष—कुत्सित (वन्य) नर
१२१. पौल्कस—क्षत्रिया-निषादज
१२२. हिरण्यकार—स्वर्ण-निष्पादक
१२३. वाणिज—वणिक् का अपत्य
१२४. ग्लावी—अहृष्ट
१२५. सिध्मल—कोढ़ी (सिध्म रोगवाला)
१२६. जागरण—जागरूक
१२७. स्वपन—शयालु
१२८. जनवादी—वाचाल
१२९. अप्रगल्भ—लज्जाहीन
१३०. प्रच्छिद—प्रच्छेदनकर्ता
१३१ कितव—जुआ खेलनेवाला
१३२. आदीनवदर्श—शत्रुदोषदर्शी
१३३. कल्पी—कल्पक। जुआ का व्यवस्थापक
१३४. अधिकल्पी—जुआ का मुख्य व्यवस्थापक
१३५ सभास्थाणु—सभा में स्थिर
१३६. गोव्यच्छम्—गाय की ओर जानेवाला
१३७. गोघात—गाय मारनेवाला
१३८. गोविकृन्तन्त—(यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति) गाय काटने वाला (गां छिन्दन्तम्)। भिक्षा मांगनेवाला
१३९. चरकाचार्य—चरकों का गुरु (संभवतः यजुर्वेद की कठशाखा से सम्बद्ध)
१४०. सैलग—दुष्ट पुत्र। डाकू

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१४१. अर्तन—दुःखी
१४२. भष—जल्पक
१४३. वहुवादी—अतिवादी
१४४. मूक—वाग्विकल
१४५. आडम्बराघात—कोलाहलकर्ता
१४६. वीणावाद—वीणावादनकर्ता
१४७. तूणवध्म—वाद्यविशेष बजानेवाला
१४८. शङ्खध्म—शंखवादक
१४९. वनप—वनपालक
१५०. दावप—वनवह्निपाल
१५१. कारि—करणशील। विदूषक ?
१५२. शाबल्या—कर्बुरवर्णा नारी
१५३. ग्रामणी—ग्रामनेता
१५४. गणक—ज्योतिर्विद
१५५. पाणिघ्न—हस्ततालवादक, हाथ पर ताल देनेवाला
१५६. अभिक्रोशक—निन्दक
१५७. तूणवध्म—वंशी (तूणव) बजानेवाला
१५८. तलव—वाद्यवादक
१५९. पीवान—स्थूल
१६०. पीठसर्पी—पंगु, पीठ के बल सरकनेवाला।
१६१. चाण्डाल—चाण्डालकर्मा
१६२. वंशनर्ती—बांस से नाचनेवाला, नट
१६३. खलति—अलोमशिरस्क, खल्वाट
१६४. हर्यक्ष—हरितनेत्र
१६५. किर्मिर—कर्बुर वर्ण
१६६. किलास—सिध्मरोगवाला। कोढ़ी
१६७. शुक्लपिंगाक्ष—शुक्लवर्ण पीले नेत्र वाला
१६८. कृष्ण पिंगाक्ष—कृष्णवर्ण पीत नेत्र वाला

वाजसनेयी संहिता के रुद्राध्याय (अध्याय १६) से भी सामाजिक विभिन्नता का पता चलता है—उदाहरणार्थ, क्षत्तृ, संग्रहीता, तक्षक, रथकार, कुलाल (कुम्भकार), कर्मार, निषाद, पुञ्जिष्ठ (मत्स्यजीवी), श्वनी (कुत्तों का नेता), मृगयु आदि।

नानाविध इकाइयों में समाज के बंट जाने से सामष्टिक चैतन्य का प्रकटीकरण संभव नहीं था और छोटी टुकड़ियों में विभक्त समाज दृढ अविचल राजतंत्र अर्थात् सर्वराष्ट्र की सत्ता को पुष्ट करता है। अगले अध्याय में वाजसनेयी संहिता के यथार्थवाद का विश्लेषण होगा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दशम अध्याय

यजुर्वेद में यथार्थवाद

(१) संहितोक्त अर्घ (Values in the Yajus)

वाजसनेयी संहिता के परम महत्त्वपूर्ण स्पृहणीय अर्घ ये हैं—

१. अतिमृत्यु (वा० सं० ३१,१८)
२. अपत्य (१३,३५)
३. अभय (वा० सं० ३६.२२)
४. आयुष्[1] (देवहित आयु, २५,११)
५. इष् (—अन्न । १३,३५ । ३८,१४)
६. ऊर्जस् (१२,९ । ३८,१४ भी)
७. ओजस् (१९,९)
८. क्षेम (३,४३)
९. गाय और घोड़े की वृद्धि (२४,३६)
१०. ज्योति, (तीन) की प्राप्ति (८,३६)
११. तेजस् (१९,९)
१२ द्युम्न[2] (= यश । १३,३५)
१३. धन (१२,७)
१४. पोष (१२,७ । सुपोष, ३,३७)

---

१. काठक संहिता में यज्ञ और आयु के विषय में यों कहा है -
सम्यगायुर्यज्ञो यज्ञपतौ दधातु (३०,८)
: : : : : :
यज्ञेन वा एनमेतद्वर्धयति यन्नाना प्राण इत्याह
सम्यगायुर्यज्ञो यज्ञपतौ दधातु (३०,९)
: : : : : :
शतायुर्वै पुरुषशतवीर्य (काठक, ११,४—पृ० १४८, श्रोयडर-संस्करण)

२ विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वरेत पुष्यतु ।—काठक संहिता, १६,७ (पृ० २२७, श्रोयडर-संस्वरण)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१५. प्रजा[1] (सुप्रजा ३।३७ । सुवीर ३।३७)
१६. प्रजा, प्रजापति की, होना अर्थात् अतिराजनीतिक (Super-political or Divine) प्रशासन की कामना (१८,२९)
१७. बल (१९,९)
१८. भग (३४,३८)
१९. भद्र श्रवण (२५,६१)
२०. भद्र दर्शन (२५,११)
२१. भ्राजिष्ठ (अतिदीप्तिमान्) बनाना (भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्—वा० सं० ४०)
२२. मन्यु (१९।९)
२३. मेधा (१२।७ ।३२,१५)
२४. रयि (१२,७ । २,७)
२५. वर्चस् (१२,७) (वर्च् दीप्तौ + असुन्)
२६. वागोजः (वा० सं० ३६,१)
२७. वीर्य (१९,९)
२८. व्रत (१,५)
२९. शम् (३६,१०,११)
३०. शान्ति (३,४३ । ३६,१४)
३१. श्री, उत्तमा (३२,१६)
३२. सनि (लाभ, Profit, १२,७।३२,१३)
३३. सत्य[2] (३९,४)
३४. सहस् (१९,९।१३,३५) (वा० सं० ३६,१ में सहौजस् है)
३५ स्वस्ति[3] (वा० सं० ५,३३)

---

१. शिवो भव प्रजाभ्यो (वा० सं० ११,४५)
: : : : : : : :
धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यं (वा० सं० ११,५८)
: : : : : : :
मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः (वा० सं० १९,३२)

२. वा० सं० में सत्यजित्, सत्यज्योतिः, सत्यधर्मा, सत्यप्रसवः, सत्यप्रसवसः, सत्यौजाः (१०,२८), सत्यराजन्, सत्यराधः, सत्यराधसम्, सत्यश्रवस्, सत्यसवसः, पद भी प्रयुक्त हैं।

३. पृथिवी से स्वस्ति की कामना करता हुआ, काठक संहिता (१६,७) का कवि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(२) शक्तिवाद और राजनीति

जागतिक अभ्युदय, शक्ति और राजनीति से सम्बद्ध वाजसनेयी संहिता के मूल शब्द ये हैं—

१. शततेजाः (१,२।४)
२. सहस्रतेजाः (१,२४)
३. वर्चस् (१,१७)
४. पुष्टिवर्धनः[१] (१,४०)
५. वाजजित् (२,७)
६. स्वराड् सपत्नहा (शत्रुहन्ता—५,२४)
उवट के अनुसार अपना ही राज्य जिसे है, उसे स्वराट् कहते हैं। महीधर का कथन है कि जो स्वयं प्रकाशित हो, उसे स्वराट् कहते हैं (स्वेनैव राजत इति स्वराट्—स्वयमेव राजमानो भवति)।
७. सत्रराड् अभिमातिहा (अननुकूल शत्रुहन्ता) (५,२४)
८. जनराड् रक्षोहा (५,२४)
९. सर्वराड् अमित्रहा (५,२४)
१०. रायस्पोषवनि[२] (५,२७)
११. सम्राट् (५,३८)। साम्राज्य (१०,२७)
१२. पारिषद्य (५,३२)
१३. अग्रणी (६,२)
१४. इन्द्र—सम्राट् (८,३७)
१५. वरुण—राजा (८,३७)

कहता है—

दृंहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय आसुरी माया स्वधया कृतासि।
जुष्टं देवेभ्य इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे आस्मिन्॥
(पृ० २२७, श्रोयडर-संस्करण)

१. काठक संहिता (४०,१) में पुष्टि के विषय में कहा है—
आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिर्धाता दधातु सुमनस्यमानः।
संवत्सर ऋतुभिश्चाकॢपमानो मयि पुष्टिं पुष्टिपति दधातु।
प्रजापति के लिये, पुष्टिपति शब्द का प्रयोग, राजनीतिक दृष्टि से विचारणीय है।

२ काठक संहिता (५,४, श्रोयडर-संस्करण, पृ० ४७) में मन्त्र है—
घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सहस्रिणम्
वेदो वाजं ददातु मे वेदो वीरं ददातु मे।
यहाँ रायस्पोष, वाज और वीर की कामना की गई है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१६. यन्ता—यमन (९,१२२)
१७. ध्रुव—धरुण (९,२२)
१८. वैराज (१०,१३)
१९. सत्यौजा (१०,२८) वरुण, जिसका ओज सत्य है।
२०. विशौजा (१०,२८) —इन्द्र, जिसका ओज प्रजा है।
२१. मध्यमेष्ठ्य (सजातों का मुख्य स्थान)—(१०,२९)
२२. पृतनाजेता (संग्रामजेता) (१०,७६)
२३ सासहि—शत्रुओं का अभिभविता (१०,७६)
२४. अभीत्वरी—जोर से आक्रमण करनेवाली, आव्याधिनी—लम्बी रेखा में चढ़ाई करनेवाली, उगणा (पंक्तिबद्ध) सेना (११,७७)
२५. आधिपत्य (१४,२४)
२६. ज्यैष्ठ्य (१५,५७)
२७. क्षत्तृ (क्षद् + तृच्) (१६,२६)
२८. संग्रहीतृ (१६,२६)
२९. सेनानी (सि + न + टाप्—सेना + नी = णिच्) (१६,२६)
३०. रथी (१६,२७)
३१. प्रवीर (१७,३७)
३२. सहस्वान् (शक्तिसमन्वित)
३३. वाजी (१७,३७)
३४. सहमान (विजयी)
३५. उग्र (१७,३७)
३६. अभिवीर (१७,३७)
३७. अभिभञ्जती (शत्रुओं का मर्दन करती हुई), जयन्ती (विजयमाना) देवसेना (वा० सं० १७,४०)
३८. अज्म (युद्ध) (१७,३८)
३९. नेता (इन्द्र आसां नेता)। (१७,४०)
नेता अर्थात् अग्रणी का राजनीतिक प्रयोग स्मरणीय है। महीधर ने नेता का अर्थ प्रणेता किया है।
४०. अनुवीरयध्वम् (वा०सं० १७,३८)। इस का अर्थ उवट ने किया है—वीर-कर्मकर्माणमनुगम्य वीरकर्मणैव प्रोत्साहयत अर्थात् वीरकर्म करनेवाले का अनुसरण कर वीर-कर्म से उत्साहित करो। वीर शब्द का धातुकरण तत्कालीन राजनीतिक पराक्रम के वातावरण को सूचित करता है।
४१. शक्ति (१८,१५) ४२. कर्म (१८,१५)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४३. धीति (१८,१)
४४. ऋतु (१८,१)
४५. मति (१८,११)
४६. सुमति (१८,११)
४७. ओजः (१८,३)
४८. आयु (१८,३)
४९. जीवातु (१८,६)
५०. दीर्घायुत्व (१८,६)
५१. ज्यैष्ठ्य (१८,४)
५२. आधिपत्य (१८,४)
५३. जेमा (१८,४)
५४. महिमा (१८,४)
५५. वरिमा (१८,४)
५६. प्रथिमा (१८,४)
५७. द्राघिमा (१८,४)
५८. वृद्धि (१८,४)
५९, ऋत (१८,६)
६०. अमृत (१८,६)
६१. द्रविण (१२,८)
६२. भद्र (१८,८)
६३. श्रेयस् (१८,८)
६४. यशस् (१८,८)
६५. कृषि (१८,९)
६६. वृष्टि (१८,९)
६७ औद्भिद्य (१८,९)
६८. अन्न (१८,९)
६९. रयि (१८,१०), राय.
७०. पुष्ट (१८,१०)
७१. पुष्टि (१८,१०)
७२. विभु (१८,१०)
७३. प्रभु (१८,१३)
७४. पूर्ण (१८,१०)
७५. पूर्णतर (१८,१०)
७६ सुपथ्य (१८,११)
७७. ऋद्ध
७८. ऋद्धि
७९. वित्त (१८,११)
८०. वित्ति (१८,१४)
८१. अर्य (१८,१५)
८२. ब्रह्म (१८,३८)
८३. क्षत्र (१८,३८)
८४. रुच (१८,४७)
८५. व्रत (१८,२३)
८६. ऊर्जस्
८७. शम् (१८,८)
८८. मयस् (आमुष्मिकसुख-महीधर) (१८,८)
८९. प्रिय (१८,८)
९०. काम (१८,८)
९१. अनुकाम (१८,८)
९२. आश्विनी (दोनों अश्विनों का तेज) (१९,८)
९३. सारस्वत वीर्य (१९,८)
९४. ऐन्द्र बल (१९,८)
९५. तेज (१९,९)
९६. वीर्य (१९,९)
९७. बल (१९,९)
९८. ओज (१९,९)
९९. मन्यु (१९,९)
१००. सह (१९,९)
१०१. आसन्दी (१९,१६)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(३) रुद्राध्याय

रुद्राध्याय में राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शब्द और मन्तव्य यों हैं--

१. धनुष और वाण की महत्ता—

विज्यं धनुः कपर्द्दिनो विशल्यो बाणवाँऽउत । (१६,१०)

रुद्र का धनुष ज्या रहित हो और वाण शल्य (फलक) रहित हो।

२. वीर की महत्ता—

मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीः (१६,१६)

हमारे क्रोधसंयुक्त वीरों का नाश न हो।

३. रुद्र को हिरण्यवाहु सेनानी कहना—

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये । (१६,१७)

× × ×

नमः सेनान्यः सेनानीभ्यश्च वो नमो । (१६,२६)

४. रुद्र को सभापति कहना—

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो (१६,२४)

५. रुद्र को सेना की टुकड़ी का अधीश मानना

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो

नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो । (१६,२५)

६. अग्र्य और प्रथम का सामाजिक और राजनीतिक तात्पर्य—

नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च । (१६,३०)

७. आशुषेण (जिसकी सेना तीव्रगामिनी हो) और श्रुतसेन (जिसकी सेना प्रसिद्ध हो)—

नम आशुषेणाय । (१६,३४)

× × ×

नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च । (१६,३५)

८. युद्धक्षेत्र में, सेनासंगठन के प्रसंग में, (रुद्र के लिये प्रयुक्त) शब्दों का संग्रह—(१६,३५,३६)

(क) विल्मी (मस्तकत्राणवस्तु-सम्पन्न)

(ख) कवची

(ग) वर्मी

(घ) वरूथी

(ङ) निषङ्गी

(च) इषुधिमान्

(छ) तीक्ष्णेषु

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(ज) आयुधी
(झ) स्वायुध
(ञ) सुधन्वा

९. इस ग्राम के सभी, पुष्ट, भुक्तान्न, और स्वस्थ हों, ऐसी कामना—
विश्वं पुष्टं ग्रामेऽस्मिन्ननातुरम् (१६,४८)।

१०. भूतों का अधिपति—
-ये भूतानामधिपतयो (१६,५९)

११. आयुर्युध (१६, ६०) — जो जीवन के लिये युद्ध कर रहे हों।

(४) वाज-महिमा

इन मन्त्रों में वाजसनेयी संहिता का यथार्थवाद व्यक्त होता है —

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः।
वाजो नो विश्वैर्देवैर्धन सातविहावतु। (वा० सं० १८, ३२)

सात प्रदिशाओं और चार दूर स्थानों को हमारी शक्ति पूरित करे। विश्वदेवों के साथ धन की प्राप्ति में हमारा वाज हमारी रक्षा करे।

वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ २ ऽ ऋतुभिः कल्पयाति।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वाऽआशा वाजपतिर्जयेयम्॥
(वा० सं० १८। ३३)

आज हमारा वाज दान प्राप्त करावे, ऋतुओं के साथ वाज देवों को एकत्र बैठावे (कल्पयाति)। वाज ने मुझे अनेक वीर (सर्ववीर) दिये हैं, वाजपति के रूप में मैं समस्त आशाओं (दिशाओं) का जय करूँ।

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयाति।
(वा० सं० १८, ३४)

वाज हमारे आगे और मध्य में हो। वाज यज्ञहविः से देवों का संवर्धन करे।

वाज वैदिक राजनीतिशास्त्र का मूल शब्द है। रोथ के अनुसार इसका अर्थ है—(१) Raschheit (तीक्ष्णता, तेजी), (२) Wettlauf (दौड़-प्रतियोगिता), Wettkampf (पुरस्कारार्थ मल्लयुद्ध), (३) Kampfpreis (पुरस्कारार्थ युद्ध)। Beute (युद्ध में प्राप्त धन), (४) Gewinn (प्राप्त करना), Lohn (वेतन, पुरस्कार)[1] (५) Opferpeise (अन्न)[2], (६) Wasser (जल), (७) Renner (अश्व-दौड़)।

---

१. वा० सं० ९, १३ — वाजजितो वार्ज जेषम्। वाजिनो वाजजितः। ग्रिफिथ ने भी यहाँ वाज का अर्थ पुरस्कार (prize) किया है। किन्तु रोथ और ग्रिफिथ का यह अर्थ निराधार है।

२. वा० सं० ९, १— वाचस्पति र्वाजं नः स्वदतु- में उवट ने वाज का अर्थ अन्न किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वामी दयानन्द ने वाज (वा. सं. १२, १०६) का अर्थ विज्ञान और (वा० सं० १२, ११३) धनुर्वेदबोधज वेग किया है।

(५) अधिपति

महत्ता की संस्तुति भी वैदिक राजनीतिक यथार्थवाद की परम्परा को पुष्ट करती है—

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽअधि श्रिताः।
य ऽईशे महतो महांस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम्॥
(वा० सं० २०, ३२)

जो प्राणियों का अधिपति है, जिस पर लोक अधिश्रित हैं, जो शासनकर्ता है, जो महान् से भी महान् अर्थात् परम महान् है—उससे तुमको ग्रहण करता हूँ, अपने (संरक्षण में) तुमको ग्रहण करता हूँ।

(६) विशः और राष्ट्र

आ त्वाहार्षमन्तरभू ध्रुवस्तिष्ठा विचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत्।
(वा० सं० १२। ११ = ऋ० १०, १७३, १)

हे अग्ने! मैं तुमको लाया हूँ, तुम भीतर हो (नाभि के ऊपर शरीरमध्य में)। तुम चलनरहित हो स्थिर बैठो। सारी प्रजा तुम्हें चाहे। राष्ट्र अर्थात् जनपदसमूह तुमसे गिरे नहीं। महीधर ने "अन्नं वै विशः" ध्यान में रखकर यह भी अर्थ किया है कि समस्त अन्न तुम्हें चाहें।

वाजसनेयी संहिता में प्रजा शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। संवत्सर से प्रार्थना है कि वह यज्ञ को धारण करे और प्रजा का परिपालन करे—प्रजां च परिपातु नः (वा० सं० २६, १४)। यहाँ स्पष्ट नहीं है कि किसकी प्रजा का पालन हो—यजमान अपनी सन्तति की कल्याणकामना कर रहा है अथवा राजनीतिक अर्थ (people अथवा subjects) भी ग्रहण किया जा सकता है। प्रजापतिः प्रजया सँरराणः (वा० सं० ३२, ५) से स्पष्ट ही प्रजा का व्यापक अर्थ परीगृहीत है।

कपिष्ठल-कठ संहिता[१] में राष्ट्र शब्द का उल्लेख है—यं कामयेत राष्ट्रं स्यादिति तं मनसा ध्यायेत्। राष्ट्रमेव भवति।

(७) स्वराट्

वाजसनेयी संहिता में स्वराट् की प्रभूत महत्ता व्यक्त है—

विराड् ज्योतिरधारयत् स्वराड् ज्योतिरधारयत्। (वा० सं० १३, २४)। महीधरने विराट् का अर्थ किया है जो विशेष प्रकाशित हो (विशेषेण राजत इति विराट्)।

१. पृ. १७१, रघुवीर-संस्करण।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वराट् का अर्थ, महीधर के अनुसार, है, जो स्वयं प्रकाशित हो (स्वेनैव राजत इति स्वराट्) । उवट और महीधर ने मन्त्र की व्याख्या में कहा है कि यहाँ यह लोक (अयं लोकः) स्वराट् माना गया है ।

:::: :::: ::::

सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् । (वा० सं० १३, ३५)– यहाँ अग्नि पर रक्खी उखा (उत् + खन् । पात्र) को सम्बोधित कर उसे सम्राट् और स्वराट् कहा है । उवट ने सम्राट् का अर्थ किया है, संगतराज्यभावासि अर्थात् राज्यभाव को प्राप्त । महीधर के अनुसार सम्राट् का अर्थ है सम्यग्राजत इति अर्थात् अच्छे प्रकार से प्रकाशित है ।

(८) यजुर्वेद में सावयववाद

वाजसनेयी संहिता में सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराज (२०, ४) का प्रयोग कर नृपतितंत्र का जोरदार उपस्तम्भन किया है और इसी प्रसंग में (२०,५—९) विराट् सावयववाद का भी पोषण किया गया है । इसको यों दर्शाया जा सकता है—

व्यष्टिमूलक (Microcosmic)	जागतिक (Macrocosmic)
१. शिर	१. श्रीः
२. मुख	२. यशः
३. केश और श्मश्रू	३. त्विषि (तेज)
४. प्राण और अमृत	४. राजा
५. चक्षुः	५. सम्राट्
६. श्रोत्र	६. विराट्
७. जिह्वा	७. भद्र
८. वाणी	८. महः (शक्ति)
९. मन	९. मन्यु (सात्विक क्रोध)
१०. भाम	१०. स्वराट्
११. मोद	११. अङ्गुलि
१२. प्रमोद	१२. अंग
१३. सह (शक्ति)	१३. मित्र
१४. बाहु	१४. इन्द्र का बल
१५. हस्त	१५ कर्म वीर्य
१६. आत्मा और उरस्	१६. क्षत्र
१७. पृष्ठी	१७. राष्ट्र
१८. उदर	१८. विशः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अंस (कन्धा)	
गर्दन	
जंघा	
केहुनी	
ठेहुन	
१९. नाभि	१९. चित्त
२०. पायु	२०. विज्ञान
२१. भसत् (गुह्याङ्ग, उणादि १, १२९)	२१ उपचिति (पूजा)
२२. वृषण	२२. आनन्द
२३. पस	२३. भग (ऐश्वर्य) और सौभाग्य
२४. जङ्घा और पैर	२४. धर्म

२५. विशः (प्रजा) में राजा प्रतिष्ठित है (विशि राजा प्रतिष्ठितः)।

उवट का कथन है—धर्मं प्रति ही राजा भवति । तात्पर्याभिज्ञापन करते हुए महीधर ने बताया है—धर्मरूपत्वादेव विशि प्रजायां राजा प्रतिष्ठितोऽस्ति । धर्मप्रतिष्ठितो हि राजा भवति । किन्तु स्मरण रखना है कि प्रजा में राजा को, भले ही, धर्मरूप से ही हो, प्रतिष्ठित करने से राजा का ही महत्त्वाभिज्ञापन होता है । यजुर्वेद के इस कथन से विशः की संप्रभुता की ध्वनि कदापि नहीं निकलती है ।

(९) ब्रह्म और क्षत्र (यथार्थवाद और श्रेयस्)

ब्रह्म और क्षत्र की समवेत साधना[1] समीप्सित है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ।
(वा० सं० २०, २५)

जहाँ ब्रह्म और क्षत्र सम्यक् (ऐकमत्य में) हो चलते हैं और जहाँ अग्नि के साथ निवास करते हैं, उस पुण्य लोक को हम प्राप्त करें अथवा जायँ ।

महीधर ने ब्रह्म और क्षत्र का जातिपरक अर्थ कर इस मन्त्र का तात्पर्य सीमित कर दिया है । ज्ञानात्मक शक्ति और भौतिक बल की सम्यक् समुपासना अर्थ भी करना संभव है ।

: : : : : : : : : : : : :

१. कपिष्ठल-कठ संहिता (४५,३) में भी ऐसा आशय प्राप्त होता है—
क्षत्रं वा इन्द्रः । क्षत्रमेव संपाद्य प्रतिष्ठापयति ।
आग्नेयो वै ब्राह्मण ऐन्द्रो राजन्यः ।
ब्रह्मणैव क्षत्रं मध्यतो व्यवसर्पति ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा।
(वा० सं० ३२, १६)

ब्रह्म और क्षत्र, दोनों, जो मेरी श्री है, उसका भोग करें। देवगण मुझमें श्री स्थापित करें। तुम्हारे लिए वह श्री स्वाहा। श्री अर्थात् भौतिक सम्पदा के सम्यक् उपभोग के लिए ब्रह्मशक्ति और क्षत्रशक्ति का सहयोग अभिप्रेत है।

: : : : : : : : : : : :

क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वंपाहि
विशस्त्वा धर्मणा वयमनुक्रामाम सुविताय नव्यसे। (वा० सं० ३८, १९)

तुम क्षत्र के अवश्य रक्षण के लिए हो। ब्राह्मण के शरीर की रक्षा करो। विशः के लिये, हमलोग धर्म से तुम्हारा अनुक्रमण करते हैं, शांति (सुविताय) और सुख (नव्यसे अथवा नूतन कर्म) के लिए। महीधर ने धर्मणा का अर्थ धारण वा निमित्त किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एकादश अध्याय

यजुर्वेद में राजनीतिक आदर्शवाद

(१) हिंसा की निवृत्ति

आत्म-संरक्षण राजनीतिक प्रक्रिया का मूल मंत्र है। लोकतंत्र में वैयक्तिक सुरक्षा को आवश्यक अधिकार माना है। वाजसनेयी संहिता में मंत्र है —

मा मा हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(वा० सं० १२।१०२ =ऋ० १०, १२१, ९)

जो पृथिवी को उत्पन्न करने वाला (जनिता = जनयिता), सत्यधर्मशील और द्यौः में व्याप्त है, वह मेरी कदापि हिंसा[१] न करे। जिसने प्रथम आह्लादक (चन्द्राः आह्लादिका जगत्कारणभूता-महीधर), शुद्ध जल को उत्पन्न किया (वह भी हिंसा न करे)। किस (प्रजापति = काय = कस्मै) देवता की हम हविः से (यज्ञार्चना) करते हैं ?[२] उवट के अनुसार व्याप्तिकर्मबोधक व्यानट्, वेद में, असृजत्, उत्पन्न किया, इस अर्थ में प्रयुक्त है।

कपिष्ठल-कठ संहिता में भी अपनी अहिंसा की कामना व्यक्त की गयी है—वज्रो वै स्वधितिः। अहिंसायै। (६, ४१, ष १, २)। तथा अग्नि से सुचरित प्रदान करने की प्रार्थना है और अहिंसा की भी—पाहि माग्ने दुश्चरितादा मा सुचरिते भवेति पाप्मानमवपहते। विजिहाथां मा मा संताप्तमित्यात्मनो ऽहिंसायै।

(६, ४६, पृ० २४६, रघुवीर-संस्करण)

---

१. वाजसनेयी संहिता (१९, ६२) में पितरों से प्रार्थना है कि जो कुछ पाप, मानव होने के कारण, हो गये हों, उनके लिए हिंसा न करें— मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व ऽ आगः पुरुषता कराम।

२. कपिष्ठल-कठ संहिता (४३, २, पृ० ३०१) में विजय और यज्ञ में सम्बन्ध बताया है— तस्माद्राजा संग्रामं जित्वा निराजं निरजते।... विराजैतस्य ग्रहस्य यजत्विति। देवपात्रं वै विराट्। यद्विराजा यजति देवपात्रैणैव देवतास्तर्पयति। तस्माद् यद्राजा संग्रामं जयत्यपि तत्र सूतग्रामणीनाम्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(२) स्वस्ति और अभय

स्वस्ति और अभय की कामना राजनीतिक आदर्शवाद को व्यक्त करती है—

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ।
(वाज० २०, ५०)

त्राता[1] इन्द्र को, गोप्ता इन्द्रको, शूर इन्द्र को, जो प्रत्येक बुलाहट पर अच्छी तरह सुनता है ; शक्र को , अनेकजनाहूत इन्द्र को बुलाता हूँ, मघवा इन्द्र, हमारे लिये स्वस्ति धारण करावे । (२०, ५०)

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ[2] ऽ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम । (वाज ०२०, ५१)

सहायक इन्द्र हमारा सम्यक् गोप्ता है' समस्त धन का अथवा ज्ञान का अधीश (विश्ववेदाः) है, सहायता से सुदत्त (सुमृडीको) करे । सपत्नों को पराजित करे, अभय करे, सुवीर्य के हम पति बनें ।

:::: :::: :::: ::::

यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥—(यजु० ३६ । २२)

जिस-जिस (भयस्थान) से तुम चाहते हो, वहाँ से हमें निर्भीक बनाओ । हमारी प्रजा का कल्याण करो, हमारे पशुओं का भी, अथवा हमें पशुओं से निर्भीकता प्रदान करो ।

अग्निचयन के क्रम में, वैश्वानर अग्नि को सप्तसमिदर्पण के बाद, मरुत् के प्रति हवन के प्रसंग में जो पद मरुत् देवता के लिये प्रयुक्त हैं (वा० सं० १७,८२,८३) वे लोकतांत्रिक समाजवादी परम्परा में संवर्धनशील मानव के भी स्पृहणीय अर्घ हो सकते हैं । वे ये हैं—ऋत, सत्य, ध्रुव, धरुण, धर्ता, विधर्ता, ऋतजित्, सत्यजित्, सेनजित्, सुषेण, अन्तिमित्र (जिसके मित्र नजदीक हों अर्थात् आसन्नमित्र) और दूरेऽअमित्र अर्थात् जिसके शत्रु दूर हों । सौत्रामणी के क्रम में अग्नि से याचित पदार्थ ये हैं—

१ स्वस्ति के लिये दश पुत्र
२. आत्मसनि हविः अर्थात् आत्मजय
३. प्रजासनि हविः अर्थात् प्रजाजय

---

१. अग्नि से भी त्राण की कामना है—वा० सं० २७. ४३, ४४ ।

:::: :::: :::: ::::

पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमान्त्स्वाहा—वा० सं० ३५, १७ ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४. पशुसनि हविः अर्थात् पशुजय
५. लोकसनि हविः अर्थात् लोकजय
६. अभयसनि हविः अर्थात् अभय की प्राप्ति
७. प्रजा, अन्न, दुग्ध और शक्ति

स्पष्ट है कि लोकतंत्र, जनकल्याणराज्य, समाजवाद आदि आधुनिक राजनीतिक दर्शन के मूल्य (अर्घ) भी इसी प्रकार के हैं। अभय पर वैशिष्ट्य-प्रदान वैदिक संहिताओं की विलक्षणता है।

(३) सेदिनिवृत्ति

वाजसनेयी संहिता के अनुसार आदर्श राजनीतिक व्यवस्था वह होगी, जहाँ अन्न का कष्ट न हो—

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकंपुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते। (वा० सं० २०, २६)

जहाँ इन्द्र और वायु साथ—अवियुक्त अर्थात् संगत हो चलते हैं और जहाँ अन्नाभावजनित कष्ट न हो, उस पुण्य लोक को हम प्राप्त करें।[1] ऐसा मालूम पड़ता है कि यजुर्वेदीय पुरोहित अन्नाभाव की आशंका से व्यथित था अतः सेदि का निराकरण चाहता है। उवट ने कहा है—अन्नलाभनिमित्तं सदनं कार्यात् सेदिः। मोनियर विलियम्स के कोश में सेदि (√सद) का अर्थ किया है, थकावट, श्रान्ति, जीर्णता। अन्न की महत्ता की अभिव्यक्ति के लिये ऐलवृदाः (वा० सं० १६,६०) पद का प्रयोग है। इला अन्न को कहते हैं[2]—इलाओं के समूह को ऐल कहते हैं, उन्हें जो धारण करें (बिभ्रति) उन्हें ऐलभृतः वा ऐलवृदाः कहते हैं।

(४) विश्वमानववाद का आधार

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मन्निदं सं च विचैति सर्वं स ओतः प्रोतश्चविभूःप्रजासु।
(वा० सं० ३२।८)

---

१. सेदिनिवृति के विधेयात्मक पक्ष की पुष्टि निम्नलिखित मंत्र में है—
अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः।
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु॥ (वा० सं० २६,१९)
वीर पुत्रों, गायों, अश्वों, समस्त पुष्ट पदार्थों, मनुष्यों, पशुओं (चतुष्पादों) के साथ हम पोषण प्राप्त करें।

२. कपिष्ठल-कठ संहिता (३७,३, पृ० २२९, रघुवीर-संस्करण) अन्नं विराट्। विराज्ये वान्नाद्ये प्रतितिष्ठति। ४१,३, पृ० २७६ अन्न एव तेजो दधाति। ....अन्न एवं वज्रं दधाति।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उस गुहास्थित (परम सत्) को जिसमें समस्त विश्व एक गृहवाला अर्थात् एकनिलय, (एकनीडम्)[1] हो जाता है वेन (पण्डित) ने देखा है। वहाँ समस्त एकीभूत (संहारकाल में) होता है और वहाँ से आरम्भ (सर्गकाल में) करता है। वह प्रजाओं में ओत और प्रोत विभु है।[2] यहाँ एकनीड शब्द विश्वमानववाद का दार्शनिक आधार हो सकता है। ब्रह्म में कार्यसृष्टि एकनीड हो जाती है। अविभक्त ब्रह्म ही आश्रय हो जाता है। उसी प्रकार कह सकते हैं कि समस्त मानवजाति आत्मरूपेण एक ही है और प्रभेदकारी तत्त्वों का महत्त्व अल्प ही है।

यजुर्वेद (वाज० सं०) में विश्वकर्मा, विश्वचक्षाः, विश्वचर्षणिः, विश्वजन्याम्, विश्वतूर्तिः, विश्वतोधात्म्, विश्वदर्शतम्, विश्वदेवनेत्राः (९,३६), विश्वदेव्यम्, विश्वदेव्यावतीः (११,६१), विश्वधाया, विश्वम्भरा, विश्वभृत, विश्वभेषज, विश्वभोजसा, विश्वमिन्वा, विश्ववारः (२७,१३), विश्ववारा (**सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा**—वा० सं० ७,१४,), विश्ववेदसम्, विश्वव्यचा, विश्वशम्भुवः, विश्वशम्भूः (८,५५), विश्वसामा, विश्वाची, विश्वानराय, विश्वाभुवे, विश्वासाहम्, पद भी प्रयुक्त हैं। विश्वानराय विश्वाभुवे (३३,३३,) और **वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम** (२६,७) भी उल्लिखित हैं।

(५) विश्वशांतिवाद

ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में उद्दाम लिप्सा, भयंकर युद्धप्रियता और विजयकामना की प्रधानता है। किन्तु यजुर्वेद के अन्तिम भाग (३६।१७) में शांति का प्रबलतम

१. अथर्ववेद में मन्त्रार्ध यों है—
वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्। (२,१,१)

२. वाजसनेयी संहिता में, अन्यत्र भी, अध्यात्म का पोषण उदात्त शब्दों में है—
विश्वकर्मा विमनाऽआद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्। (१७,२६)
: : : : : : : : : : : : : : : :
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधाऽएकऽएव तꣳ संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥
(१७,२७)
: : : : : : : : : : : : : : : :
तमिद् गर्भं प्रथमन्दध्रऽआपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः।
(१७,३०)
एक विराट् परमेश्वर की सत्ता की कल्पना समस्त मानवों की एकता का समर्थन कर सकती है, यद्यपि इतिहास में अभी तक ऐसा हुआ नहीं है। व्यवहार में बहुदेववादी लोगों ने अधिक राजनीतिक सहिष्णुता दिखायी है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उद्घोष है। द्यौः, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, ओषधि, वनस्पति, विश्वेदेव और ब्रह्म की शांति और अन्ततः सर्व-शांति की कामना इस आदर्शवाद को संत अगस्तीन और इमैनुयल काण्ट की परम्परा का पूर्वरूप सिद्ध करती है। निस्सन्देह, यजुर्वेदीय कवि शांति का परमाभिलाषी है।

मैत्री भाव से समस्त जगत् के प्राणियों से व्यवहार भी इसी आदर्शवाद से सम्बद्ध है—समस्त प्राणी, मित्र की दृष्टि से हमें सम्यक् देखें। मैं समस्त प्राणियों को मित्र की आंख से देखूं। (वा० सं० ३६,२२)

वैदिक शांतिवाद के समर्थक निम्नलिखित प्रकरण हैं—

(क) ऋग्वेद का संज्ञान[1] सूक्त ("संगच्छध्वम्" मन्त्र)
(ख) ऋग्वेद का "शम्" प्रकरण
(ग) यजुर्वेद का शांतिमन्त्र
(घ) यजुर्वेद और अथर्ववेद का अभय का सन्देश

(६) आचारशास्त्र और राजनीति

वाजसनेयी संहिता में चालीस अध्याय हैं और इनके विभिन्न मन्त्रों के अनुशीलन से तीन आचारशास्त्रात्मक स्तरों[2] का बोध होता है। प्रथम, व्यावहारिक नीतिशास्त्र—जिसमें अपने कल्याण, सुप्रजा आदि की और शत्रुओं के दुर्मित्रत्व, हिंसा आदि की कामना है। काठक संहिता और मैत्रायणी संहिता में अहिंसा शब्द का उल्लेख परम महत्त्वपूर्ण है (मा मा मा हिंसिष्ट मित्यात्मनोऽहिंसायै पाहि द्विषः पाहि रिषः पाह्यदेव्या अभिशस्त्या (काठक ३७,१६)

द्वितीय स्तर पर दुरित और भद्र के द्वन्द्व का विकास होता है।[3] ऋत और अनृत का द्वन्द्व भी यहाँ परिगृहीत है और अनृत से त्राण की इच्छा है। अनृत के सत्य पर आरोहण (वा० सं० १,५) इसी का द्योतक है। इसी स्तर पर शिवसंकल्पसूक्त को भी रख सकते हैं, जिसमें कल्याणपूर्ण संकल्प की मनस्कामना है। समस्त भूतों को मित्र की

---

१. काठक संहिता (१०,१२) में भी पशु, अर्वन्, स्वकीय और शत्रुओं से संज्ञान की कामना करते हुए संज्ञान की महत्ता व्यक्त की है—
संज्ञानं नो दिवा पशोस्संज्ञानं नक्तमर्वतः।
संज्ञानं नस्वेभ्यस्संज्ञानमरणेभ्यस्संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नियच्छतम्।
(पृ० १४०, श्रोयडरसंस्करण)

२. काठक संहिता (३७,१७)—धर्मेण त्वा धर्मं जिन्वेति धर्मो मनुष्या मनुष्येभ्य एव यज्ञं प्राहान्वितरसि (पृ० ९७, श्रोयडर-संस्करण)

३. साधुकर्मा शब्द, वा० सं० (८,४५) में प्रयुक्त है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दृष्टि से देखना इसी उदात्त उत्कर्षपूर्ण नीतिशास्त्र का बोधक है। "अग्ने नय सुपथा रायेऽस्मान्" इसी स्तर से सम्बद्ध है। एनस् से मुक्ति (वाज० सं० ३,४५) की कामना इसी स्तर पर होती है। इसी स्तर पर "पवित्रपते पवित्रपूतस्य" (वाज० सं० ४,४) प्रार्थना होती है और कवि कहता है—

परिमाग्ने दुश्चरितात् बाधस्वा मा सुचरिते भज। (वाज० सं० ४।२८)

चार प्रकार के एनस् का उल्लेख (वा० सं० ८,१३,) आता है—(क) देवकृत, (२) मनुष्यकृत (३) पितृकृत (४) आत्मकृत। यह भी प्रार्थना है कि जाने-अनजाने किये गये एनस् का अवयजन अर्थात् परिशमन हो जाय (८,१३)।

सभाकृत पापमोचन की प्रार्थना भी इसी द्वितीय स्तर के नीतिशास्त्र का द्योतन करती है—

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधिधर्मणि तस्यावयजनमसि।
(वा० सं० २०,१७)

जो ग्राम में, जो वन में, जो सभा में, जो इन्द्रिय में, जो शूद्र में, जो अर्य (वणिक्) में, जो किसीके अहित में, हमने पाप (एनस्) किया है, तुम उस पाप के मार्जक हो।

तृतीय स्तर, नीतिशास्त्र का, ईशोपनिषद् में, जो वाजसनेयी संहिता का चालीसवाँ अध्याय है, व्यक्त हुआ है, जहाँ कहा है कि समस्त भूतों से आत्मिक तादात्म्यसिद्धि से आत्ममोह और परकृत शोक का आत्यन्तिक अभाव हो जाता है। इस अवस्था में नैतिक द्वन्द्वों से त्रिगुणातीत हो मानव सिर्फ जीवन-धारण की बाहरी क्रियाएँ अनभिष्वङ्ग-रहित होकर करता है। स्पष्ट है कि शत्रुमित्र के द्वन्द्व इस स्तर पर समाप्त हो जाते हैं और राजनीतिशास्त्र परात्परवादी अध्यात्म में परिणत हो जाता है।

(७) शिवसंकल्पसूक्त का राजनीतिक तात्पर्य

वाजसनेयी संहिता के चौतीसवें अध्याय (३४,१-६) में मानव-मन की प्रभूत संस्तुति की गयी है। मन दूरगामी, प्रज्ञान, चेतस्, धृति, ज्योति, अन्तरमृत, अमृत, भूतवर्तमान-भविष्य का परिग्रहीता, हृदयस्थित, अजिर और जविष्ठ कहा गया है। विदथ में यज्ञकर्म इसीकी सहायता से होता है। ऋक्, साम और यजुः इसमें प्रतिष्ठित हैं। सप्त होता इसीसे यज्ञ-सम्पादन करते हैं। संक्षेप में, कह सकते हैं कि सुषारथि के समान मन यदि कार्य न करे तो कोई भी कर्म निष्पन्न नहीं हो सकता। जब मन इतना महत्त्वपूर्ण है, अपूर्व यक्ष है, ज्योतियों का भी ज्योति है और सारी प्रजा का चित्त जिसमें ओत है, तब इसका सामाजिक और राजनीतिक परिणाम अवश्य व्यक्त होगा। शिवसंकल्पयुक्त ऐसा अपूर्व मन राजन्यशक्ति के दम्भयुक्त कारनामों के सामने कभी नहीं झुकेगा। जिस प्रकार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यज्ञकर्म का यह महत्त्वपूर्ण साधन है उसी प्रकार सामाजिक और राजनीतिक कर्मों का भी होगा। दण्डधरों की अप्रतिहत गति का भी अपने सात्त्विक संकल्प से वह निरोध करने में समर्थ हो सकेगा। उसका शिवसंकल्प जनसाधारण के कल्याण की ही कामना करेगा। वह सर्वदा वासनात्मक चंचलता के बदले व्यवसायात्मिका बुद्धि की निर्णय-कारिणी प्रज्ञा को, जिससे विशः और राजा दोनों का कल्याण हो, व्यक्त करेगा। असत् के बदले शिव और कल्याण का वह संदेशवाहक होगा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्वादश अध्याय

अथर्ववेद और राजनीतिशास्त्र

अथर्व (अथ + ऋ + वनिप् = अथर्वन्) या अथर्वा किसी व्यक्ति का नाम[1] मालूम पड़ता है। वह अथर्वा अथर्ववेद का संग्रहकार या सम्पादक रहा होगा। ऐसा भी संभव है कि उसने कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्तों का प्रणयन किया हो। जेन्द भाषा में अथर्व शब्द का मिलना इसकी प्राचीनता को सिद्ध करता है। अथर्ववेद को आथर्वाङ्गिरस भी कहते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से अथर्ववेद को पूर्वीभारत से सम्बद्ध मान सकते हैं। अथर्ववेद (५, २२, ७, १४) में मूजवत्[2], बाल्हिक, गान्धार, अंग और मगध[3] का उल्लेख यह सूचित करता है कि राजनीतिक क्षेत्र का, ऋग्वेद और यजुर्वेद के काल की अपेक्षा, प्रभूत विस्तार हो गया था। असित, कश्यप और गय का नामोल्लेख है (अथर्व० १,२४,४), किंतु इनकी ऐतिहासिकता स्पष्ट नहीं है। ऐसा भी उल्लेख है कि ब्राह्मण की गाय खाने के कारण वैतहव्योंका पराजय हुआ (अथर्व ५,१८,१०)। अन्यत्र उल्लेख है कि भृगु को मारने के कारण सृञ्जय वैतहव्यों का पराजय हुआ (अथर्व० ५,१९,१)।

अथर्ववेद की ९ संहिताएँ (शाखाएँ) उल्लिखित हैं—

१. शौनकीय
२. पैप्पलाद
३. तौद या तौदायन
४. मौद या मौदायन
५. जाजल

---

१. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। ऋ० ६,१६,१३

: : : : : : : : :

तमुत्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। ऋ० ६,१६,१४

२. तक्मन् मूजवतो गच्छ बाल्हिकान् वा परस्तराम्
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि॥ (५,२२,७)

३. गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि॥ (५,२२,१४)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

६. जलद (जलदायन)
७. ब्रह्मवद की (शाखा)
८. देवदर्श या देवदर्शिन् की (शाखा)
९ चारण वैद्य ।

कृत्या, मायात्मक कर्म, अभिचार, जादू-टोना आदि के अनेक उल्लेख[1] अथर्ववेद में वर्णित धार्मिक विश्वासों के कारण, अथर्ववेद को, एक प्रकार से कालगत दृष्टि से, ऋग्वेद[2] का भी पूर्ववर्ती बताते हैं, किन्तु भाषा की दृष्टि से ऋग्वेद की अपेक्षा यह वेद पर्याप्त नवीनतर है। पौरोहित्य की बढ़ती हुई अधिकारलिप्सा के समर्थन में भी, अथर्ववेद, यजुर्वेद की संहिताओं की अपेक्षा भी, नवीनतर है। याज्ञिकों के समर्थन में इसके तर्क एक अंश तक पुराणों की याद दिलाते हैं. जैसे, यह कथन कि देवबन्धु ब्राह्मण को मारने वाला पितृयाण-मार्ग से लोक को नहीं जाएगा—यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमन्वेति लोकम् (अथर्व० ५,१८,१३)

आदित्या रूद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः। अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः (अथर्व० ११,६,१३), मन्त्र में "अथर्वाणः" और "अङ्गिरसो" का अलग-अलग उल्लेख है। गोपथब्राह्मण (१,१०) में "पञ्च वेदान्" के नाम यों बताये हैं—सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद और पुराणवेद। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अथर्ववेद और इतिहासवेद को वेद की संज्ञा दी है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (१,५) में यह भी कथन है कि नरपति, दैवी और मानुषी आपदाओं के अथर्ववेदोक्त उपायों से प्रतिकर्ता को, पुरोहित नियुक्त करे।" इस प्रकार अथर्ववेद का राजनीतिक वैशिष्ट्य प्रकट है। अन्यत्र भी नीतिशास्त्रों में वचन है—

त्रय्यां च दण्डनीत्यां च कुशलः स्यात् पुरोहितः।
अथर्वविहितं कर्म कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम्।

मत्स्यपुराण में उपदेश है कि पुरोहित अथर्वसंहिता और ब्राह्मण में दक्ष हो। मार्कण्डेयपुराण के अनुसार अथर्वमंत्राभिषिक्त नरपति सागरपर्यन्ता मही का शासन करता है।

---

१. अथर्ववेद के अभिचारात्मक रूप के कारण ही "सुत्त निपात," "तुवट्टक-सुत्तं" में खण्डनात्मक भाषा में कहा है—
"आथब्बणं सुपिनं लक्खणं, नो विदहे अथोपि नक्खत्त"।

२. य आर्जीकेषु कृत्वसु (ऋ० ९,६५,२३) में हिलेब्राण्ट के अनुसार कृत्व शब्द आर्जीकों में जादू-टोना का प्रयोग होना बताता है। आर्जीकेषु देशवाची शब्द है। अथर्ववेद, ४,१८,१ (कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः) में कृत्वन् (= स्त्रीलिङ्ग, कृत्वरी) शब्द जादू-टोना (magic) के अर्थ में प्रयुक्त है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विष्णुपुराण में वचन है कि नृपतियों का पौरोहित्य, शान्तिक, पौष्टिक और ब्रह्म-कर्म अथर्ववेद से करावे।[१]

भाषा की दृष्टि से अथर्ववेद, सामवेद और यजुर्वेद से नवीनतर प्रतीत होता है, किन्तु अभिचार, मणि, जादू-टोना आदि का अत्यन्त प्रचुर मात्रा में वर्णन, वैचारिक दृष्टि से, इसे जनसमूह का धर्मकाव्य बताता है। किन्तु जनता में व्याप्त विश्वासों के आधार पर या उनके विषय में, पुरोहितों और कवियों द्वारा प्रणीत काव्यांश इसमें हैं। जनता के जादू-टोना से जनगीत या सम्बद्ध ग्राम्य गीत उसी रूपमें इसमें नहीं मिलते हैं। ऋग्वेद, ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है, किन्तु, अथर्ववेद, राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से अधिक महिमगर्भित है। वैदिक राजनीतिक विचारों का इसमें उल्लेखनीय प्रकटीकरण हुआ है। पृथिवीसूक्त रागात्मिका धर्मसंश्रित देशभक्ति का वर्णन ओजस्विनी भाषा में करता है।

अथर्ववेद के मन्त्रों का, प्रयोग की दृष्टि से, यों वर्गीकरण किया जा सकता है—

१. भैषज्यानि (उपचार के लिये)
२. आयुष्याणि
३. आभिचारिकाणि
४. कृत्या-प्रतिहरणानि
५. स्त्रीकर्माणि
६. राजकर्माणि
७. सौमन्नस्यानि
८. पुष्ट्यर्थानि
९. प्रायश्चित्तानि
१०. ब्रह्मविद्याविषयकाणि
११. रोहितकाण्डमन्त्राः
१२. व्रात्यकाण्डमन्त्राः
१३. गृद्धसंस्कारमूलक मन्त्राः
१४. कुन्ताप सूक्तम्

अथर्ववेद में राजकर्म-विषयक अनेक प्रकरण हैं और अगले पृष्ठों में उनकी व्याख्या की जायगी।

---

१. अथर्वपरिशिष्ट की उक्ति विचारणीय है—
यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः।
निवसत्यपि तद् राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम् ॥
तस्माद् राजा विशेषेण अथर्वाणं जितेन्द्रियम्।
दानसंमानसत्कारै नित्यं समभिपूजयेत् ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१ सजातश्रैष्ठ्य (अथर्व० १,९)

ये निम्नलिखित चार मन्त्र अपरुद्ध राजा के पुनः स्थापन[१] और वर्चस् एवं शक्ति की प्राप्ति, तथा नक्षत्रकल्प (१७) के अनुसार शक्ति के दो कर्म—अर्थात् ऐरावती (ऐरावतीं गजकक्ष्ये) और बार्हस्पती (बार्हस्पत्यां राज्यश्रीब्रह्मवर्चस कामस्य) में प्रयुक्त होते हैं। इनका राजनीतिक आशय भी स्पष्ट है—

अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिञ् ज्योतिषि धारयन्तु ॥१॥

इस (पुरुष) में वसुगण, इन्द्र, पूषन्, वरुण, मित्र, और अग्नि, धन धारण करावें। आदित्य और विश्वदेव इसे उत्तर ज्योति में धारण करावें ॥१॥ वृञ् + उनन् = वरुण। निग्रह करने के लिए रात्रि-देव वरुण जगत् को पाशजाल से व्याप्त करता है (सायण)। मित्र देव, मरण से त्राण करता है और वह सभी जन का मित्र है (सर्वजन मित्रत्वात्-सायण)।

अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम्।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधिरोहयेमम् ॥२॥

देवो ! इसके प्रदिश् (अनुशासन) में ज्योतिः, सूर्य, अग्नि अथवा हिरण्य रहे। इसके शत्रु नीचे (उपक्षीण) हों, उत्तम स्थान पर इसका आरोहण कराओ ॥२॥ प्रदिश् = प्रदेशन, प्रशासन, आज्ञा (सायण)।

येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥३॥

हे जातवेदस् अग्नि, जिस उत्तम ब्रह्म (शक्ति) से तुम इन्द्र के लिये पयस् पेय (दुग्ध अथवा सोमरस) लाये हो, उसीसे, हे अग्ने, इसका यहाँ वर्धन करो, (और) सजातों में इससे श्रेष्ठता धारण कराओ ॥३॥ सायण ने ब्रह्म का अर्थ मंत्र किया है। इस मंत्र में ज्ञातियों के बीच उत्कृष्टता के लिये प्रार्थना है। प्रशस्य + इष्ठन् = श्रेष्ठ। श्रेष्ठ + ष्यञ् = श्रैष्ठ्य।

एषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥

हे अग्ने, इनका (शत्रुओं का) यज्ञ और वर्चस्, इनकी रयि, पोष और चित्त मैं ले लेता हूँ। इसके शत्रु नीचे हों, उत्तम स्थान पर इसका आरोहण कराओ ॥४॥ वर्चस् = राज्यादिनिमित्त शत्रुसम्बन्धी तेज (सायण)।

२. ब्रह्मवर्म (ब्रह्म आन्तर वर्म है, अथर्व० १/१९)

मा नो विदन् वि व्याधिनो मा अभिव्याधिनो विदन्।
आराच्छरव्या अस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय ॥१॥

---

१. सायण ने लिखा है—तथा शत्रुणा राष्ट्रात् प्रच्यावितस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्र-प्रवेशार्थम्। कौशिकसूत्र में वचन है—"अस्मिन् वस्विति राष्ट्रावगमनम्…।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

छेदनेवाले और अन्तःप्रवेश करने वाले, हमलोगों को न पा सकें। ऐ इन्द्र, विकीर्ण होते हुए शरव्य हमसे बहुत दूर गिरें ॥१॥

विश्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ॥२॥

हमसे दूर हटते हुए शर गिरें, जो धनुष् से विनिर्मुक्त हैं और जो क्षेपणीय हैं। मनुष्यों के दिव्य शर, हमारे शत्रुओं को बींधें (मार) डालें ॥२॥ सायण ने दैवी से देव-संबन्धी आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र आदि का ग्रहण किया है।

यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति।
रुद्रः शरव्यैतान् ममामित्रान् विविध्यतु ॥३॥

जो हमारा ताड़न करता है (अभिदासति), चाहे वह हमारा अपना ज्ञाति, अथवा शत्रु अपरिचित हो, सजात हो अथवा बाहर का—निष्ट्य—इन मेरे अमित्रों को रुद्र, शरव्यों से बींध डाले ॥३॥ सायण के अनुसार हिंसक आयुधों के संग्रह को शरव्यों से बींध डाले ॥३॥ सायण के अनुसार हिंसक आयुधों के संग्रह को शरव्य कहते हैं। (ह्वीट्ने के अनुसार अथर्ववेद का सायणकृत भाष्य सचमुच सायण का बनाया है या नहीं, यह विवादग्रस्त है।) निष्ट्य का अर्थ सायण के अनुसार निकृष्टबल या निर्गतवीर्य है। सजात का अर्थ है समानजन्मा अथवा समबल।

यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषञ् छपाति नः।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥४॥

चाहे शत्रु अथवा अशत्रु, जो भी द्वेषकारी हमें शाप देगा, सारे देवगण उसे कष्ट दें (धूर्वन्तु)। ब्रह्म ही मेरा आन्तरिक रक्षक है ॥४॥ धूर्वन्तु = हिंसन्तु (सायण)। ब्रह्म का अर्थ सायण ने प्रयुज्यमान मंत्रजाल किया है। शत्रुकृत वाक् शस्त्रादि हमारा स्पर्श न कर सकें, क्योंकि, यह मन्त्र व्यवधायक वर्म (कवच) होकर हमारी रक्षा करे (सायण)।

यहाँ ब्रह्म को आन्तर रक्षक मानना इस बात का सूचक है कि तपस्या और शाप को आयुधास्त्रों से भी अधिक महत्त्व देने का विचार, अथर्ववेद में, प्रतिपादित हो रहा था।

३. सपत्नक्षयण अभिवर्तराष्ट्रमणि

कौशिक सूत्र के अनुसार अथर्ववेद (१, २९) के निम्नलिखित चार मन्त्रों का, राजा के पुनः संस्थापनार्थ कर्म में विनियोग है। अभीवर्तेनेति रथनेमिमणिमयः सीसलोहरजतताम्र वेष्टितं हेमनाभि वासितं बध्वा वा सूत्रोतं बर्हिषि कृत्वा संपातवन्तं प्रत्यृचं भृष्टीर-भीवर्तोत्तमाभ्यामाचष्टे (कौशिक २, ७, २९, पृ० ४४ ब्लूमफील्ड-संस्करण) अर्थात् रथ—चक्रनेमि मणि को बना, लोहा, सीसा, कृष्ण लोहा, चाँदी और ताबें से युक्त सुवर्णनाभिको बाँधे—अभिवर्त और उत्तमा से बाँधे।

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभिराष्ट्राय वर्धय ॥१॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अभीवर्त (बढ़ते हुए) मणि से, जिससे इन्द्र का अभिवर्धन हुआ था, उससे, ओ ब्रह्मणस्पते ! हमलोगों को राष्ट्र के लिये बढ़ाओ। अभीवर्त = सर्वत्र स्वराष्ट्र और पर-राष्ट्र में वर्तनसाधनभूत (सायण)। पुरुष अप्रतिहत गति से सर्वत्र, इस मणि से, विचरण करता है, अतः इसे अभीवर्त कहते हैं।

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥२॥

हमारे शत्रुओं पर, उनके ऊपर, जो हमारे प्रति दुष्टभावपूर्ण (अरातयः) हैं, जो युद्ध करता है (अभिपृतन्यन्तम्) और जो हमें अपमानित अथवा वाक्पारुष्यविद्ध करता है, बढ़ते हुए उसके ऊपर बैठो ॥२॥ अराति = राष्ट्र, धन आदि का अपहरण कर शत्रुवत् आचरण करने वाला (सायण)। दुरस्यति = जो अभिचारादि कर्म करे (सायण)। पृतना = सेना। अभिपृतन्य = सेना लेकर सम्मुख युद्ध करना।

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

तुम्हें देव सविता (और) सोम ने बढ़ाया है, तुम सर्वदा बढ़ते रहो, इसलिये समस्त भूतों ने (तुम्हें बढ़ाया है अर्थात समृद्ध किया है) ॥३॥

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयो मणिः।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥४॥

वर्धनशील, जयिष्णु, शत्रुनाशक मणि, मुझसे, राष्ट्र के लिये, बँधा रहे, जिससे अरियों का पराभव हो ॥४॥

उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः।
यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५॥

सूर्य ऊपर उठ गया, मेरी यह वाणी (वचः) भी ऊपर गई, जिससे, हे शत्रुहन् ! मैं (अभीवर्तमणियुक्त) शत्रुहन्ता, निःसपत्न, सपत्नहन्ता बनूं ॥५॥

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥६॥

मैं सपत्नहन्ता वृषभ, अभिराष्ट्र, विजयी बनूं, मैं इन वीरों पर और जन के ऊपर विराजित (विराजानि) होऊँ ॥६॥ विराजानि = नियन्ता बनूं (सायण)। राज् धातु ऐश्वर्यकर्म में प्रयुक्त होता है। अभिराष्ट्र = स्वराष्ट्र और परराष्ट्र को जो अधिपतिरूप से प्राप्त करे (अभिगतः अधिपतित्वेन प्राप्तः—सायण)।

अथर्ववेद में कूटयुद्ध के समर्थक निम्नलिखित निर्देश, यथार्थवाद का वेगपूर्ण प्रकटीकरण करते हैं—

(१) मणियों (कवच) का उपयोग (अथर्व० ३,३)

(२) अग्नि से शत्रुओं की आँख निकालने की प्रार्थना (अथर्व० ३, ३, ६)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(३) अभिचार या वशीक्रिया (sorcery) (अथर्व० ३, ४६)
(४) अश्वत्थ का युद्ध-विजय में उपयोग (अथर्व० ४,१९)
(५) मन्त्रमोह या सम्प्रयोगात्मक चित्रकर्म (Incantations) (अथर्व० १०,५)

(४) अमित्र-सेना-मोहन, चक्षुष्-अपहरण और विनाश (अथर्व० ३, १)

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥

विद्वान् अग्नि हमारे शत्रुओं के प्रतिकूल जाय, दुष्टवाचक (अभिशस्ति = हिंसक-सायण) और दुश्मन (अराति) को दग्ध करते हुए। हमारे शत्रुओं की सेना को वह मोहग्रस्त कर दे। जातवेदा अग्नि उन्हें हस्तहीन कर दे ॥१॥ शत्रुओं को हस्तहीन करने की कामना इसलिये की है कि वे आयुधग्रहण में असमर्थ हो जायँ। सायण ने अराति का अर्थ श्रेयो-विघाती शत्रु किया है।

यूयमुग्रा मरुत इदृशे स्थाभिप्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्हर्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥२॥

हे मरुतो ! तुमलोग इस कुस्थिति (अर्थात् संग्राम) के लिये उग्र हो, आगे बढ़ो, मारो, आक्रान्त करो। वसुओं ने उन्हें मार डाला है, अनुरक्त (नाथिता) ये (वसु) हैं, विद्वान् अग्नि, इनका दूत, प्रतिकूल जाय ॥२॥ नाथिताः का अर्थ, जय के लिये प्रार्थित, सायण ने किया है।

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ् छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥३॥

हे मघवन् इन्द्र, शत्रुओं की सेना, जो हमारे साथ वैरी का बर्ताव कर रही है—वृत्रहन्ता इन्द्र और अग्नि, तुम दोनों उन्हें जलाओ ॥३॥

प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्रते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक्सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ॥४॥

तुम्हारे दोनों घोड़ों द्वारा आगे ले जाये गए—तुम्हारा वज्र शत्रुओं का वध करते हुए आगे आये—आगे आते हुओं को, अनुसरणकारियों को, भागते हुओं को, जान से मार डालो—इनके सत्य चित्त को विकीर्ण कर डालो ॥४॥

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो विनाशय ॥५॥

ओ इन्द्र, हमारे अमित्रों की सेना को मूढ़ बनाओ। अग्नि, वायु की ध्राज्या (आक्रामक वेग) से उन्हें विकीर्ण करते हुए, विनष्ट करो ॥५॥ ध्रज् + औणादिक इञ् = ध्राज्या। इसका अर्थ है दहनकर्म की वेगगति।

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वौजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इन्द्र, सेना को मूढ़ कर दे, मरुत् ओज से मार डालें, अग्नि आँख निकाल ले, पराजित होकर, यह (सेना) लौट जाय ॥

(५) शत्रु-प्रतिमोहन और प्रतिदहन (अथर्व०. ३।२)

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥

हमारा दूत, विद्वान् अग्नि (इनके) प्रतिकूल जाय, दुर्वाचक और दुश्मन (अराति) को दग्ध करते हुए। हमारे सपत्नों के चित्तों को वह मुग्ध कर दे। जातवेदा अग्नि उन्हें हस्तहीन कर दे ॥१॥

अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥२॥

तुमलोगों के हृदय में जो चैतसिक संकल्प (चित्तानि) हैं, उन्हें इस अग्नि ने मुग्ध कर दिया है। हमारे सद्म से तुम्हें फूंक कर बाहर कर दे (विधमतु)—सर्वत्र वह तुम्हें फूंक दे ॥२॥

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नधाकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो विनाशय ॥३॥

हे इन्द्र, उनके चित्तों को मुग्ध करते हुए (उनके) संकल्प के साथ आगे बढ़ो। अग्नि, बात (वायु) की ध्राज्या (आक्रामक वेग) से, इन्हें विकीर्ण कर दो, विनष्ट करो ॥३॥

व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत ।
अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥४॥

इनके संकल्प, यहाँ से बाहर जायँ, इनके चित्त मुग्ध हो जायँ, जो आज इनके हृदय में है, उसे मार कर बाहर निकालो। निर्जहि का अर्थ है सर्वतः नाश करो।

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकै र्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् ॥५॥

ओ अप्वे ! उनके चित्तों को प्रतिमुग्ध करती हुई, उनके अंगों को पकड़ती हुई, दूर जाओ। प्रतिकूल जाओ, शोक से उनका हृदय जलाओ, शत्रुओं को ग्राहि से, अरि को अन्धकार से बेध डालो ॥५॥ सायण के अनुसार अप्वा पाप-देवता है। वह सुख और प्राणों को दूर या नष्ट करती है (अपवातयति अपगमयति), इसलिये उसका नाम अप्वा है। यास्क के अनुसार अप्वा बीमारी या भय को कहते हैं।

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानेत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥६॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हमारे शत्रुओं की वह सेना, ओ मरुद्गण ! जो, ओज से, स्पर्धा करती हुई हमारे प्रतिकूल आती है—इसे अपव्रत अंधकार से ऐसे बेध डालो, जिससे वे एक दूसरे को न जानें ॥६॥ अपव्रतेन = अपगतकर्मणा सर्वविघातकेन (सायण)। अपव्रत अंधकार का यह तात्पर्य हुआ कि शत्रुओं के बीच इतना अन्धकार हो जाय कि एक दूसरे को न जाने।

(६) अपरुद्ध (निर्वासित) राजा का पुनः स्थापनीकरण (अथर्व०, ३।३)

कौशिकसूत्र के अनुसार, जिस राजा को राष्ट्र से निकाला गया है, उसमें, पुनः उसका प्रवेश कराने के लिये शत्रु-सेना के आकार वाले पुरोडाश को, जल में दर्भ फैलाकर, उन पर रक्खे। इस सूक्त से, क्षीरौदन को संपादित कर, स्वराष्ट्र में प्रवेशार्थ राजा को बुला, प्राशन करावे।

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ॥१॥

उसने शोर किया है, वह यहाँ अपना पालक बने (स्वपा)। हे अग्ने, द्यौः और पृथ्वी को अलग मोड़ो (व्यचस्व)। सर्वज्ञ (विश्ववेदस्) मरुद्गण तुम्हें युक्त करे। नमस्कार के साथ, हव्यप्राप्त को (दत्तहविष्क राजा को) तुम यहाँ आगे ले आओ। सायण के अनुसार स्वराष्ट्र से प्रच्युत राजा के स्वराष्ट्रप्रवेश के विषय में यह मंत्र है। स्वपा = स्वराष्ट्र में स्वप्रजा का पालक अथवा सुकर्मा (सायण)। सायण के अनुसार मरुतों की संख्या ४९ है।

दूरे चित् सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम्।
यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ॥२॥

मेधावी (विप्र) इन्द्र यदि दूर भी हो तो, हे अरुणवर्णो (अरुणास), उसे यहाँ (राजा से) मैत्री के लिये गतिशील करें। जब देवगण ने, सौत्रामणी यज्ञ में गायत्री, बृहती, अर्क को इसके लिए उत्साहित किया है (दधृषन्त)। गायत्री आदि छन्दों से इन्द्र को अतिशय बलवान् बनाया गया है। अरुणासः का अर्थ सायण के अनुसार प्रदीप्त ऋत्विक् है। लुडविग के अनुसार इसका अर्थ सोम है।

अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः।
इन्द्रस्त्वा हवयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥३॥

राजा वरुण जल के लिए तुम्हारा आह्वान करे, पर्वतों के लिए सोम तुम्हारा आह्वान करे, विशः के लिए इन्द्र तुम्हारा आह्वान करे, श्येन (घाती बाज पक्षी = नील-पिच्छ) होकर इन विशों में दौड़ कर आओ। सायण के अनुसार अन्यों द्वारा अपरुद्ध राष्ट्र राजा के तीन स्थान हैं—समुद्र (जल), पर्वत अथवा देशान्तर। इन तीनों स्थानों से ऐसे राजा का स्वराज्य में प्रवेश कराने के लिए यह मन्त्र है। श्येन पक्षी आक्रामक, शीघ्रगामी और शत्रुओं से अप्रधृष्य होता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम्।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ॥४॥

दूर से, जो बुलाया जानेवाला है (हव्य), (उसे), जो अन्य क्षेत्र में अपरुद्ध (निर्वासित) हो विचरण कर रहा है, श्येन यहाँ ले आवे। अश्विद्वय पन्थ को सुगम करें। ओ सजातपुरुषो! उसके पास बैठ जाओ। अपरुद्ध = शत्रुओं से निरुद्ध (सायण)। समानजन्मा (सजाता) बन्धुओं से आग्रह है कि पुनः स्वराष्ट्र में आये राजा से मिलकर (सायण) कार्य करें।

ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रतिमित्रा अवृषत।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥५॥

तुम्हारे शत्रु तुम्हें बुलावें, तुम्हारे मित्रों ने तुम्हारा वरण किया है (अवृषत)। इन्द्र और अग्नि तथा विश्वेदेवों ने तुम्हारे लिए विशः के बीच क्षेम धारण किया है।

यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्यः।
अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ॥६॥

सजात, या बाहरी (निष्ट्यः), जो तुम्हारा बुलाना विवादग्रस्त करता है—हे इन्द्र, उसे दूर हटाओ—इस पुरुष को यहाँ पुनः स्थापित (अवगमय) करो।

(७) "विश : वृणतां राज्याय"—राजा के चुनाव के मंत्र (अथर्ववेद ३, ४)।

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ्विशां पतिरेकराट् त्वं विराज।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥

(हे राजन्,) तुम में राष्ट्र आ गया है, वर्चस् के साथ आगे बढ़ो, तुम जनता के पति (विशांपतिः), एकराट् हो और विराजमान होओ। हे राजन्। सारी प्रदिशाएँ तुम्हें, पुकारें। तुम उपसद्य (समीप जाने योग्य) और नमस्करणीय बनो।

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥२॥

तुम्हें विशः (प्रजा) राज्य के लिए चुनें,, ये पांच दिव्य दिशाएँ (भी चुनें), राष्ट्र के उच्च स्थान और उत्कृष्ट स्थान (ककुद्) पर टिको। (राजन) उग्र हो, वहाँ से हमें धन प्राप्त कराओ। ग्रिफिथ ने विशः का अनुवाद tribesmen और उग्र का अर्थ mighty man शक्तियुक्त मानव किया है। छठे मंत्र (अथर्व० ३, ४६) के अनुवाद में ग्रिफिथ ने विशः का अनुवाद clansmen किया है।

अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निदूतो अजिरः सं चरातै।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥३॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तुम्हारे साथी तुम्हें पुकारते आवें, अग्नि शीघ्रगामी दूत के समान जाय, पत्नियाँ और पुत्रगण कल्याणेच्छु हों, तुम उग्र हो (और) बहुत बलि को आता हुआ देखोगे ॥३॥

अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु ।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥४॥

पहले अश्विद्वय, मित्र-और-वरुण, विश्वेदेव, मरुद्गण तुम्हें पुकारें, अनन्तर अच्छी वस्तुओं के दान में मन लगाओ, उग्र (राजन्), वहाँ से हमें धन प्राप्त कराओ।

आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।
तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ॥५॥

अत्यन्त दूर स्थान से दौड़ते आओ, द्यौः और पृथ्वी दोनों तुम्हारे लिए कल्याणकारी (शिवे) रहें, वरुण राजा ने यहाँ ऐसा कहा, उसने तुम्हें यहाँ बुलाया है, (अतः) यहाँ आओ।

इन्द्रेन्द्र मनुष्याऽ३ः परेहि संह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः ।
स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ॥६॥

मनुष्य-इन्द्र के समान चले जाओ, क्योंकि वरुणों के साथ तुम्हारा ऐकमत्य है, अपने स्थान पर उसने तुम्हें बुलाया है, वह देवताओं के लिये यज्ञ करेगा और विशः को कल्पित (वर्गीकृत) करेगा।

पथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः सङ्गत्या परीयस्ते अक्रन् ।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ॥७॥

धनयुक्त, बहुप्रकारक, विविधरूप सभी मार्गों ने इकट्ठे होकर तुम्हारे लिये चौड़ा स्थान बनाया है, वे सभी एकमति (संविदानाः) होकर तुम्हें पुकारें, सौ वर्ष तक (दशमीम्), उग्र राजन् ! सुमना होकर तुम रहो।

(८) राष्ट्राभीवर्गवाद, उपस्तिकरण और तनूपान क्षत्रद पर्णमणि (अथर्व०, ३,५)

आयमगन् पर्णमणिर्बलो बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान् ।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् ॥१॥

बली, बल से सपत्नहन्ता, पर्णमणि यहां आया है, देवों का ओज, ओषधियों का दुग्ध, यह, मुझे निरन्तर वर्चस् से अनुप्राणित करे।

मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥२॥

पर्णमणे, मुझमें क्षत्र, मुझ में रयि धारण कराओ, राष्ट्र के अभीवर्ग में निज (परिचित) और उत्तम बनूँ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवा प्रियं मणिम्।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥३॥

जिस प्रिय मणि को देवों ने वनस्पति में, गुह्य रूप में स्थापित किया,—उसे देवगण, धारण करने (पहनने) के लिए हमलोगों को दें, आयुष्य के साथ।

सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥४॥

इन्द्र के द्वारा दिया गया और वरुण के द्वारा शिष्ट (शासित) सोम की उग्र शक्ति पर्ण आया है। शत शरदृतुओं (वर्षों) की दीर्घ आयु के लिए, उसको मैं, बहुप्रभाशील हो पहनूँ ॥४॥

आ मारुक्षत् पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ॥५॥

पर्णमणि, बड़े हानिराहित्य के लिए, मेरे ऊपर आरूढ़ हो गया है, जिससे मैं अर्यमा और संवित् (मित्र) में श्रेष्ठ बनूँ (उत्तरोऽसानि)।

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥६॥

हे पर्णमणे, जो चतुर रथकार हैं, मनीषी कर्मार हैं—जो सर्वत्र जन हैं उन सबों को मेरे अधीनस्थ (उपस्तीन्) बनाओ ॥६॥ ग्रिफिथ ने मन्त्रार्ध का अर्थ किया है—सभी ओर के (अभितो जनान्) सभी मनुष्यों को (सर्वान्) मेरा आज्ञाकारी (उपस्तीन्) बनाओ।

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥७॥

जो राजा हैं, राजकृत हैं, रथवाहक (सूत) और ग्रामनेता (या सेना की टुकड़ी के नेता) (ग्रामणी) हैं—जो सर्वत्र जन हैं, उन सभी को मेरा अधीनताग्रस्त (उपस्तीन) बनाओ।।७॥ ग्रिफिथ के मत में, वैदिक युग में, सूतों का, जो राजकीय कर्मचारी थे, प्रभूत राजनीतिक महत्त्व था।

पर्णोऽसि तनूपानः सयोनि वीरो वीरेण मया।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ॥८॥

पर्णमणि, तुम शरीररक्षक वीर, एक ही योनि से मेरे साथ (उत्पन्न) वीर हो। संवत्सर के तेज के साथ, हे मणे, उससे तुम्हें बाँधता हूँ ॥८॥

(९) विजयमंत्र और इषु (अथर्व०, ३,२६,२७)

इन सूक्तों में छः दिशायें, छः प्रकार के देव और अधिपति, और छः बाणरूप से परिगृहीत वस्तुओं का नाम मिलता है और मृडा (प्रसन्नता) के लिए प्रार्थना की गयी है। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से वैराज शब्द महत्त्वपूर्ण है। छः प्रकार के बाणों की कल्पना भी युद्धोपयोगी कारक का महत्त्वाभिज्ञापन है—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(क)

दिशा	देव	बाण
१. प्राची	हेती (Weapons)	अग्नि
२. दक्षिणा	अविष्यु (Eager)	काम
३. प्रतीची	वैराज (Radiant)	आपः
४. उदीची	प्रविध्यन् (Piercers)	वात
५. ध्रुवा	निलिम्पक (संभवतः निलिम्प का अर्थ है, चाटने वाला अथवा गन्दा करने वाला, लौकिक अर्थ-देवता)	ओषधि
६. ऊर्ध्वा	आवस्वन् (Yearners)	बृहस्पति

(ख)

दिक्	अधिपति (regent)	रक्षिता (warden)	बाण
१. प्राची	अग्नि	असित	आदित्य
२. दक्षिणा	इन्द्र	तिरश्चिराजी (tha serpent with transverse streaks)	पितृगण
३. प्रतीची	वरुण	पृदाकू	अन्न
४ उदीची	सोम	स्वज	अशनि
५. ध्रुवा (नीचे)	विष्णु	कल्माषग्रीव (रंगीन-गर्दनवाला spotty neck)	वीरुध
६. ऊर्ध्वा	बृहस्पति	श्वित्र (श्वेत सर्प)	वर्ष

(१०) सांमनस्यात्मक साम्यवाद (अथर्व०, ३।३०)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१॥

सहृदयता, सांमनस्य, द्वेषराहित्य, तुमलोगों के लिए करता हूँ, जैसा अघ्न्या (गाय) सद्योजात बछड़े के लिए करती है, वैसा पारस्परिक स्नेह प्रकट करो (अभिवर्यत) ॥१॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवान् ॥२॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पुत्र पिता का अनुव्रत हो, माता के साथ सामञ्जस्य (रक्खे)। पत्नी पति से मधु-संपृक्त शांतिदायिनी वाणी बोले ॥२॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३॥

भाई भाई से द्वेष न करे और बहन बहन से। सम्यक् और सव्रत होते हुए भद्रता-पूर्वक वाणी बोलो ॥३॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥४॥

जिस ब्रह्म के कारण देवगण पृथक् नहीं होते और पारस्परिक द्वेष नहीं करते, उसको (ब्रह्म) हम तुमलोगों के सद्म में करते हैं। पुरुषों के लिए संज्ञान हो ॥४॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥५॥

ज्येष्ठों के साथ रहते हुए, चित्तवान्, साथ संराधना करते हुए, सामूहिक परिश्रम कर विचरण करते हुए (सधुराश्चरन्तः) तुमलोग फूट न डालो। परस्पर प्रेमपूर्वक बोलते हुए (वल्गु वदन्तः) आओ। मैं तुम्हें संयुक्त (सध्रीचीनान्) और सांमनस्ययुक्त बनाता हूँ ॥५॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥६॥

तुमलोगों का पेयस्थान या पीना (प्रपा) समान हो, तुम लोगों का भोजन समान हो, एक ही बन्धन (योक्त्र) में मैं तुम्हें साथ जोतता हूँ, संयुक्त रहते हुए अग्नि का सेवन (सपर्यत) करो, जैसे रथनाभि के चारों ओर अर (आड़ी-तिरछी लकड़ियाँ) रहते हैं[२] ॥६॥

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥७॥

मैं तुमलोगों को संयुक्त, समान मन वाला, एकगुच्छेवाला (एकश्नुष्टीन्) शांत-मन्त्रणा (संवननेन) से करता हूँ। जैसे देवता अमृत की रक्षा करते हैं, वैसा तुमलोगों का सायंप्रातः सौमनस्य हो ॥७॥ मन्त्रार्ध का अर्थ ग्रिफिथ ने यों किया है—With binding charm I make you all united, obeying one sole leader and one minded.

---

१. आयुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम। (अथर्व० ६,४७,१)
एक साथ खाने वाले हों और आयुष्मान् हों।

२. ग्रिफिथ ने इस मन्त्र का यों अनुवाद किया है—
Let what you drink, your share of food be common together, with one common bond I bind you.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आजकल राजनीतिशास्त्र में राजनीतिक समाजीकरण Political socialization) की चर्चा है। इस सन्दर्भ में, यह सूक्त ओजिस्विनी-वाणी में राजनीतिक सौहार्द, सहानुभूति, सव्रतता, सम्यक् व्यवहार, संवनन, संज्ञान आदि की महत्ता व्यक्त करता है। यह भोगश्रित वैयक्तिक तुष्टि के स्थान पर, अन्नभाग (Food materials) में औचित्य के अनुप्रवेश का आकांक्षी है और इस प्रकार सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को एकश्रुष्टि (एक गुच्छा) के समान बनाना चाहता है। अतः कह सकते हैं कि व्यक्तिवादाश्रित उदारवाद और लोकतंत्र को सामष्टिक चैतन्य और सांमनस्य के द्वारा अनुप्राणित कर पारस्परिक द्वेष को हटाना चाहता है।

११. सिंह-व्याघ्रोपम अधिपति का राजसूय (अथर्व० ४।८)

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् ॥१॥

भूत प्राणियों में पयस् धारण करता है, वह, प्राणियो का अधिपति[१] हो गया है। मृत्यु उसके राजसूय[२] में आता है, वह राजा, इस राज्य का अनुमनन करे ॥१॥ ग्रिफिथ ने भूत का अर्थ किया है Being अथवा दिव्य सत्ता।

अभिप्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा।
आतिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥२॥

यहाँ आओ—भागो मत (माप वने), उग्र, चेत्ता, शत्रुहन्ता के समान हे मित्रवर्धन, यहाँ आओ, देवगण तुम से बातें करेंगे या आशीर्वाद देंगे ॥२॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ् छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥३॥

उसके पास जाकर सभी ने उसका स्वागत किया (परि-अभूषन्)। श्री को धारण करता हुआ वह, आत्मज्योति (स्वारोचिष्), चलता है। वीर्यवान् असुर का नाम महान् है, वह विश्वरूप, अमृत पुरुषों के पास गया ॥३॥ ग्रिफिथ के अनुसार अन्तिम मन्त्रपाद का तात्पर्य है कि अभिषिक्त राजसूययज्ञकर्ता नरपति ने अमृत शक्तियाँ (Immortal powers) प्राप्त कीं।

व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥४॥

---

१. अधिपति—Oberherr.

२. राजसूय—Konigsweihe। सायण (अथर्व०, ११,७,७) के अनुसार राजसूय वह यज्ञ है, जिसमें राजा को प्रेरित किया जाता है (सूयते प्रेर्यते)। वह इष्टि पशु, सोम, दर्विहोमात्मक शस्त्रप्रधान है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्याघ्र (के समान वीर), व्याघ्र-चर्म पर चलो और बड़ी दिशाओं को प्राप्त करो। सारे विशः तुम्हें और दुग्ध से परिपूर्ण दिव्य जल, चाहें ।।४।। व्याघ्रचर्मारोहण राजसूय यज्ञ का एक कर्म है। यह राजसत्ता-धारण का प्रतीक है। विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु का अर्थ ग्रिफिथ के अनुसार है—Let all the people long for thee.

या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम्।
तासां त्वा सर्वासामपामभिषिञ्चामि वर्चसा ॥ ५ ॥

जो दिव्य दुग्धपूर्ण जल अन्तरिक्ष अथवा पृथिवी में मदयुक्त हो बहते हैं, उस सभी जल के वर्चस् से तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ ।।५।।

अभि त्वा वर्चसा सिञ्चन्नापो दिव्याः पयस्वतीः।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥ ६ ॥

दुग्धपूर्ण दिव्य जल ने तुम्हें वर्चस् से सिक्त किया है, जिस प्रकार तुम मित्रवर्धन बन सको उसी प्रकार सविता तुम्हें करे ॥ ६ ॥

एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय।
समुद्रं न सुभवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः ॥ ७ ॥

इस प्रकार व्याघ्र से परिष्वक्त होते हुए, महान् सौभाग्य के लिये वे सिंह को उत्तेजित (हिन्वन्ति) करते हैं। उस द्वीपी (चीते) को जल के बीच अच्छी तरह साफ करते हैं, जैसे स्थित समुद्र को साफ या शुद्ध सुभू करते हैं ॥ ७ ॥ जीमर ने सुभू का अर्थ शक्तिशाली (machtigen) किया है (पृ० २१३, आल्टइन्डिशेश लेबेन)।

यहाँ पुरोहितगण द्वारा नरपति की परिशुद्धि का वर्णन है। नरपति को उसके शौर्य का प्रकटीकरण करने के लिये व्याघ्र, सिंह और चीता (श्वव्याघ्र या चित्रव्याघ्र) कहा गया है।

राजसूय[1] के समय के इन सात मन्त्रों (अथर्व० ४/८) में राजा को भूतों का अधिपति (उग्र, चेत्ता, शत्रुनाशक सपत्नहा), मित्रवर्धन, स्वारोचिष, व्याघ्र के समान बलवान् और विश्वरूप कहा है। ऐसी भी कामना व्यक्त की गई है कि समस्त विशः उसे चाहें—विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु। इससे प्रतीत होता है कि राजनीतिक प्रक्रिया में विशः का कोई निर्णायक स्थान नहीं है। स्वतंत्र निर्णय करने और निर्णयों के क्रियान्वयन से

१. राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्त दध्वरः।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदन्तिमः ॥ (अथर्व० ११, ७, ७)
राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अध्वर, अर्क और अश्वमेध, उच्छिष्ट में हैं—जिसमें जीवित बर्हि है और जिसमें प्रभूत मादक शक्ति है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उनका सम्बन्ध नहीं है। उनका कार्य अब स्वतंत्र कर्त्ता का नहीं, अपितु, गतिहीन वस्तु का है, क्योंकि समागत अधिपति की वे कामनामात्र करते हैं।[१]

इन मन्त्रों से ऐसा मालूम पड़ता है कि जल में जादूटोनावाली विशेष शक्ति भरी है, क्योंकि आपः (जल) को दिव्य और पयस्वती तीन मंत्रों में कहा गया है।

(१२) एकवृष क्षत्रवर्ष्म राजा (अथर्व० ४/२२)

इमामिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम्।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥ १ ॥

हे इन्द्र! इस क्षत्रिय को वर्धित करो, इसे विशः का एकवृष (प्रधान वृषभ के समान) बनाओ, इसके सारे शत्रुओं को निर्वीर्य कर दो, श्रैष्ठ्य के लिये प्रतियोगिता में, उन सबों को, इसके अधीन बनाओ (रन्धय) ॥ १ ॥ ग्रिफिथ ने एकवृषम् का अर्थ किया है—sole lord and leader of the people अथवा folks sole lord and leader (जनता का एकमात्र अधीश और नेता)।

एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुरन्धय सर्वमस्मै ॥ २ ॥

ग्राम, अश्वों, गायों में इसका भाग दो, जो इसका अमित्र है उसका भाग मत दो। यह राजा क्षत्र का शीर्षस्थान (वर्ष्म) हो। इन्द्र, सारे शत्रु, इसके अधीन करो ॥ २ ॥

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥ ३ ॥

यह राजा धन का धनपति हो, यह विशः का विश्पति हो जाय। इन्द्र, इसमें महान् तेज धारण कराओ और इसके शत्रु को वर्चस् से हीन करो ॥ ३ ॥ ग्रिफिथ ने विश्पति का अनुवाद किया है—master of the people। जीमर ने इसका अनुवाद किया है Ganherr der gave।

अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥ ४ ॥

द्यौः और पृथिवी! जो प्रिय (वाम) है, उसे इसके लिए अधिक मात्रा में दुग्ध दुहो अर्थात् इसे आशीर्युक्त करो उष्णपेय (घर्मदुघे) देनेवाली दो गौओं के समान। यह राजा, इन्द्र का प्रिय हो (और) गायों, ओषधियों और पशुओं का भी प्रिय बने ॥ ४ ॥

युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते।
यस्त्वा कृदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ॥ ५ ॥

---

१. जीमर ने इसका जर्मन में अनुवाद किया है—"alle Leute sollen wunchen dich" (पृ० २१३, आल्ट इन्डिशेश लेबेन)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शक्तिशाली इन्द्र को, जिससे विजय मिलता है और पराजय नहीं होता, तुमसे युक्त करता हूँ। जो तुम्हें विशः (जनानाम्) का एकमात्र शासक (एकवृष) और मानव-राजाओं में उत्तम बनावेगा ॥ ५ ॥

उत्तर स्त्वमधरे ते सपत्ना यं के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥ ६ ॥

राजन् ! जो तुम्हारे प्रतिशत्रु (द्वेषी) हैं, वे नीचे जायेंगे और तुम विशिष्ट (उत्तर) रहोगे। एकवृष, इन्द्रमित्र, विजयी, तुम शत्रु के समान आचरण करनेवालों का भोजन छीन लो ॥ ६ ॥

सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून्।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ॥ ७ ॥

सिंह-प्रतीक हो, समस्त विशः को खाओ (अद्धि), व्याघ्र-प्रतीक हो शत्रुओं को पराजित करो। तुम एकवृष, इन्द्रमित्र, विजयी (जिगीवान्) हो, तुम शत्रु के समान आचरण करनेवालों का भोजन जब्त कर लो (आखिदा) ॥ ७ ॥

जीमर ने (Altindisches Leben, पृ० १६५) एकवृषः का शब्दानुवाद किया है einziger Stier। यहाँ Steir (वृषः)का भावार्थ Herrscher अर्थात् अधीश ही है।

अथर्ववेद (६,८६) में सार्वत्रिक संप्रभुता को एकवृषत्व की संज्ञा दी है। जिस प्रकार जन्तुओं में वृषभ शौर्य और महः का मूर्त्तिमान् स्वरूप है उसी प्रकार एकवृष समस्त दिशाओं में अपनी वरिमा और श्रैष्ठ्य का प्रकटीकरण कर रहा है। एकवृष पृथिवी पर वृषभवत् समस्तभूतों में महत्तम, असुरों का सम्राट्, मनुष्यों में ककुद् और देवों का अर्धभाग है। वशीकरण ही एकवृषत्व का मुख्य कार्य है। अन्य क्षेत्रों में वशित्व का उदाहरण निम्न लिखित प्रकार से दिया गया है—

वशी या ईश (—Regent—ग्रिफिथ)	किसका
१. समुद्र	१. नदियों का
२. अग्नि	२. पृथिवी का
३. चन्द्रमा	३. नक्षत्रों का

(१३) राष्ट्री, सङ्गमनी वाक्—वागाम्भणी सूक्त में राजनीतिक प्रकरण

(अथर्व० ४/३० = ऋग्वेद; १०/१२५)

वागाम्भृणी-सूक्त में वाक् अपने को "राष्ट्री" (राज्ञी) और अच्छी वस्तुओं की संग्रहकर्त्री कहती है—अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनाम्। वह दावा करती है कि जो देखता है, जो प्राणधारण करता है और जो सुनता है—वह सभी उसी के द्वारा ही अन्न खाता है। ब्रह्मद्वेषी को मारने के लिये वाणी ही रुद्र का धनुः खींचती है। लोगों के लिए युद्ध भी वाणी ही करती है—अहं जनाय समदं कृणोमि। राजनीतिशास्त्र से सम्बद्ध तीन मुख्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कारक—राष्ट्र, अन्नवितरण[1] और युद्ध (समद) यहाँ वाणी देवी के अधिष्ठान में संरक्षित व्यक्त किए गए हैं। उग्रत्व प्रदान करना भी इसी देवी का कार्य है—यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि।

(१४) अथर्ववेदोक्त राष्ट्र—पुरोहितवाद और राष्ट्रवाद

अथर्ववेद (५।१९) में इस बात का वर्णन है कि अज्ञानवश (चित्या) ब्राह्मण की गाय को अवरुद्ध करने से क्या-क्या हानियाँ होती हैं। इन मन्त्रों के अनुशीलन से हमें इस तत्त्व का परिज्ञान होता है कि राष्ट्र के अन्तर्गत किन-किन कारकों का संग्रह किया जा सकता है—

१. क—वीर पुरुष,
   ख—पञ्च मानव, मनुष्य,
   ग—राजा, राजन्य, ब्राह्मण, वैश्य
२. विकर्ण पृथुशिरा (वृषभ ?)—
   श्वेत कृष्णकर्ण (अश्व)
   पृश्नि, धेनु, अनड्वान्
३. क्षेत्र, पुष्करिणी

यहाँ पर राज्य के क्षेत्रात्मक और जनसंख्यामूलक कारकों का उल्लेख है। राजा और राजन्य के रूप में सरकार और प्रशासन का भी निर्देश है। किन्तु अमूर्त्त निरपेक्ष संप्रभुता का उल्लेख नहीं है। दूसरी ओर, पुरोहित की जाया के निरुद्ध होने की अपरिमेय चिन्ता बताती है कि तत्कालीन राजकीय अवस्था कंटकाकीर्ण थी, नहीं तो कवि को उसके विरुद्ध होने से भयानक आपदाओं का इतना बृहत् उल्लेख नहीं करना पड़ता।

इस सूक्त में राष्ट्र पद का प्रयोग हुआ है—

तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा (५,१९,४)

ब्राह्मण की गाय पकायी जाती है (ब्रह्मगवी पच्यमाना) तो राष्ट्र के तेज को नष्ट करती है और वहाँ कोई वीर उत्पन्न नहीं होता है।

परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीर्यति। (५,१९,६)

जहाँ ब्राह्मण कष्ट पाता है, वह राष्ट्र नष्ट होता है।

द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य। (५,१९,७)

ब्राह्मण-ताड़क के राष्ट्र को वह ब्रह्मगवी दो मुखवाली, दो जिह्वावाली होकर, नष्ट करती है।

तद् वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना। (५,१९,८)

---

१. अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्या ३ यजमानाय सुन्वते।
अथर्व० ४,३०,६)
: : : : : : : : :
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति (अथर्व० ४,३०,४)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जैसे छिद्रवाले नाव को जल आवृत कर लेता है वैसे ही वह राष्ट्र दुर्भाग्य (दुच्छुना) से भर जाता है, जहाँ ब्राह्मण की हत्या होती है या वह ताड़ित होता है (ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति)

न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन । (५,१९,१०)

ब्राह्मण की गाय को खाकर कोई राष्ट्र में जागता नहीं रहता अथवा रक्षक नहीं रखता है ।

(१५) संग्रामजित्, ग्रामघोषो, दुन्दुभि (अथर्व० ५,२०)

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥१॥

उच्चघोष करनेवाली, योद्धा समान, वानस्पत्य, रक्तवर्ण (गौओं) के साथ लाई गई दुन्दुभे ! वाणी को उत्तेजित करता हुआ, सपत्नों का दमन करता हुआ, विजय प्राप्त करते हुए सिंह के समान दीर्घ शब्द करो ॥१॥

सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्वृषभो वासितामिव[1] ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥२॥

काष्ठनिर्मित (दुन्दुभि) ने सिंह के समान गर्जन किया, वासिता रंभाती हुई गाय के प्रति अभिक्रन्दन करते हुए वृषभ के समान, बढ़ी हुई, तुम वीर्यवती हो और तुम्हारे शत्रु नपुंसक (शक्तिहीन) हैं, तुम्हारा वाज (शुष्म) इन्द्र के समान है, जो दुष्ट षड्यंत्रकारियों को पराभूत कर देता है ॥२॥

वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव सन्धनाजित् ।
शूचाविध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥३॥

यूथ में, सहसा प्राप्त वृषभ के समान, युद्धसामग्री-विजेत्री, गायों को खोजती हुई (सन्धनाजित्), शब्द करो । हमारे अमित्रों के हृदय को कष्ट देते हुए, विद्ध कर दो, अपने ग्रामों को छोड़कर हमारे शत्रु चले जायँ ॥३॥

संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाःशत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥४॥

युद्धकर्त्ताओं को जीतती हुई, तीक्ष्ण शब्द करती हुई, जो पकड़े जाने योग्य हैं, उन्हें पकड़ती हुई, अनेक दिशाओं में देखो । हे दुंदुभे, देवी वाणी का अनुसरण करो (अथवा दिव्यवाणी बोलो), हमारे शत्रुओं के धन को पुरोहितवत् ले आओ ॥४॥

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥५॥

---

१. रोथ—ह्वीट्ने "संस्करण में" "वाशितामिव" पाठ है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दुन्दुभि के उच्चरित शब्द को सुनती हुई, नाथिता (आर्तभावापन्ना), शब्द से जगाई गयी, शत्रुमारक शस्त्रों के प्रयोगवाले समर में भयभीता शत्रु-नारी अपने पुत्र के प्रति धावन करे, उसके हाथ को पकड़ती हुई ॥५॥

पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सुनृतावत् ॥६॥

हे दुन्दुभे, पहले तुम अपनी वाणी बोलो, चमकती हुई (रोचमानः), भूमि के ऊपर अपनी वाणी बोलो, शत्रुओं की सेना पर अपने जबड़ों को चौड़ा खोलते हुए, हे दुन्दुभे, स्पष्ट और प्रिय बोलो ॥६॥

अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम्।
अभिक्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥७॥

इन दोनों नभों के बीच शब्द हो, तुम्हारी ध्वनियाँ पृथक्-पृथक् शीघ्र जायँ, अभिक्रन्दन करो, स्तनयित्नु (ठनका) गिराओ, विरोध करो (पिपानः), हमारे मित्रों के विजय की प्रति क्रन्दन-ध्वनि (श्लोककृत्) करती हुई, तेज धारण करती हुई (स्वर्धी) ॥७॥

धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्त्वनामायुधानि।
इन्द्रमेदी सत्वनो निह्वयस्व मित्रैरमित्रां अव जङ्घनीहि ॥८॥

बुद्धिकृत, यह अपनी वाक् बोले, सत्त्वशीलों के आयुधों को उत्तेजित करे. इन्द्र से मिलकर, शत्रुओं को बुलाओ, मित्रों से अमित्रों को ताड़ित करो ॥८॥

संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो विहर द्विराजे ॥९॥

संक्रन्दन करती हुई, वाचिका, धृष्णुसेना से युक्त, अनेक स्थानों में शब्द करती हुई, ग्रामों में वाणी उच्चारण करती हुई (ग्रामघोषी), श्रेयस् प्राप्त करती हुई, मार्गों को जानती हुई, दो राजाओं के (युद्ध) में (द्विराजे) अनेकों को कीर्ति बाँटो ॥९॥

श्रेयः केतो वसुजित् सहीयान्त्संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणासि।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः ॥१०॥

श्रेय को लक्ष्यीभूत करती हुई, वसुजित्, प्रभूतबलशालिनी, संग्रामजित्, तुम ब्रह्म से तीक्ष्णीकृत हो। हे दुन्दुभे ! जैसे ग्रावा सोमसवन में सोमवल्ली पर नाचता है, वैसे ही युद्धविजय-सामग्री (गव्यन्) खोजती हुई तुम नाचो ॥१०॥

शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित्।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं संग्रामजित्यायेषमुद् वदेह ॥११॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शत्रुजेत्री, पराजित करती हुई और नीचे करती हुई, अरियों का दमन करती हुई, गायों को खोजती हुई, शक्तिशाली, ऊपर जाती हुई। जैसे वाग्वी (वाचाल वक्ता), अपना मन्त्र बोलता है उसी प्रकार तुम अपनी वाणी, संग्रामविजयिनी वाणी बोलो ॥११॥

अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुर एतायोध्यः।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद् हृद्योतनो द्विषताँ याहि शीभम् ॥१२॥

जो अच्युत (अपराजित) हैं, उन्हें च्युत करती हुई, युद्ध में वेग से जाती हुई, अपमानक-जेत्री, पराभूत न होने वाली, इन्द्ररक्षिता, विदथस्थों का ख्याल करती हुई, हमारे अमित्रों का हृदय चूर करती हुई, जाओ ॥१२॥

(१६) दुन्दुभि और सूर्यकेतु देवसेना (अथर्व० ५/२१)

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे।
विद्वेषं कश्मशं भयमित्रेषु निदध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि ॥१॥

हे दुन्दुभे! हमारे शत्रुओं में विहृदय और वैमनस्य प्रचारित करो। विद्वेष, विशृंखला (कश्मश), भय, हम शतुओं में स्थापित करते हैं। हे दुन्दुभे! उनका हनन करो ॥१॥ संभवतः कश्मल के लिए कश्मश (कश्म+ल, कश्म+श-प्र०) पाठ है।

उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ॥२॥

मन, चक्षुस् और हृदय से काँपते हुए, हमारे प्रत्रास से भयग्रस्त शत्रु भागें, जब आज्य (घृत) अर्पित होता है ॥२॥

वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः।
प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥३॥

तुम वनस्पतिनिर्मिता, नानागोत्रों की अरुणवर्णा गायों से लाई गयी हो, आज्य-संपृक्त होकर हमारे शत्रुओं में प्रत्रास का प्रचार करो ॥३॥

यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥४॥

जैसे अरण्यस्थ पशु पुरुष को देखकर काँपते हैं, उसी प्रकार, दुन्दुभे! हमारे शत्रुओं पर अभिक्रन्दन करो, उनमें त्रास का संचार करो और उनके चित्त को मोहो ॥४॥

यथा बृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः।
एवा० ॥५॥[1]

जैसे बकरियाँ और भेड़ें, भेड़िये को देखकर भय खाती दौड़ती हैं उसी प्रकार···॥५॥

यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥६॥

---

१. मन्त्र ४ का अर्थ देखें।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दिन-प्रतिदिन जैसे बाज को देखकर पक्षिगण काँपते हैं, जैसे सिंह के चीत्कार करने पर, उसी प्रकार हे दुन्दुभे ·····॥६॥[1]

परामित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च।
सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते ॥७॥

दुन्दुभि और हरिण के चर्म से समस्त देवों ने हमारे शत्रुओं को त्रासयुक्त कर दिया है—जो (देवगण) संग्राम के ईश हैं ॥७॥

यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पदघोषैश्छायया सह।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥८॥

जिन पदघोषों से इन्द्र छाया से खेलता है, उनसे हमारे शत्रुओं की सेनाएँ, जो अनीकस्थ (पंक्तिबद्ध) जाती हैं, त्रासान्वित हों ॥८॥

ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥९॥

सारी दिशाओं में, दुन्दुभियाँ, धनुर्घोष के साथ दीर्घ शब्द करें—हमारे शत्रुओं की सेनाएँ पराजित हो पंक्तिबद्ध, जायँ ॥९॥

आदित्य चक्षुरादत्स्व मरीचयोऽनु धावत।
पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये ॥१०॥

हे आदित्य ! उनकी आँखें ले लो, सूर्यरश्मियाँ दौड़ें, जिनके पैर में बाँधने की वस्तु है, वे उसे बाँध लें, बाहु के वीर्य के समाप्त हो जाने के कारण ॥१०॥

मूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ॥११॥

उग्र मरुतो ! चित्रयुक्ता माता के पुत्रो ! इन्द्र की मैत्री से युक्त, तुमलोग शत्रुओं का हनन करो। राजा सोम, राजा वरुण, महादेव, मृत्यु भी, इन्द्र—॥१७॥

एता देवसेना सूर्यकेतवः सचेतसः।
अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥१२॥

यह देवसेना, सूर्यध्वजा, समान चित्तवाली. हमारे शत्रुओं को पराजित करे। स्वाहा ॥१२॥

(१७) रथ-राजन्य-त्विषि और वर्चस् के निमित्त प्रार्थना (अथर्व० ६, ३८)

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥१॥

---

१. मंत्र ४ का अर्थ देखें।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सिंह, व्याघ्र. सर्प (पृदाकु), अग्नि. ब्राह्मण, या सूर्य में जो त्विषि (प्रभापूर्ण तेज), है (वह हमारी हो) । जिस सुभगा देवी ने इन्द्र को जन्म दिया है, वह वर्चसा संयुक्त हो हमारे पास आवे ॥१॥ त्विष् (भ्वा० उभय०) + इन् = त्विषिः

या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु ।
इन्द्रं० ॥२॥

जो हाथी, चीता (या तेंदुआ), स्वर्ण, जल, गाय या पुरुषों में जो त्विषि है (वह हमारी हो) । जिस सुभगा देवी ने···आवे ॥२॥

रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे ।
इन्द्रं० ॥३॥

जो रथ, द्यूत, वृषभ-बल, वात, पर्जन्य, या वरुण की उग्रता (शुष्म = अग्नि या तीव्रता) में (जो त्विषि है, वह हमारी हो) ।जिस सुभगा देवी ने···आवे ॥३)

राजन्ये दुन्दुभा वायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥४॥

राजन्य, दुन्दुभि, खींचे हुए बाण, घोड़े की शक्ति और पुरुष के चीत्कार में (जो त्विषि है, वह हमारी हो) । जिस सुभगा देवी ने इन्द्र को जन्म दिया है, वह वर्चस् से संयुक्त हो हमारे पास आवे ॥४॥

(१८) इन्द्रजूत राष्ट्र (अथर्व० ६, ३९)

यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतंसहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम् ।
प्रसर्स्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मन्तं मा वर्धय ज्येष्ठतायै ॥१॥

इन्द्रप्रेरित, सहस्र वीर्य, सुभृत, शक्तिनिर्मित (सहस्कृत), मेरा हविष्य यशःप्रद हो, दीर्घचक्षुस् के लिये, वेग से आगे बढ़ते हुए, हविर्युक्त मुझको ज्येष्ठता की प्राप्ति के लिये बढ़ाओ । ॥१॥

अच्छा न इन्द्र यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम ।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम ॥२॥

यशस्वी इन्द्र को, यशोयुक्त को, हमलोग यशःपूर्ण नमस्कार करें । इन्द्रप्रेरित राष्ट्र हमें दो, इस दान (रातौ) में हम यशस्वी बनें ॥२॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३॥

इन्द्र यशस्वी था, अग्नि यशस्वी था, यशस्वी सोम उत्पन्न हुआ, समस्त भूतों में मैं यशस्वी, अतिशय यशस्वी हूँ ॥३॥

(१९) स्वतंत्रता का मनोवैज्ञानिक और नैतिक आधार : अभय (क) (अथर्व० ६, ४०)

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।
अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥१॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्यौः और पृथिवी हमलोगों के लिये यहां अभय हों, सोम और सविता हमें अभय (प्रदान) करें, विस्तृत अन्तरिक्ष हमारे लिये अभय हो, सप्तर्षियों की हविषा से हमें अभय हो ॥१॥ भी+अच् = भयम्। न भयम्, अभयम् (नञ् बहुव्रीहि)।

अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु।
अशत्रिन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभियातु मन्युः ॥२॥

इस ग्राम के लिये, चार प्रदिशायें (प्रदिशाओं में)—सविता ऊर्ज, सुभूत (कल्याण), स्वस्ति करे। इन्द्र हमारे लिये निःसपत्नता, अभय करे, राजाओं का मन्यु अन्यत्र जाय (अर्थात् हमारे ऊपर उसका प्रकोप न हो) ॥२॥

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥३॥

नीचे हमें शत्रुराहित्य हो, ऊपर हमें शत्रुराहित्य हो। ओ इन्द्र! हमें, पीछे शत्रुराहित्य और आगे हमारे लिये शत्रुराहित्य करो ॥३॥

इस सूक्त में सार्वत्रिक अभय और स्वस्ति के लिए देवों से हार्दिक प्रार्थना की गयी है। अभय का राजनीतिक प्रयोजन यहाँ स्पष्ट है, क्योंकि राजा का मन्यु अन्यत्र जाय, ऐसी कामना है। किन्तु यदि कवि ऐसा आशय प्रकट करता कि राजा के मन्यु का हम अभय से प्रतिरोध करें तो वह लोकतंत्र का पैगम्बर बन जाता।

अभय (ख) (अथर्व० १९,१४,१५,१६)

इदमुच्छ्रेयोवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥१॥

यहाँ मैं प्रशस्ततर अन्तिम स्थान पर आ गया हूँ, द्यौः और पृथिवी मेरे लिए कल्याणकारी हुई हैं। प्रदिशाएं मेरे लिए शत्रुरहित हों, तुमसे हमलोग द्वेष नहीं करते। हमलोगों के लिए अभय हो (१९,१४,१)

× × × ×

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न[1] ऊतिभिर्विद्विषो विमृधो जहि (१९,१५,१)

हे इन्द्र! जिससे हमलोग भय करते हैं, उससे हमलोगों को भयरहित करो, मघवन्! अपनी साहाय्यप्रद वस्तुओं से हमारी सहायता करो, द्वेषकारियों को दूर हटाओ, मारो ॥१॥

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।
मा नः सेना अररुषीरूप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो विनाशय ॥२॥

---

१. रोथ—ह्वीटने-संस्करण में "तन्न" पाठ है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सफलता देनेवाले (अनुराधम्) इन्द्र को हम बुलाते हैं, द्विपदों और चतुष्पदों से हम सफल हों, कृपण सेनाएँ हमारे ऊपर न आ जायँ, द्रोहकारी बिखर जायँ और नष्ट हो जायँ ॥१॥

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो[1] वरेण्यः।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥३॥

इन्द्र त्राता और वृत्रहन्ता है, हमलोगों का वरेण्य, दूर-दूर तक अविता (परस्वान) है। अन्त में, मध्य में, पश्चात् और आगे (पुरस्तात्) वह हमारा रक्षिता हो ॥३॥

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वयंज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥४॥

तुम, विद्वान्, हमलोगों को विस्तृत लोक, दिव्य ज्योति, अभय स्वस्ति की ओर ले चलो। हे उग्र इन्द्र, तुम्हारे स्थविर बाहुओं की अधीनता में, बृहत् शरण में, हम रहें ॥४॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तराधरादभयं नो अस्तु ॥५॥

अन्तरिक्ष हमारे लिए अभय करे, दोनों द्यौः और पृथ्वी हमारे लिए अभय (करें), पीछे से अभय, आगे से अभय, ऊपर से अभय, नीचे से अभय, हमारे लिये हो ॥५॥ ग्रिफिथ ने उत्तरात्, अधरात् का अर्थ उत्तर से और दक्षिण से किया है, जो भ्रमयुक्त है।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।[2]
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥६॥

मित्र से अभय, अमित्र से अभय, परिचित से अभय, दूरवासी से अभय, रात्रि में अभय, दिन में अभय, सभी आशाएँ (दिशायें) मेरे मित्र हों ॥६॥

× × ×

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम्।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१॥ (अथर्व० १९, १६)

आगे शत्रुराहित्य, पीछे, हमारे, अभय है (कृतम्)। दक्षिण से सविता और उत्तर से शचीपति (इन्द्र हमारी रक्षा करें) ॥१॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम्।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥२॥

आदित्यगण द्यौः में हमारी रक्षा करें, अग्नि भूमि पर रक्षा करे, आगे इन्द्र और अग्नि (इन्द्राग्नी) हमारी रक्षा करें, नासत्य चारो ओर हमें कल्याण प्रदान करे।[3]

---

१. रोथ—ह्वीट्ने-संस्करण में "गयस्फानो" पाठ है'

२. रोथ—ह्वीट्ने-संस्करण में "परोक्षात्" पाठ है।

३. यहाँ देवों से सर्वविध रक्षण की याचना है। होमर ने ओडीसी (८,७१०) में कहा है—
देवों ने उस भाग्य को बनाया, वे धागे को बुनते है मानव के विनाश का—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

टेढ़े स्थान पर गाय रक्षा करे, भूतकृत अग्नि सर्वत्र हमारा रक्षक हो ॥२॥

(२०) सजात-रमति-विवाद के शमनार्थ मन्त्र (अथर्व० ६।७३)

एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥१॥

वरुण, सोम, अग्नि यहाँ आवें। बृहस्पति, वसुओं के साथ यहाँ आवें। सब सजातगण एक मन होकर (समनस.), इस उग्र संरक्षक (चेत्तुः) की श्री के लिए साथ आवें ॥१॥

यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमति वो अस्तु ॥२॥

जो तुमलोगों के हृदय में उष्णता (शुष्म) है, जो मन में बैठा संकल्प (आकूति) है, उसे मैं हविः और घृत से निरर्थक बना देता हूँ, सजातगण ! मुझमें तुमलोगों की प्रसन्नता (आनन्द-प्राप्ति) हो ॥२॥

इहैव स्त माप याताप्यस्मत् पूषा पुरस्तादपथं वः कृणोतु।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥३॥

यहीं पर रहो, हमसे अलग न जाओ। पूषन् (दूरस्थ मार्गों को), अपथ बना देगा। वास्तोष्पति तुम्हें शीघ्र बुला ले। सजातगण ! मुझमें तुमलोगों की प्रसन्नता हो ॥३॥

(२१) "संज्ञपन"—मन्त्र (अथर्व० ६,७४)

सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥१॥

तुम्हारे तनु संयुक्त रहें, तुम्हारा मन और व्रत संयुक्त रहें। ब्रह्मणस्पति तुम्हें संयुक्त यहाँ लाया है, भग संयुक्त तुम्हें यहाँ लाया है ॥२॥

सञ्ज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥२॥

मन की संध्वनि (संज्ञपन), मैं तुम्हें (देता हूँ), हृदय की संध्वनि मैं तुम्हें (देता हूँ)। भग (देवता) की जो श्रान्ति है, उससे तुमलोगों को संज्ञप्त बनाता हूँ ॥२॥

यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः।
एवा त्रिणामन्नहृणायमान इमान् जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥३॥

जैसे उग्र, शत्रुतारहित (अहृणीयमानाः) आदित्य, वसुओं से (और) मरुद्गणों से संयुक्त हैं, उसी प्रकार ऐ त्रिणामन् ! इन जनों को शत्रुतारहित और समानमनवाला बनाओ ॥३॥ सायण और बर्गेन के अनुसार त्रिणामन् से अग्नि अभिप्रेत है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(२२) अभिभू और प्रजावत् क्षत्र—ग्रामजित्-गोजित् इन्द्र-महोत्सव (अथर्व० ६,९७)।

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः।
अभ्यहं विश्वाः पृतना यथा सान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः ॥१॥

यज्ञ ज्यैष्ठ्य-प्राप्त (अभिभूः) है, अग्नि ज्यैष्ठ्यप्राप्त (अभिभूः) है, सोम ज्यैष्ठ्य-प्राप्त है, इन्द्र ज्यैष्ठ्यप्राप्त है। समस्त शत्रुओं को अभिभूत कर दूँ, अग्निहोत्रकारी हमलोग इस हविः का विधान करते हैं ॥१॥ यह मन्त्र यजमान की उक्ति है।

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षेत्रं मधुनेह पिन्वतम्।
वाध्रेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥२॥

बुद्धिसम्पन्न मित्र और वरुण, स्वधा हो, प्रजासम्पन्न हमारे क्षेत्र को मधु से मोटा (पिन्व) करो। निर्ऋति को अतिदूर हटाओ, किए हुए पाप को हमसे दूर हटाओ ॥२॥ यह मंत्र पुरोहित की उक्ति है। पिन्वतम् = सिञ्चतम् (सायण)। प्रजावत्—प्रजा से युक्त। निर्ऋति = पापदेवता, पराजयकारिणी।

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु संरभध्वम्।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥३॥

इस वीर (राजा) का सहर्ष अनुसरण करो, इन्द्र जो उग्र है, ग्रामजेता है, गोजेता है, वज्रपाणि है, युद्ध में विजयी है, ओज से हनन करनेवाला है, उसका, हे मित्रो! आश्रय ग्रहण करो (अनुसंरभध्वम्) ॥३॥ यह मंत्र राजा में अनुरक्ति के लिये पुरोहित द्वारा प्रजाओं का सम्बोधन है। अज्म = अजनशील, क्षेपणशील (बाण फेंकनेवाला—सायण)।

कौशिकसूत्र के अनुसार अथर्व ६, ९७ ६, ९८, और ६,९९ सांग्रामिक हैं।

(२३) सैन्य-वध-स्वस्ति-मन्त्र—युद्धावसर पर विजय मन्त्र (६,९ अथर्व० ।९)

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वां हूरणाद्धुवे।
ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् ॥१

हे इन्द्र! दुःख के कारण (वरिमतः) तुम्हें दूर से बुलाता हूँ, जो उग्र, विचारक, अनेकनामधारी, अकेला जन्मा है, को बुलाता हूँ ॥१॥ ग्रिफिथ और ह्वीट्ने ने उग्रं और चेत्तारं को एक साथ मानकर इनका अर्थ Mighty guardian (ग्रि०) और Stern corrector (ह्वी०) किया है। मेरे मत में दोनों शब्द स्वतंत्र हैं। सायण ने पुरुणामानम् का अर्थ (क) प्रशस्तनामधेययुक्त अथवा (ख) बहुत शत्रुओं का नमयिता किया है।

यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते।
इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दध्मः ॥

हमारा वध करने के लिये जो आज शत्रुत्वपूर्ण अस्त्र (सेन्यो वधो) ऊपर जाता है—इन्द्र के दोनों हाथों को हम (रक्षार्थ) अपने सभी ओर रखते हैं ॥२॥

परिदध्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः।
देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृण् स्वस्तये ।३॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

त्राता इन्द्र के दोनों हाथों को हम अपने सब ओर रखते हैं, वह हमारी रक्षा करे। देव सविता ! राजा सोम ! स्वस्ति के लिये हमें अच्छे मनका बनाओ ॥३॥ क्षेम, अविनाश (सायण)।

(२४) सभा, समिति—प्रजापति की दुहिताएँ और संसद् (अथर्व० ७।१२)

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥२॥

प्रजापति की दो पुत्रियाँ, सभा और समिति संमनस होकर मेरी रक्षा करें, जिससे मैं साथ मिलूं वह मुझे उपशिक्षित करे, पितृगण ! जो आए हुए हैं, उनके बीच, मैं चारु (वाणी) बोलूं ॥१॥ सायण के अनुसार इस मंत्र का यह अर्थ है कि जिस वादी से मैं मिलूं वह मुझसे समीचीन बोलवावे अर्थात् स्ववचन-तिरस्कारक-वाक्य-वक्ता मुझे बनावे और मेरे न्यायोपेत (चारु) उत्तर का सभी साधुवाद करें।

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥२॥

सभे ! हमलोग तुम्हारा नाम जानते हैं, तुम्हारा नाम नरिष्टा है। जो कोई तुम्हारे सभासद् हैं, वे मेरे समान ही वाणी बोलें (सवाचसः) ॥२॥ नरिष्टा का अर्थ सायण के अनुसार आघातरहित (अहिंसतुपरैरनभिभाव्या) है (न—रिष्टा)। अनतिलंघ्यवाक्या होने से भी सभा का नाम नरिष्टा है। इसका, हास्य करते हुए अथवा बात करते हुए, भी अर्थसंभव है। ग्रिफिथ ने नरिष्टा का अर्थ वार्तालाप (Interchange of talk) किया है। ह्वीट्ने ने इसका अर्थ खेल (Sport) किया है। मोनियर विलियम्स के कोश में इसका अर्थ है—खेल, हंसी या बातचीत करते हुए (Joking, chattering, pastime)।

एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे।
अस्याः सवंस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ॥३॥

(संगत अथवा सभा में) समासीन लोगों का वर्चस् और विज्ञान मैं ग्रहण करता हूँ, हे इन्द्र ! इस समस्त संसद् का भोगग्राही (भगिनं) मुझे बनाओ ॥३॥ संसद् का अर्थ ह्वीट्ने ने किया है, पूर्ण बैठक (Whole gathering)। सायण ने संसद् को सभा का पर्यायवाची माना है। इस मंत्र का तात्पर्य उसके मत में है कि सारी सभा मदेकवाक्य श्रवणपरा हो।

यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा।
तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥ ४ ॥

तुमलोगों का जो मन दूर चला गया है, अथवा जो यहाँ, वहाँ बँधा है, उसे हम आवर्तित करते हैं। तुमलोगों का मन मुझमें रमण करे ॥ ४ ॥

राजनीतिशास्त्र की शब्दावलि की दृष्टि से सभा- समिति, संगत और संसद् महत्त्वपूर्ण मूलशब्द हैं। सभा और समिति को प्रजापति की दुहिता कहना इनको दिव्य वर्चस् से

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भूषित मानने के समान है। संगत और संसद् में सद्वाणी का आश्रय लेकर ही हम वैशिष्ट्य प्राप्त कर सकते हैं, ऐसा सन्देह यहाँ उद्घोषित है।

एतद्देशीय और विदेशी वेदवेत्ताओं के अनुसार सभा और समिति के ये अर्थ हैं—

सभा—

१. विदुषां समाजः (सायण)

२. ग्राम के लोगों की सभा (Gathering or conference, meeting of the people of a village—ग्रिफिथ)

३. Assembly—हवीट्ने

४. Versammlung des Dorfes—ग्राम (वासियों) का एकत्रीकरण—जीमर

समिति—

१. सांग्रामिक जनसभा (समितिः संयन्ति संगच्छन्ते युद्धाय यत्रेति समितिः संग्रामः—सायण। समिति = यज्ञ—यास्क और सायण।

२. Assembly, A congregation for sacrificial and religious purpose (यज्ञार्थ एकत्रीकरण)—ग्रिफिथ

३. Gathering (एकत्रीकरण)—ह्वीट्ने

२५. क्षत्रज, ओजसजन्य इन्द्र (अथर्व० ७, ८४, २-३)

जो कुछ बाह्य जगत् में परिदृष्ट होता है, उसी के अनुरूप काव्यात्मक और धार्मिक कथानकों और विशेषणों की सृष्टि होती है। ऋग्वेद में इन्द्र के वीर्य, बल, सहस्, आदि की अत्यन्त वेगपूर्ण अर्चना तो है ही, यत्र-तत्र अथर्ववेद में भी उसके ओज, शवस, वृषभत्व आदि का जोरदार शब्दों में उल्लेख तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था के सत्ता-समाधृत होने का प्रमाण है। उदाहरणार्थ दो मन्त्र हैं—

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम्।
अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम्। (अथर्व, ७, ८४,२)

मनुष्यों में वृषभ हे इन्द्र, तुम क्षत्र और ओज में जन्मे हो। अमित्रभावापन्न जनों को तुमने दूर हटा दिया, देवताओं के लिए तुमने चौड़ा लोक बनाया। क्षत्रम्=क्षतात् त्रायकम् (सायण)। वामम्—वननीयम् (सेवनीय)—सायण।

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात् परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं विशतून्ताढि वि मृधो नुदस्व।
(अथर्व, ७, ८४, ३)

हे इन्द्र, वन्य पशु के समान भीषण, भ्रमणकर्ता, पर्वतस्थ, दूरस्थल से वह यहाँ आवे। अपने अस्त्र (सृकं) तिग्म वज्र को तीक्ष्ण करता हुआ, वह अरियों को मारे और दूर हटावे। विताढि = उस विशेष वज्र से अथवा विविध को मारो, विनष्ट करो (सायण)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मृधः = संग्रामोद्युक्तान् युयुत्सून् अन्यानपि शत्रून् अर्थात् संग्रामनिमित्त युद्धेप्सु अन्य शत्रुओं को भी (सायण)।

२६. संजय, परिपाण, काश्यप, देवमणि (अथर्व ८/५)

पुरुष सूक्त में और वैदिक साहित्य में अन्यत्र भी विराज् की पदवी, वरिमायुक्त, श्रैष्ठ्यसमन्वित और वर्चस्मंडित कल्पित की गयी है। अथर्ववेद में एक सपत्नकर्शण दिव्य मणि का वर्णन है, जिसका धारणकर्ता, समस्त दिशाओं में विराट्-पद-समासीन अथवा सर्व-दिक्-स्वामी हो जाता है (सर्वा दिशा विराजति, ८/५/१३) वृत्रविजय में भी इस वीर्यवान्, सहस्वान्, सपत्नहन्ता मणि ने अपराजित, सोमपा, अभयंकर, मघवा, इन्द्र की सहायता की थी। अतः इस संजय मणि का स्पष्ट राजनीतिक प्रयोजन है।

यह स्राक्त्य[1] मणि सर्वत्र रक्षण करे, कवि की यह कामना है। यह समस्त पृतनाओं और राक्षसों के ऊपर विजयप्रद है। जो लोग इस स्राक्त्य मणि को तनुत्राण के रूप में रखते हैं, उनके लिए यह दूसरों के उत्पादित कृत्याओं का नाश करता है। आङ्गिरसी, आसुरी, स्वयंकृता और परकृता कृत्याओं पर यह मणि विजयकारी है। अतः इन्द्र, विष्णु, सविता, रुद्र, अग्नि, प्रजापति, परमेष्ठी, विराज्, वैश्वानर और समस्त ऋषियों से प्रार्थना है कि विजयेच्छु पुरुष को इस मणि से विभूषित करें। यह देवकृत, सहस्रवीर्य, वर्म है और इसके धारण से विजय प्राप्त होता है। यह अरिष्ट से रक्षा करता है (अरिष्टतातये)। यह त्रिवरूथ (तीन बार संरक्षित) है। यह स्तम्भ (मथि = शत्रुविलोडयिता, शत्रुविनाशक—सायण) है और इसमें देवता अभिसंविष्ट होते हैं। इस मणि से व्याघ्र, सिंह और वृषभ की शक्ति प्राप्त हो जाती है। अप्सराएँ, गन्धर्व और मानव इस मणि से समन्वित पुरुष का बध नहीं कर सकते। आयुष्य और जरदष्टि (वृद्धावस्था अर्थात् दीर्घावस्था) के लिए भी यह तनूपान मणि प्रार्थनीय है। इस मणि के विषय में कहा है कि कश्यपों ने इसकी रचना की थी—कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् (८, ५, १४)। सायण के अनुसार यह प्रतिसर मणि तिलकवृक्षनिर्मित है। प्रतिसर = प्रतिसरणसाधन। परिपाणः = इस साधन से प्रयोक्ता यजमान की रक्षा करता है। सुमङ्गल = शोभन मंगल से युक्त।

ऋग्वेद में वज्रधारी इन्द्र सोमपान कर वृत्र अथवा नमुचि की हत्या करता है। किन्तु अथर्ववेद के इस सूक्त के अनुसार स्राक्त्य मणि ने इन्द्र को इन चार राजनीतिक कर्मों को करने में प्रभूत सहायता दी—

(क) वृत्र की हत्या
(ख) असुरों का पराभव
(ग) द्यावापृथिवी पर आधिपत्य
(घ) चार दिशाओं का जय

---

१. स्राक्त्य लकड़ी का बना मणि। स्राक्त्य = तिलकविकारः (सायण)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अतः कृत्या, दीक्षा और यज्ञ (श्येनयाग आदि) से जो मनुष्य इन्द्र के भक्त को हनन करने की इच्छा करता है, इन्द्र उसे मारे, ऐसी कामना है।

यह मणि संजय=संगतजय अथवा सम्यग् जेता है (सायण)।

२७. सेना-हनन सूक्त—कूट इन्द्रजाल और देवरथ (अथर्व० ८,८)

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरन्दरः ।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥१॥

शक्र, शूर, पुरन्दर, इन्द्र, जो मन्थन करने वाला है, मन्थन करे, जिससे शत्रुओं की हजारों सेनाओं का हम हनन करें ॥१॥

पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् ।
धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥२॥

सड़ी हुई रस्सी (पूतिरज्जु), श्वास लेती हुई (उपध्मानी) इस सेना को सड़ी गली बना दे। दूर में धूम और अग्नि को देखकर हमारे शत्रु भयग्रस्त हो जायँ ॥२॥

पूतिरज्जु को एक ही पद मानकर ग्रिफिथ ने इसका अर्थ किया है—दुर्गन्धयुक्ता लताविशेष। लुडविग के मत में पूतिरज्जु कोई सर्प है।

अमूनश्वत्थः निःश्रणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।
ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां हन्त्वेनान् वधको वधैः ॥३॥

ओ अश्वत्थ, उन आदमियों को चूर्ण कर दो, हे खदिर,, शीघ्र उन्हें खा डालो, वे शीघ्र-भङ्ग के समान भग्न हो जायँ, हन्ता उन्हें मारक शस्त्रास्त्रों से मार डाले ॥३॥

परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन सन्दिताः ॥४॥

परुषाह्व शत्रुओं में पुरुषता ले आवे, वधक इन्हें मारक शस्त्रों से मार डाले। बड़े जाल में बँध कर शर के समान, वे शीघ्र भग्न हो जायँ।

अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः ।
तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ॥५॥

अन्तरिक्ष जाल था, बड़ी दिशाएँ जालदण्ड थीं, उनसे (उनको) घेरकर, शक्र इन्द्र ने दस्युओं की सेना को विकीर्ण कर दिया ॥५॥

बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनोवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ॥६॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वाजसम्पन्न वृहत् शक्र का जाल बड़ा है—उससे समस्त शत्रुओं को घेर लो (न्यूब्ज) जिससे इनमें से कोई मुक्त न हो सके ॥६॥

बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेनं शतं सहस्रमयुतं न्युर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥७॥

हे महान् इन्द्र, शूर, सहस्रमूल्य वाले, सौ महान् कर्म करनेवाले, तुम्हारा जाल महान् है। दस्युओं की सेना को उससे घेरकर इन्द्र ने सौ, हजार, दश हजार (अयुत), दस करोड़ (न्युर्बुदं) मार डाला ॥७॥

अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥८॥

महान् पराक्रमी इन्द्र का यह महान् लोक जाल था, उस इन्द्रजाल से मैं इन सभी को अन्धकार से आवृत करता हूँ ॥८॥

सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना ।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ॥९॥

शक्तिक्षय, महती निराशा, दुर्लंघ्य (अनपवाचन) दुर्भाग्य, श्रम, तन्द्रा और मोह—इन से—उन सारे लोगों को आवृत कर लेता हूँ ॥९॥

मृत्यवेऽमून् प्रयच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः ।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥१०॥

उन सभी को मैं मृत्यु को देता हूँ, मृत्युपाश से वे बँधे हैं, मृत्यु के जो पापी (अघला)[1] दूत हैं—उनके लिए इनको बाँधकर ले जाता हूँ ॥१०॥

नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ।
परः सहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥११॥

मृत्युदूतो ! इनको ले जाओ । यमदूतो ! इनको रोको (अपोम्भत), हजारों से अधिक की संख्या में वे मारे जायँ, भव (शिव ?) की गदा इन्हें चूर्ण कर डाले ॥११॥

साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा ।
रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥१२॥

---

१. ह्वीट्ने ने अघला का अर्थ उदास (sad) किया है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

साध्यगण एक जालदंड को ओज से उठाये ले जाते हैं, एक को रुद्र, एक को वसुगण, और आदित्यों से एक उठाया जाता है ॥१२॥

विश्वे देवा उपरिष्टादुज्जन्तो यन्त्वोजसा ।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् ॥१३॥

विश्वेदेव, ऊपर से, ओज से दाबते हुए जायँ । अङ्गिरस[1] बड़ी सेना को, बीच से मारते हुए जायँ ॥१३॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१४॥

वनस्पतियों को, वानस्पत्यों को, ओषधियों को और लताओं को, द्विपदों को, चतुष्पदों को मैं भेजता हूँ, जिनसे वे उस सेना का हनन करें ॥१४॥

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१५॥

गंधर्वों, अप्सराओं, सर्पों, देवताओं, पुण्यजनों और पितरों, दृष्टों, अदृष्टों को मैं भेजता हूँ, जिनसे उस सेना का वध हो ॥१५॥

इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥१६॥

ये मृत्युपाश बिखरे हुए हैं, जिनमें जाने पर मुक्त नहीं होगे, यह कूट हजारों की संख्या में उस सेना को मारे ॥१६॥

धर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः ।
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् ॥१७॥

अग्नि से उष्णपेय (घर्म) दीप्त होता है, यह हजारों को मारने वाला होम है—हे शर्व ! भव और पृश्निबाहु, उस सेना को मारें ॥१७॥

मृत्योरोषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् ॥१८॥

मृत्यु के दाहकत्व (ओषम्)[2] में वे गिरें, क्षुधा में, शक्तिहीनता (सेदि) में, वध में (और) भय में—हे शर्व ! अक्षु और जाल से इन्द्र (और तुम) इस सेना को मार डालो ॥ १८॥

पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥१९॥

---

१. इस मंत्र से, अङ्गिरस पुरोहित, बड़े योद्धा प्रतीत होते हैं। संभवतः वे परशुराम के पूर्ववर्ती हों।

२. सायण के अनुसार पाठ है आषम् = आस्यम् (अर्थात् मुख को)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पराभूत और त्रासग्रस्त शत्रुओ ! ब्रह्म द्वारा पीड़ित (नुत्ता), दौड़ो। बृहस्पति से प्रताड़ित, उनमें से कोई बचने न पावे अर्थात् मुक्त न रहे ॥१९॥

अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम्।
अथैषां बहु विघ्न्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥२०॥

इनके आयुध गिर जायँ, वे बाण को ठीक न कर सकें। इन प्रभूत भयार्तों के मर्म-स्थल को बाण आहत करें ॥२०॥

सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्ष सह देवताभिः।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥२१॥

द्यौः और पृथिवी, देवताओं के साथ अंतरिक्ष, इन पर संक्रोश व्यक्त करें, वे कोई ज्ञाता (और) प्रतिष्ठा न पा सकें, परस्पर हत्या करते हुए वे मृत्यु को प्राप्त करें ॥२१॥

दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः।
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक् परिरथ्यम् ॥२२॥

देवरथ की चार दिशाएँ अश्वतरियाँ हैं, पुरोडाश खुर (शफ) है, अंतरिक्ष बैठने का स्थान है, द्यौः और पृथिवी दोनों पक्ष (कृष्ण और शुक्ल), ऋतुएँ प्रग्रह, अंतर्देश नौकर (किंकराः), वाणी मार्ग (परिरथ्यम्) है ॥२२॥

संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम्।
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः ॥२३॥

वर्ष रथ है, परिवत्सर रथ का उपस्थ है, विराज्-दण्ड (ईषा = Pole), अग्नि रथ का मुख, इन्द्र वामभागस्थित (और) चन्द्रमा सारथि है ॥२३॥

इतो जयेतो विजय संजय जय स्वाहा।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः।
नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि ॥२४॥

यहाँ जय प्राप्त करो। यहाँ विजयी हो, सम्यक् प्रकार से जय प्राप्त करो, जीतो, स्वाहा। ये यहाँ जय प्राप्त करें, वहाँ वाले पराजित हों, उनके लिए स्वाहा। उनके लिए दुराहा, नीललोहित के साथ मैं उन पर आवृत होता हूँ (अभ्यवतनोमि) ॥२४॥

सायण के अनुसार इस सूक्त का चार कर्मों (सेनाकर्म) में विनियोग है—(क) शत्रुक्षय, (ख) शत्रुभयनाशन, (ग) शत्रुजय, (घ) स्वकीय बलवर्धनकर्म।

राजनीतिक प्रक्रिया और व्यवस्था की दृष्टि से इस सूक्त के दो मंत्रों में (२२-२३) देवरथ की कल्पना उल्लेखनीय है—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उपमेय जागतिक (Macrocosmic)	उपमान रथात्मक (Microcosmic)
१. चार दिशाएँ	१. अश्वतरी
२. पुरोडाश	२. खुर
३. अन्तरिक्ष	३. उद्धि
४. द्यावापृथिवी	४. कृष्ण और शुक्ल पक्ष
५. ऋतु	५. लगाम
६. अन्तः देशाः	६. किंकर
७. वाक्	७. परिरथ्य (मार्ग)
८. संवत्सर	८. रथ
९. परिवत्सर (full year)	९. रथ का उपस्थ
१०. विराड्	१० ईषा (दण्ड)
११. अग्नि	११. रथमुख (chariot's front)
१२. इन्द्र	१२. सव्यष्ठाः (वाम में बैठनेवाला)
१३. चन्द्र	१३. सारथि

यह एक प्रकार से विराट् जागतिक विजय-यात्रा का आलंकारिक वर्णन है। वैदिक कवि काल को शीघ्रजव देव रथ के रूप में कल्पित कर रहा है।

जय-विजय-संजय के साधनभूत देवरथ का राजनीतिक स्वरूप स्पष्ट ही है। राजनीतिक सावयववाद, प्लेटो, शेफ्ल, लिलियेनफेल्ड, वर्म्स, स्पेन्सर और ब्लूंशली की कृतियों में उपलब्ध है। एक प्रकार से हाब्स के 'लेभायथन' नामक ग्रंथ के प्रारंभ में भी राजनीतिक सावयववाद का उपस्तम्भन है। पुरुषसूक्त और भगवद्गीता में विराट् जागतिक सावयववाद समर्थित है। इस देवरथ की कल्पना उपमान-उपमेय पर आधृत है। इस सूक्त की उपमाएँ कल्पना का विस्तार भी उपस्थित करती हैं।

२८. ब्रह्मचर्यसूक्त[1] और राजनीति

अथर्ववेद (११, ५, १७) में कहा है कि ब्रह्मचर्य और तपस्या से राजा राष्ट्र का विरक्षण करता है। ब्रह्मचारी का वर्णन करते हुए उसे कृष्णाजिनधारी दीर्घश्मश्रु तथा समिधा और मेखला से युक्त बताया है। वह श्रम करता हुआ तपस्वी है। संभवतः राजा के लिए भी इस प्रकार की कठोर तपस्या का निर्देश रहा हो। परवर्ती साहित्य से इसका समर्थन होता है। ब्रह्मचर्य और तपस् को राष्ट्र-विरक्षण का साधन मानने से, राष्ट्र भोगैषणा की तुष्टि का मार्ग है, ऐसा मन्तव्य स्पष्ट खंडित होता है। वाल्मीकीय रामायण,

१. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, स्टडिज इन दि फिलासफी ऑफ एजूकेशन, पृ० ९-१२

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शांतिपर्व और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा को अरि-षड्-वर्ग का विजय करने को कहा है। संभवतः नैतिक राजनीतिशास्त्र का बीज अथर्ववेद के इस मंत्र में—'ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति'-है। ब्रह्मचर्य और राजनीति का महत्त्व व्यक्त करते हुए यह भी कहा है कि प्रजापति भी ब्रह्मचारी है और उसी कारण से विशेष रूप से प्रकाशित है और इन्द्र भी है—ब्रह्मचारी प्रजापतिः। प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रो भवद् वशी (अथर्व० ११, ५, १६)। असुरनाश का कार्य करने में भी ब्रह्मचारी समर्थ होता है। इस भूमि पृथिवी को भी ब्रह्मचारी ने भिक्षा-जैसा ही लाया है (इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार—११, ५, ९), इस कथन से भी ब्रह्मचारी का राजनीति से संबंध व्यक्त होता है।

२९. विजयनिमित्त अर्बुदि की अभ्यर्थना (अथर्व० ११। ९)

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च।
असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्हृदि।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्रदर्शय ॥ १ ॥

जो बाहु, जो बाण, धनुओं, तलवारों, खड्गों, आयुध का पराक्रम और जो चित्त का संकल्प हृदय में है—हे अर्बुदे! तुम उन सबको शत्रुओं को दिखाओ और भूतप्रेत (उदार) दिखाओ ॥ १॥ ऐतरेय ब्राह्मण (६, १) के अनुसार कद्रु के पुत्र अर्बुद मन्त्रकृत् सर्पऋषि हैं—अर्बुदः काद्रवेयः सर्पऋषिर्मन्त्रकृत्। अर्बुद के दो पुत्र हैं—अर्बुदि और न्यर्बुदि (अर्बुद + इञ् = अर्बुदि)।

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे! ॥२॥

तुमलोग उठो, तैयारी कर लो, ओ देवजन मित्रो! संदृष्ट और परिरक्षित (अथवा अलक्षित=गुप्त) वे हों, जो हमारे मित्र हैं, अयि अर्बुदे! ॥ २ ॥

उत्तिष्ठतमा रभेथांमादानसंदानाभ्याम्।
अमित्राणां सेना अभिधत्तमर्बुदे! ॥३॥

तुम दोनों उठो, अधिकार करो, आदान और संदान के द्वारा, हे अर्बुदे! और न्यर्बुदे! हमारे सपत्नों की सेना को तैयार करो (अभिधत्तम्) ॥ ३

अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥ ४ ॥

जिस देव का नाम अर्बुदि है और ईशान न्यर्बुदि, जिन दोनों से अंतरिक्ष और विस्तृत पृथिवी आवृत हैं,—उन दोनों के साथ इन्द्र जिनका मित्र है, सेना से पराजितों, का अनुगमन करता हूँ ॥ ४ ॥ सायण के अनुसार अर्बुदि सर्पात्मक देव है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह।
भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परिवारय ॥ ५ ॥

ओ देवजन अर्बुदे ! सेना के साथ खड़े हो जाओ, हमारे शत्रुओं की सेना का भञ्जन करते हुए, उसे गड़ी हुई चीजों से (भोगेभिः) आवृत करो ॥ ५ ॥ सायण के अनुसार भोग सर्पशरीर है।

सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन्
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६ ॥

ओ न्यर्बुदि ! सात प्रकार के भूतवेतालों को दिखाकर, उन सभी के साथ (और) सेना के साथ तुम उठो, जब आज्य की आहुति दी जाती है ॥ ६ ॥

प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७ ॥

अपने को ताडित करती हुई, अश्रुमुखी, कृधुकर्णी (भग्नकर्णी), विकेशी जोरों से चिल्लाये, जब उसका पुरुष तुम्हारे द्वारा हत होता है, काटा जाता है, ओ अर्बुदे ॥ ७ ॥

संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती।
पतिं भ्रातरमात्स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥ ८ ॥

करुकर को लेती हुई और मन से पुत्र, पति, भाई, अपने आदमी की इच्छा करती हुई—तुम्हारे काटने पर ओ अर्बुदे ॥ ८ ॥ करूकर का अर्थ है गर्दन और मेरुदंड का संगम स्थल अथवा कीकस (Vertebra)।

अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः।
घ्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्स्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ ९ ॥

अलिक्लव (buzzards), जाष्कमद, गृध्र, बाज, मांसभक्षी पक्षी, कौवे आदि विहंगम, तृप्त हों—शत्रुओं के बीच प्रदर्शित करते हुए—तुम्हारे काटने पर, ओ अर्बुदे ! ॥९॥ अलिक्लवाः का अर्थ सायण के अनुसार ढीठ पक्षी (धृष्टाः पक्षिणः) है। जाष्कमद का अर्थ सायण के अनुसार है शरीर को अवसाद देने वाले पक्षी – क्लमस्य शरीरावसादस्य दात्र्यः।

अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥ १० ॥

समस्त वन्यजन्तु, मक्षिका, कृमि, मृत पुरुषों के मांस से तृप्त हों—तुम्हारे काटने पर ओ अर्बुदे ! ॥१०॥

आ गृहणीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे।
निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥११॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ठीक से पकड़ो, प्राण और अपान को खींच लो, ओ न्यर्बुदे ! चीत्कार के घोष सम्यक् एकत्र हों—शत्रुओं के बीच प्रदर्शित करते हुए—तुम्हारे काटने पर, ओ अर्बुदे ! ॥११॥

उद् वेपय संविजन्तां भियामित्रान्त्संसृज ।
उग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥१२॥

उनको कंपा दो—वे एक साथ थरथरायं, भय से हमारे शत्रु संयुक्त रहें । हे न्यर्बुदे । चौड़े पकड़ने वाले बाहु-अंकुशों से हमारे शत्रुओं को छेद दो ॥१२॥

मुह्यन्त्वेषां दोहवश्चित्तान्युतं च यद्धृदि ।
मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव । १३॥

इनकी भुजाएँ और चित्त के जो संकल्प हृदय में हैं, वे मूढ़ हो जायँ । इनका कुछ भी शेष न रहे, तुम्हारे काटने पर ओ अर्बुदे ! ॥१३॥

प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटौरावाघ्नानाः ।
अघारिणी विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥१४॥

अपना ताड़न करती हुए उन्हें दौड़ने दो, वक्ष, जंघा में मारती हुई, अनभिषिक्ता, (अघारिणी), मुक्तकेशी, अपने पुरुष के मारे जाने पर रोती हुई—तुम्हारे काटने पर ओ अर्बुदे ॥१४॥

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे ।
अन्तः पात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरुदारांश्च प्रदर्शय ॥१५॥

ओ अर्बुदे, कुत्तों के साथ अप्सराएँ, रूपका (शृगाली) भी भीतर के पात्र को चाटती हुई, दुर्णिहित को खोजती हुई रिशा, इन सभी को हमारे शत्रुओं को दिखाओ, ओ अर्बुदे ! और भूतवेतालों को भी उन्हें दिखाओ ॥१५॥

खडूरेधि चक्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥१६॥

खडूर, दूरभूत आकाश पर चढ़ने वाली, भग्नांगा, भग्न (वस्त्र) को पहननेवाली और जो भूतवेताल अन्तर्हित हैं तथा गन्धर्व और अप्सराएं, सर्प, अन्यजन (यक्ष), राक्षस—इन्हें भी शत्रुओं को दिखाओ ॥१६॥

चतुर्दंष्ट्रांछ्यावदतः कुम्भमुष्कां असृङ्मुखान् ।
स्वम्यसा ये चोद्भसाः ॥१७॥

चार दाँतों वाले, कृष्णदन्त कुम्भवृषण, रक्तमुख, जो भयार्त और भयोत्पादक हैं, इन्हें भी हमारे शत्रुओं को दिखाओ ॥१७॥

उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः ।
जयंश्च जिष्णुश्चामित्रां जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥१८॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शत्रु-सेना की जो वह पंक्ति है, हे अर्बुदे ! उसे कंपाओ, हे इन्द्र-मित्रो ! विजयी और जिष्णु हमारे शत्रुओं को जीतें ॥१८॥

प्रव्लीनो मृदितः शर्याहतोऽमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥१९॥

हे न्यर्बुदे ! हमारे शत्रु पूर्णतः मर्दित (प्रव्लीन), नीचे पददलित और हत हो जायँ । अग्निजिह्वाये, धूमशिखायें, सेना के साथ विजय करती हुई जायँ ॥१९॥

तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।
अमित्राणां शचीपतिर्ममीषां मोचि कश्चन ॥२०॥

हे अर्बुदे ! इसके द्वारा अर्थात् हमारी सेना के द्वारा प्रणुत्त (धक्का खाते हुए) शत्रु-सेना के प्रत्येक श्रेष्ठ पुरुष को शचीपति इन्द्र मार डाले, इनमें से कोई भी बचा न रहे ॥२०॥

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वर्तताममित्रान् मोत मित्रिणः ॥२१॥

उनके हृदय टूट जायँ, उनके प्राण ऊपर चले जायं, मुख की शुष्कता हमारे शत्रुओं का अनुसरण करे, हमारे मित्रों का नहीं ॥२१॥

ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः ।
सर्वांस्तां अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरुदारांश्च प्रदर्शय ॥२२॥

जो धीर हैं, जो अधीर हैं, जो दूरगामी (पीठ दिखाने वाले) हैं और जो वधिर हैं, जो तमसावृत हैं, जो शृंगहीन हैं, जो अजा के गंधवाले (बस्ताभिवासिनः) हैं, उन्हें—ओ अर्बुदे ! हमारे शत्रुओं को दिखाओ और उन्हें भूतवेताल भी दिखाओ ॥२२॥

अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥२३॥

अर्बुदि और त्रिषन्धि दोनों हमारे शत्रुओं को छेद डालें, जिससे, हे वृत्रहन्ता शचीपति इन्द्र । हम अपने शत्रुओं को हजारों की संख्या में मारें ॥२३॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ॥
सर्वांस्तां अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरुदारांश्च प्र दर्शय ॥२४॥

वनस्पतियाँ, वनस्पतियों से उत्पन्न ओषधियाँ, वीरुध, गन्धर्व और अप्सराएं, सर्प, देव, पुण्यजन (यक्ष) और पितर,—हे अर्बुदे, इन सभी को हमारे शत्रुओं को दिखाओ और भूतवेतालों को भी दिखाओ ॥२४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥२५॥

तुमलोगों के ऊपर (ईशां) मरुत्, आदित्य, ब्रह्मणस्पति ने प्रभुता प्राप्त की। इंद्र और अग्नि, धाता, मित्र और प्रजापति का तुमलोगों के ऊपर ईशित्व है, ऋषियों का तुम्हारे ऊपर ईशित्व है—हमारे शत्रुओं के बीच समीक्षा करते हुए—ओ अर्बुदे, तुमसे काटे जाने पर ॥२५॥

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वम् ।
मित्रा देवजना यूय—
मिमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥२६॥

उन सभी के ईशानो ! तुम सभी उठो, तैयारी कर लो, ओ मित्रो, देवजनो ! तुम इस संग्राम में सभी सम्यक् विजय प्राप्त कर यथेच्छित लोकों में बैठो ॥२६॥

३०. सेनानिलिम्पन-त्रिषन्धि-मन्त्र (अथर्व ११।१०)

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥१॥

प्रेतो (उदाराः) उठो, तैयारी कर लो ध्वजाओं के साथ। हे सर्पो, अन्य जनों, (यक्षों) राक्षसो, हमारे शत्रुओं के पीछे दौड़ो ॥१॥

ईशां वो वेद राज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह ।
ये अन्तरिक्षं ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः ।
त्रिषन्धेस्ते चेतांसि दुर्णामान उपासताम् ॥२॥

ओ त्रिषन्धे, मैं तुमलोगों के ईशित्व, (और) राज्य को जानता हूँ, रक्तवर्ण ध्वजाओं के साथ। जो अन्तरिक्ष में, जो द्यौः में और जो पृथिवी पर मानव हैं, हे त्रिषन्धे ! वे सभी कुख्यात, तुम्हारे चेतस् में आसीन हों ॥२॥

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥३॥

लोहमुख, सूचीमुख, और विकंकतीमुख, कच्चा मांसभक्षी (क्रव्यादः), वायु के समान शीघ्रधावक, त्रिषन्धिवज्र के साथ हमारे शत्रुओं पर आ धमकें ॥३॥ सायण ने त्रिषन्धि का अर्थ किया है वज्राभिमानी या वज्रात्मक देव। इस मंत्र में ऐसा कथन है कि त्रिषन्धि से प्रेरित विभिन्न प्रकार के भीषण पक्षी शत्रुओं का नाश करें।

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।
त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हे जातवेदस् आदित्य ! काफी नरमाँसों को अन्तर्हित रक्खो। त्रिषन्धि की यह सेना मेरे वश में सुस्थापित हो ॥४॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह।
अयं वलिर्व आहुतस्त्रिषन्धे राहुतिः प्रिया ॥५॥

हे देवजन अर्बुदे ! सेना के साथ उठो, यह बलि तुम लोगों (अर्बुद और त्रिषन्धि) के लिये दी गई है, आहुति त्रिषन्धि के लिये प्रिय है ॥५॥

शितिपदी संद्यतु शरव्येयं चतुष्पदी।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ॥६॥

श्वेतपदा साथ बाँधे, यह चतुष्पद वाणवेध्य (शरव्य) है। हे कृत्ये (जादूटोने), त्रिषन्धि की सेना के साथ, तुम हमारे शत्रुओं के लिए हो ॥६॥

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥७॥

धूमाक्षी (दानव) एक साथ गिरे, कृधुकर्णी (भग्नकानोंवाली) जोर से चिल्लाये। त्रिषन्धि की सेना से विजित होने के काल में ध्वजाएँ लाल हों ॥७॥

अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥८॥

जो पक्षी, विहंगम, अंतरिक्ष और द्युलोक में विचरण करते हैं, वे नीचे आवें। वन्यजंतु और मक्खियाँ साथ पकड़ लें (संरभंताम्), कच्चा माँस खानेवाले गृध्र, मानव-शव खोदें (रदन्ताम्) ॥८॥

यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत माऽमुतः ॥९॥

हे बृहस्पते ! जिस संधा (शर्तनामा) को तुमने इन्द्र और ब्रह्म से किया है, उसी इन्द्रसंधि (इन्द्रसंधया) से मैं सभी देवों को यहाँ बुलाता हूँ। वे इस ओर विजय दें उधर नहीं ॥९॥

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः।
असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ॥१०॥

अङ्गिरसगोत्रोत्पन्न बृहस्पति, (और) ब्रह्मजूत ऋषिगण, असुरों का क्षय करने वाले मारकशस्त्र, त्रिषन्धि को द्यौः में आश्रित करें ॥१०॥

येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः।
त्रिषन्धिं देवा अभजन्तोजसे च बलाय च ॥११॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जिस के द्वारा संरक्षित वह आदित्य और इन्द्र दोनों स्थित हैं, (उस) त्रिषन्धि का भाग ओजस् और बाज के लिए, देवताओं ने ग्रहण किया ॥११॥

सर्वाँल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥१२॥

उस आहुति से देवताओं ने समस्त लोकों का विजय कर लिया—अङ्गिरस्गोत्रोत्पन्न बृहस्पति ने जिस असुरक्षयकारी, वधकारी, अस्त्र को गिराया (अथवा बनाया = असिञ्चत) ॥१२॥

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम्।
तेनाहममूं सेनां निलिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥१३॥

आङ्गिरसगोत्रोत्पन्न बृहस्पति ने जिस असुरक्षयकारी, मारक शस्त्र को बनाया, उससे हे बृहस्पते ! मैं उस सेना को पूरा नष्ट (निलिम्पामि) करता हूँ, ओज से अमित्रों को मारता हूँ ॥१३॥

सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम्।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत माऽमुतः ॥१४॥

वषट् उच्चारण के साथ (परिदत्त हव्य को) खानेवाले समस्त देव यहाँ आते हैं, इस आहुति को प्राप्त करें, इधर वे विजय प्रदान करें, उधर नहीं ॥१४॥

सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया।
संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥१५॥

समस्त देव यहाँ आ जायँ, त्रिषन्धि को आहुति प्रिय है—जिससे पूर्वकाल में असुर पराजित हुए, उस बड़े सन्धापत्र का (शर्तनामा) रक्षण करो ॥१५॥

वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु।
इन्द्र एषां बाहून् प्रति भुनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम्।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥१६॥

वायु शत्रुओं के बाणाग्रभागों को नवावे। इन्द्र इनकी बाहुओं को तोड़ दे, जिससे धनुष पर बाण चढ़ाने में वे समर्थ न हों, आदित्य इनके अस्त्रों का नाश कर दे, चन्द्रमा, जो गया नहीं है, उसके मार्ग में, इन्हें रक्खे ॥१६॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥१७॥

यदि वे देवपुरों में गये हैं, ब्रह्म को अपना वर्म (रक्षक) बनाया है, शरीर-रक्षक और सम्यक् त्राणकर्ता बनाकर उत्साहित हुए हैं अर्थात् साहसी बने हैं (उपोचिरे), उन सभी को रसहीन अर्थात् शक्तिहीन कर दें ॥१७॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्रव्यादाननुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम्।
त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्रपद्यस्व ॥१८॥

पुरोहित को क्रव्याद अग्नि और मृत्यु का अनुवर्तक बनाते हुए हे त्रिषन्धे ! सेना के साथ जाओ, शत्रुओं का विजय करो, आगे बढ़ो ॥१८॥

त्रिषन्धे तमसा त्वमित्रान् परि वारय।
पृषदाज्यप्रणत्तानां माऽमीषां मोचि कश्चन ॥१९॥

हे त्रिषन्धे ! शत्रुओं को अन्धकार से आवृत करो, पृषदाज्य (दधिमिश्र आज्य) से पकड़े हुए या ढकेले गये (प्रणुत्तानां) इनमें से कोई मुक्त न हो सके ॥१९॥

शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥२०॥

हमारे शत्रुओं की उस पंक्ति पर श्वेतपदा (शितिपदी) गिरे। ओ न्यर्बुदे ! आज शत्रुओं की वह सेना मूढ़ (मूर्छित) हो जाय ॥२०॥

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम्।
अनया जहि सेनया ॥२१॥

हे न्यर्बुदे ! मेरे शत्रु मूढ़ (मूर्छित) हो जायँ, उनके श्रेष्ठ लोगों को मार डालो, इस सेना के साथ उन्हें मारो ॥२१॥

यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि।
ज्यापाशैः कवचपाशै रज्मनाभिहतः शयाम् ॥२२॥

जो कवचयुक्त है, जो कवचयुक्त नहीं है, जो सेना युद्धार्थी है, धनुषपाशों, कवच-पाशों, से युद्ध-प्रयाण से अभिहत, वे सभी, सो जायँ ॥२२॥

ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः
सर्वांस्तान् अर्बुदे हतांछ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥२३॥

जो अंगत्राणयुक्त हैं जो अंगत्राणयुक्त नहीं है, जिन शत्रुओं को अंगत्राण है, हे अर्बुदे ! उन सभी को, जो हत हो गये हैं, कुत्ते भूमि पर खायँ ॥२३॥

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥२४॥

जो रथारूढ़ हैं, जो रथविहीन हैं, जिन्हें बैठने का स्थान है, जिन्हें बैठने का स्थान नहीं है, उन सभी मारे हुओं को, गृध्र, श्येन, मांसभक्षी पक्षी खायँ ॥२४॥

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम्।
विविद्धा ककजाकृता ॥२५॥

हमारे शत्रुओं की सेना, विशेष रूप से काटी गई, पूरी काटी गई हजार शवों के साथ, आयुधास्त्रों के साथ किये जाते हुए, समर में, सोये ॥२५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मर्माविधं शोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितंमृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिमित्रो नो युयुत्सति ॥२६॥

जो मर्मस्थलविद्ध हैं, दीर्घरुदन करते हैं, दुश्चित्त हैं, नीचे (सोये) हैं, उन्हें सुपर्ण पक्षी खा डालें। कौन हमारा शत्रु इस प्रतिपक्षगामी आहुति से युद्ध करने की कामना करेगा ॥२६॥

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्यां नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥२७॥

जिस (आहुति) का देवगण अनुसरण करते हैं, जिसका असाफल्य नहीं है, उस त्रिषन्धि-वज्र से वृत्रहन्ता इन्द्र मारे ॥२७॥

३१. ब्रह्मगवीसूक्त (अथर्व० १२।५)

ब्रह्मगवीसूक्त के अनुसार, ब्राह्मण-क्षत्रिय-संघर्ष में, गोशक्ति ब्राह्मण का सम्पोषण करती है, इस आशय का जबर्दस्त समर्थन है। ब्राह्मण की गौ श्रम और तपस्या से सृष्ट, सत्यावृत और श्री-यशस्सममन्वित है। यदि दम्भवश, क्षत्रिय उसे लेने का उपक्रम करेगा तो उसका सूनृत, वीर्य और लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। उसके ओज, तेज, श्री और धर्म, ब्रह्म, क्षत्र, राष्ट्र, विशः, आयु, रूप, नाम, कीर्ति, प्राण, अपान, इन्द्रियाँ, अन्न, सत्य, प्रजा, पशु, सभी नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मगवी में समस्त क्रूर कर्म, और पुरुष का वध करने वाले पदार्थ भी हैं। वह शतवधा मेनि (अस्त्र) है और मारी जाने पर ऋति है। अङ्गिरा की पुत्री, ब्रह्मगवी, अभूति, पराभूति, क्रुद्ध शर्व, शिमिदा है। वह शत्रुओं के पितृबन्धु और मातृबन्धु, विवाह और कुल का भी विनाश कर देती है। गृह, स्वर्ग और प्रजा से भी उसे विरहित कर देती हैं। यदि सत्ताधारी ब्रह्मगवी को ले लेगा तो गृध्र उसके (सत्ताधारी के) वध पर आनन्द मनावेंगे। पापकर्त्ता, देवपीयू, कृपण के शिर का खण्डन करने (अघ्न्ये प्रशिरो जहि) का सामर्थ्य उसमें है।

ब्रह्मगवीसूक्त, विस्तीर्ण होते हुए वर्णयुद्ध की घोषणा करता है।[1] ब्राह्मणवादी अथर्ववेदीय कवि, ब्रह्मद्वेषी के स्कन्ध, शिर, लोभ, त्वच्, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा, अंग, पर्व आदि को चकनाचूर करना चाहता है। यह सारा ६३ मंत्रों का सूक्त घृणा, द्वेष और भयंकर, आतंककारिणी हिंसा के भाव से भरा है। इसमें ब्राह्मण-वर्ण के जो

१. "अथर्ववेद में एक ओर पुरोहितों, जात्यध्यक्षों तथा सामान्यजनों, इन तीन आर्यों, और दूसरी ओर आदिम सेवकवर्ग (दस्यु, शूद्र) में अनिवार्य परिनिष्ठित प्रागैतिहासिक विभेद स्पष्ट है, जिसके अनुसार न केवल इन्हीं दोनों (आर्यों तथा शूद्रों) में, अपितु प्रथम तीन, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में भी विभेदक रेखा खींच चुकी है।"—ब्लूमफील्ड, अथर्ववेद एवं गोपथ-ब्राह्मण, सूर्यकान्त कृत अनुवाद, पृ० ८।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्षत्रिय शत्रु हैं, उनके अनेक प्रकार के वध की बातें हैं। युद्धोन्माद से भरे हुए इस सूक्त में गाँधीवादी सत्याग्रह और आत्मबल का सन्देश खोजना[1] निरर्थक और भ्रामक है। क्रोध से परीशान कवि आकुलकण्ठ बोलता है—काटो। काटो। काटो। जलाओ। जलाओ। (छिन्ध्याच्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय)। समूल दाह का घोर, बीभत्स, दारुण संदेश यहाँ उपस्थित किया गया है (वृश्च प्र वृश्च दह प्रदह संदह)। भीम ब्रह्मगवी अघविषा, प्रचण्ड विषपूर्ण साक्षात् कृत्या (जादू-टोना से पूर्ण), राजयक्ष्मा के समान, तक्मा के समान है और ग्रहण करने पर (उद्धृता) आशीविषवत् (सर्प-दन्तविष) हो जाती है। स्पष्ट है कि समस्त घातक तत्त्वों का केन्द्रीकृत रूप ब्रह्मगवी में है।

३२. अथर्ववेदीय रागात्मक राष्ट्रवाद (अथर्व० १२,१)

पृथ्वी को गौरवान्वित कर क्षेत्रीय रागात्मिका अनुभूति का प्रकटीकरण वैदिक कवियों ने किया है। निघंटु के अनुसार पृथ्वी के २१ नाम हैं—गौः। ग्मा। ज्मा। क्ष्मा। क्षा। क्षमा। क्षोणी। क्षितिः। अवनिः। उर्वी। पृथिवी। मही। रिपः। अदितिः। इडा। निर्ऋतिः। भूः। भूमिः। पूषा। गातुः। गोत्रा। ऋग्वेद (१०,८९,४) में पृथिवी की चक्र (चक्रिया) से तुलना की है। अन्यत्र ऋग्वेद (१०,५८,२) में भूमि को चतुष्कोणात्मिका (चतुर्भृष्टिम्) कहा है। तिस्रो भूमीः का भी उल्लेख (ऋग्वेद ७,८७,४) में है। अथर्ववेद का पृथिवीसूक्त भारतभूमि की विशालता और इसके नानाविध वस्तुओं का विराट् गौरवान्वयन है। अग्निचयन के प्रकरण में पृथिवीसंस्तुता स्वयमातृण्ण इष्टका को रखते हुए कवि कहता है (वा० सं० १३,१८) कि 'तुम भूः हो, भूमि हो, अदिति हो पृथिवी को दृढ़ करो और पृथिवी की हिंसा न करो—पृथिवीं मा दृंह, पृथिवीं मा हिंसीः।' पृथिवीसूक्त (अथर्व०, १२, १) में देशगौरव का महिमाभिज्ञापन है—

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥

बृहत् सत्य, उग्र ऋत, दीक्षा, तपस्, ब्रह्म और यक्ष पृथिवी को धारण करते हैं। वह भूत और भविष्य की अधीश्वरी (पत्नी) पृथिवी, हमलोगों के लिए विस्तृत लोक बनावे ॥१॥

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्याम् उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२॥

मनुष्यों के बीच बाधाराहित्य (हमें प्राप्त हो)। ऊपर की गति, प्रगति और बहु समतल जिसका है, जो पृथ्वी नानावीर्य, ओषधियों का भरण करती है, वह हमलोगों के लिए पृथु और समृद्ध हो ॥२॥

---

१. अभयदेव शर्मा, ब्राह्मण की गौ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३॥

जिस पर समुद्र, सिन्धु और जल हैं, जिस पर अन्न और कृषि (अर्थात् कोड़ना, कृष्टि) है, जिस पर प्राणधारी प्रवर्धित और गतिमान होते हैं, वह पृथ्वी हमें गौ और अन्न (पाठभेद दैन्य) में लगावे ॥३॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

जिसकी चार दिशाएँ हैं, जिसमें अन्न और कृष्टि है और प्राणियों और गतिशीलों को जो बहु प्रकार से पुष्ट करती है, वह पृथिवी हमें गौ और अन्न (पाठभेद दैन्य) में लगावे अर्थात् दे ॥४॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥

पूर्वकाल में, पूर्वजन जिसमें विस्तार से चलते रहते थे, जिस पर देवों ने असुरों को पराभूत किया, जो गायों, घोड़ों और पक्षियों का निवास स्थान है, वह पृथ्वी हमें धन और वर्चस् दे ॥५॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

जो भूमि विश्वंभरा[1], धनधात्री, दृढस्थिता, हिरण्यवक्षा, जगत का वासस्थान, वैश्वानराग्नि की धात्री है, वह, इन्द्र को बैल के रूप में रखनेवाली (इन्द्रऋषभा) हमें धन दे।

यां रक्षन्त्य स्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥७॥

जिस विश्वदानी पृथिवी की शयनहीन, प्रमादरहित, देवगण रक्षा करते हैं, वह हमें मधु, प्रिय (वस्तु) दे और वर्चस् से अभिषिक्त करे ॥७॥

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमेव्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमि स्त्विषि बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८॥

---

१. काठक संहिता (८, १७, पृ० १०२, श्रोयडर-संस्करण) में मंत्र है—सेना हे नाम पृथिवी धनञ्जया विश्वव्यचा अदितिस् सूर्यत्वक्। यहाँ पृथ्वी को धनंजया विश्वव्यचा और अदिति कहना अथर्ववेद के पृथिवी-सूक्त की शब्दावलि का स्मरण कराता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जो पूर्वकाल में अर्णव (महासमुद्र) के ऊपर सलिल (समुद्र या जल) में थी और विद्वज्जन माया से जिसे घुमाते (अन्वचरन्) थे, जिसका सत्यावृत, अमर, हृदय परम व्योम[1] में है, वह पृथिवी, हमें तेज और बल, उत्तम राष्ट्र[2] में धारण करावे ॥८॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥९॥

जिसमें समान रूप से, अहर्निश, प्रमादहीन, जल प्रवाहित होता है, वह अनेक धाराओं वाली पृथिवी हमें दुग्ध से और वर्चस से अभिषिक्त करे ॥९॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१०॥

जिसको अश्विनों ने नापा, जिस पर विष्णु ने चक्कर लगाया, जिसे शचीपति इन्द्र ने अपने लिये अमित्ररहित किया—वह पृथिवी—जैसे माता पुत्र के लिये—मेरे लिये दुग्ध दे ॥१०॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥११॥

ओ पृथिवी ! तुम्हारे पहाड़ और हिमाच्छादित पर्वत और अरण्य प्रसन्नतादायक (स्योन) हों। जो पृथिवी भूरी (बभ्रु) काली, लाल, अनेकरूपा, दृढ़ और इन्द्ररक्षित है, उस पर मैं जेता (अजीत), अहत और अक्षत होकर प्रतिष्ठित हुआ हूँ ॥११॥

यत् ते मध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२॥

अयि पृथिवी ! जो तुम्हारा मध्य और नाभि है और जो ऊर्जस् तुम्हारे शरीर से निकला है, उनमें हमें बिठाओ (धेहि)। हमें पवित्र करो। भूमि हमारी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ,। पर्जन्य (मेघ) पिता है, वह हमें पूर्ण और पुष्ट (पिपर्तु) करे ॥१२॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥१३॥

---

१. प्लेटो के फ़ेयडो (Phaedo) नामक ग्रंथ, पृ० ११४, में एक देवधामस्थित, ऊर्ध्वलोकनिहित, पृथिवी का उल्लेख है।

२. व्हीट्ने ने उत्तमे राष्ट्रे का अर्थ किया है—highest royalty.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जिस भूमि में वेदि का परिग्रहण (घेरना) करते हैं, जिसमें विश्वकर्मा यज्ञ को बढ़ाते हैं, जिसमें ऊर्ध्व और तेजस्वी यज्ञीय स्तम्भ आहुति के आगे है, वह वर्धमाना पृथिवी हमें बढ़ावे ॥१३॥

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥१४॥

जो हमसे द्वेष करेगा, जो हमसे लड़ेगा, जो मन से और जो वधकारी (अस्त्रशस्त्रों) से हमें तंग करेगा, हे पूर्वकारी पृथिवी ! उसे हमारी अधीनता में रक्खो (रन्धय) ॥१४॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्यः उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥

तुमसे उत्पन्न हुए मनुष्य तुम्हारे ऊपर चलते हैं, तुम द्विपदों और चतुष्पदों (पशुओं) का भरण करती हो। ये पञ्च मर्त्य मानव, जिनके लिए उदित होता हुआ सूर्य अपनी किरणों से अमृत ज्योति फैलाता है, तुम्हारे ही हैं ॥१५॥

तां नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६॥

समग्र प्रजाएँ हमारे लिये फल (संदुहतां) दें। पृथिवी, वाणी का मधु हमारे लिये धारण कराओ ॥१६॥

विश्वस्य मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१७॥

जो ओषधियों की सबकुछ उत्पन्न करनेवाली माता है, उस ध्रुवा भूमि, धर्मधृता कल्याणी, प्रिय (स्योन) पृथिवी पर हम सर्वदा चलें ॥१७॥

महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्रशोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत् कश्चन ॥१८॥

तुम, बड़ा स्थान हो, बड़ी (महती) हो गयी है, तुम्हारा वेग, गमन और कम्पन महान् है, प्रमादरहित हो महान् इन्द्र तुम्हारी रक्षा करता है। भूमे, सुवर्ण के संदृश् (रूप) में हमें चमकने दो, कोई भी हमसे द्वेष नहीं करे ॥१८॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥१९॥

अग्नि भूमि में और औषधियों में है, जल अग्नि को धारण करते हैं, अग्नि पत्थरों में है, अग्नि पुरुषों के भीतर है, गायों और घोड़ों में अग्नि है ॥१९॥

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥२०॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अग्नि, द्यौः में उष्णतासम्पन्न रहता है अथवा द्यौः से उष्णता प्रेषित करता है, विस्तृत अन्तरिक्षलोक अग्निदेव का है, हव्यवाह, घृतप्रेमी अग्नि को मरणशील मानव प्रतिबुद्ध करते है ॥ २० ॥

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्रूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ।

पृथ्वी अग्निवसना, कृष्ण-ठेहुनवाली हो मुझे तेजस्वी और तीक्ष्ण बनावे ॥२१॥

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।

भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।

सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२॥

अच्छी तरह से बनाया हव्य, यज्ञ. पृथिवी पर देवताओं को देते हैं । भूमि पर मरणशील मनुष्य अन्नरूपी स्वधा से जीवित हैं । वही भूमि हमलोगों को प्राण और आयु दे और वृद्धावस्था तक जीवित (जरदष्टि) रक्खे ॥२२॥

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।

यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु

मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२३॥

हे पृथिवी, जो तुम्हारा गंध हुआ, जिसे (गन्ध को) ओषधियाँ और जल धारण करते हैं, जिसका गन्धर्वों और अप्सराओं ने भागकरण किया, उससे तुम मुझे सुरभि-सम्पन्न करो, मुझसे कोई द्वेष न करे ॥२३॥

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेष यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।

अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्ने तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२४॥

हे पृथिवी, जो तुम्हारा गंध नीलकमल में है और जो पुराकाल में, देवताओं के द्वारा सूर्या के विवाह में लाया गया (संजभ्रुः), उससे मुझे सुरभि-सम्पन्न करो, कोई मुझ से द्वेष नहीं करे ॥२४॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।

यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।

कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्मां अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५॥

हे भूमे, जो तुम्हारा भगयुक्त, रुचिमान् गंध मानवों, पुरुषों और स्त्रियों में है, जो घोड़ों, वीरों, वन्यजन्तुओं और हाथियों में है, जो कन्याओं के वर्चस् के रूप में है, उससे हमें भी संयुक्त कराओ, कोई हमलोगों से द्वेष नहीं करे ॥२५॥

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥२६॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शिला, भूमि हैं, इसमें पत्थर और कण हैं। यह सम्यक् धृता, धृता है। सुवर्ण जिसके वक्षस्थल में है उस पृथिवी को मैंने नमस्कार किया है ॥२६॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि ॥२७॥

जिस पृथिवी पर सर्वदा वृक्ष और वानस्पत्य स्थिर खड़े रहते हैं जो सर्वधारिणी (विश्वधायसं) धृता है, उससे हम सम्यक् (अच्छा) वार्तालाप करते हैं ॥२७॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रकामन्तः।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥२८॥

उठते हुए, बैठते हुए, खड़े होते हुए, जोर से चलते हुए, हम दाहिने और बायें पैरों से पृथिवी पर व्यथित नहीं हों ॥२८॥

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि निषीदेम भूमे ॥२९॥

विशुद्धकारिणी (विमृग्वरी) पृथ्वी से मैं बोलता हूँ, पृथिवी क्षमा, ब्रह्मविवर्धिता है, वह ऊर्ज, पुष्टि, अन्नभाग और घृत को धारण करती है। हे भूमे! हम तुम पर बैठें। २९॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः स्येदुरप्रिये तं नि दध्मः।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥३०॥

शुद्ध जल हमारे शरीरों में प्रवाहित हो, जो हमारा सेदु (सेदि = कष्ट। सेदु = पीब ?) है उसे अप्रिय जनों में हम रखते हैं। हे पृथ्वी! शुद्धकारी वस्तु से मैं अपने को पवित्र करता हूँ ॥३०॥

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१॥

जो तुम्हारी पूर्व, उत्तर, नीचे की, और पश्चिम दिशाएँ हैं वे मुझ चलने वाले के लिए प्रिय हों, समाश्रय पाया हुआ मैं (शिश्रियाणः) भुवन पर गिरूँ नहीं ॥३१॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥३२॥

हमलोगों को पीछे, आगे, ऊपर और नीचे मत फेंको। हे भूमे! हमारे लिए कल्याणकारिणी बनो, मार्गदस्यु हमें न खोजें, वधकारी अस्त्र को बहुत दूर रक्खो ॥३१॥

यावत् तेऽश्नि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हे भूमे ! तुम्हारा जितना अंश सूर्य को सखा मानकर मैं देखता हूँ, उतने तक मेरी दृष्टि एक वर्ष के बाद दूसरे वर्ष उत्तरोत्तर मुझे कभी नहीं छोड़े ॥३३॥

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥३४॥

हे भूमे ! शयनावस्था में, मैं, दाहिनी और बायीं ओर करवट बदलता हूँ, उसमें (अवस्था में) तुम्हारे ऊपर जो पृथिवी हमसे मिलती है, उस पर पश्चिम की ओर अपनी पृष्टियों (ribs) के बल, उत्तान (चित) होकर हम पड़े रहें। हे भूमे ! वहाँ हमारी हिंसा न करो, तुम सबका आधार हो ॥३४॥

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥३५॥

जो तुम्हारा (भाग) मैं खनन करता हूँ, वह भी जल्दी बढ़ जाय। शुद्धकारिणी भूमे ! तुम्हारे मर्मस्थल और हृदय को मैं पीड़ित न करूँ ॥३५॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥३६॥

हे भूमे ! तुम्हारी विहित ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतुएँ, वर्ष, (हायन), दिन और रात्रि, हमारे लिए दुग्ध दे (दुहाताम्) ॥३६॥

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥३७॥

शुद्धकारिणी (पृथिवी) है, सर्प को कंपाता हुआ, जलांतर्वर्ती अग्नि जिसमें (पृथिवी जो जल, में) हैं, वे देवापमान करने वाले देवपीयू दस्युओं को छोड़कर, जिसमें वृष्ण वृषभ के समान शक्र इन्द्र को, वृत्र को नहीं, वरण किया है और उसके लिए अपने आपको रक्खा है ॥३७॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥३८॥

जिसमें सदस् (बैठने का स्थान, सभास्थल) और हविर्धान हैं, जिसमें यूप अवस्थापित है और जिसमें यजुर्वेदज्ञ पुरोहित (ब्रह्माणः) ऋचाओं और सामगान से अर्चना करते हैं। जिसमें ऋत्विज् पुरोहितगण, इन्द्र को सोमरस पिलाने के लिए एक साथ युक्त होते हैं। ॥३८॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण[1] वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥३९॥

---

१. रोथ—ह्वीट्ने-संस्करण में "सत्रेण" पाठ है। वैदिक प्रेस अजमेर में सन्त्रेण पाठ है, जो अशुद्ध है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जिसके ऊपर पुराकालीन भूतनिर्माता (भूतकृतः) ऋषियों ने पहले गाय का गान किया था और यज्ञ और तपस्या के साथ सात पवित्र पुरोहितों ने अपने सत्र यज्ञ किये थे, ॥३९॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥४०॥

वह पृथ्वी, जिस धन की हम कामना करते हैं, हमें (देने का) आदेश दे। भग देवता पीछे आ जाय, इन्द्र हमसे आगे जाय (पुरोगवः) ॥४०॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१॥

जिस भूमि पर मानव दीर्घ शब्द से (व्यैलवाः) नाचते और गाते हैं और जिस पर युद्ध करते हैं, जिस पर आक्रन्द (युद्धशब्द) होता है और दुन्दुभि बजती है, वह भूमि हमारे शत्रुओं को दूर हटावे, पृथ्वी हमें प्रतिद्वन्द्वी-रहित करे ॥४१॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥४२॥

जिस पर अन्न, चावल और यव और पाँच प्रकार के कृषिपदार्थ (कृष्टयः) हैं (अथवा पञ्चमानव हैं। पञ्चजन = five races, ह्वीट्ने) उस मेघपत्नी वर्षापरिवर्धिता भूमि को हमारा नमस्कार है ॥४३॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३॥

देवनिर्मित पुर जिसके हैं, जिसके क्षेत्र में विकर्म (विविध कर्म या उत्पत्ति) होता है (विकुर्वते) उस विश्वगर्भा पृथिवी को प्रजापति, प्रत्येक स्थान पर हमारे लिए आनन्दप्रद (रण्यां) बनावे ॥४३॥

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥४४॥

पृथिवी अनेक प्रकार की निधि (धन) और वसु छिपाकर (स्वगर्भ में) रखती है, वह हमें मणि और हिरण्य दे। वह वसुदा है, हमें धन (वसु) प्राप्त कराती हुई वह सुमनस्यमाना देवी हमें धारण करावे ॥४४॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥४५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जो पृथिवी अनेक वाणी बोलने वाले (विवाचसं), अनेक धर्मवाले (नाना धर्माणं) लोगों को गृहानुरूप (यथौकसम्) बहु प्रकार धारण करती है, वह ध्रुवा, स्फुरण न करने-वाले धेनु के समान, धन की हजार धारा हमें दे ॥४५॥

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद्
यच्छिवं तेन नो मृड ॥४६॥

जो सर्प, तीक्ष्णदंशनशील (तृष्टदंश्मा), हेमन्तजब्ध, भृमल, तुम्हारी गुहा में छिपा रहता है, और जो कृमि मानों विशेष जीवनशक्ति प्राप्त कर, वर्षा के आरम्भ में गतिशील होते है, वे सब सरकते हुए हमारे पास आवे, जो शिव है, उससे हमारा सुख कराओ ॥४६॥ ह्वीट्ने ने वृश्चिक को सर्प का विशेषण माना है, जो भ्रमपूर्ण है। हेमन्तजब्ध का अर्थ है शैत्याधिक्य से ठंढा। भृमल संभवतः कोई काटने वाला पशु या सरीसृप है। ग्रिफिथ ने इसका अर्थ किया है मूढ।

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं
यच्छिवं तेन नो मृड ॥४७॥

जो तुम्हारे जनायन (जन के जानेवाले जनपथ) अनेक पथ हैं, रथ के लिए और गाड़ी के जाने के लिए, जिस पर भद्र और पापी दोनों प्रकार के (मनुष्य) चलते हैं—उस शत्रुरहित और तस्कररहित मार्ग को हम जीतें, जो शिव है, उससे हमारा सुख कराओ ॥४७॥

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥४८॥

मूर्ख (मल्वं) को धारण करनेवाली, भारी पदार्थों को धारण करनेवाली (गुरुभृत्) भद्र और पापी, दोनों की मृत्यु को सहनेवाली, वराह से जानी जाती हुई (उसके ऐकमत्य से), पृथिवी वन्य सूकर के लिये अपने को खोलती है (जिहीते) ॥४८॥

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥४९॥

हे पृथिवि ! जो तुम्हारे आरण्य पशु, वनस्थ मृग, सिंह, व्याघ्र, मनुष्य का हनन करते घूमते हैं—शृगाल, वृक, दुर्भाग्य (दुच्छुना), ऋक्ष, राक्षस इनको हमसे बाहर निकालो ॥४९॥

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥५०॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हे भूमे ! जो गन्धर्व, अप्सराएँ, अरायस्, दुर्वृत-योनिसमुद्भूत किमीदी, पिशाच, सब राक्षस हैं, उन्हें हमसे दूर हटाओ ॥५०॥

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसा सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥५१॥

जिस पर दो पैर वाले विहंगम, हंस, बाज, शकुन (चील), पक्षी साथ उड़ते हैं, जिस पर वात मातरिश्वा धूल उड़ाता हुआ और वृक्षों को हिलाता हुआ दौड़ता है, और हवा के आगे बहने और पीछे बहने के बाद अर्चिस् अग्निदीप बहता है ॥५१॥

यस्यां कृष्णमरूणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भुम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये
धामनि धामनि ॥५२॥

जिस भूमि पर काला और अरुण, दिन और रात्रि जहाँ संहित हैं, वर्षा से पूर्णतः आवृत वह पृथिवी हमें प्रत्येक प्रिय धाम में स्थित कराये ॥५२॥

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥५३॥

द्यौः, अन्तरिक्ष और पृथिवी ने हमें व्यापक स्थान दिया है । अग्नि, सूर्य, जल (आपः) और समस्त देवों ने मुझे मेधा दी है ॥५३॥

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥५४॥

मैं भूमि पर सहमान (शक्तिशाली) और उत्तर (उत्कृष्ट) हूँ । मैं अभिषाड् (अन्यों को दबानेवाला), सर्वदमन (विश्वाषाड्) और प्रत्येक क्षेत्र में विजयी हूँ ॥५४॥ संप्रभुता-वाद की दृष्टि से अभीषाट्, विश्वाषाट् और विषासहिः ये शब्द सत्ता-केन्द्रीकरण की अभिव्यक्ति करते हैं ॥५४॥

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५॥

अयि देवि ! अपने को आगे विस्तृत करती हुई, देवों से कही हुई, तुम महित्व के लिये उधर आगे बढ़ो, तब तुममें सुभूत (कल्याण) प्रविष्ट हुआ और तब तुमने चारो दिशाओं को ठीक किया (अकल्पयत्) ॥५५॥

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥५६॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जो भूमि पर ग्राम, वन, सभाएँ, संग्राम, समितियाँ हैं—उन सबों में जो तुम्हें प्रिय है, वही हम बोलें ॥५६॥

अश्व इव रजो दुधुवे वि तां जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७॥

उसने उन लोगों को, जो उसके जन्म के समय से पृथ्वी पर थे, उन्हें अलग हिला दिया है (आक्षियन्) जैसे घोड़ा रजस् (धूलि) को, प्रिय (मन्द्रा), अग्रगामिनी, प्राणियों की रक्षिका (भुवनस्य गोपा), वनस्पतियों और औषधियों को धारण करनेवाली (पृथिवी है) ॥५७॥

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥५८॥

जो मैं बोलता हूँ, वह मधुसम्पृक्त बोलता हूँ, जो देखता हूँ, वह मुझे प्रीति करने लगे (वनन्ति मा ?) । मैं त्विषीमान् (दीप्तिमान = dazzling) और जूतिमान (गतिमान्) हूँ । जो हिंसक (दोधतः) हैं मैं उनको मार डालता हूँ ॥५८॥

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥५९॥

शांत, सुरभिसम्पन्न, प्रिय, मधुरपेयस्तनी, दुग्धसम्पन्ना भूमि, दुग्ध के साथ पृथिवी मुझसे बोले ॥५९॥

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भयः[1] ॥६०॥

जिसे विश्वकर्मा ने, जब वह रजस् में प्रविष्ट हो गयी थी, भीतर खोजा, एक भोगयोग्य पात्र जो गुहा में स्थित था, भोगार्थ दीख पड़ा, उनलोगों के लिए जो मातृमान् हैं (अर्थात् जीवनधारी प्राणी) ॥६०॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥६१॥

तुम जनों को विकीर्ण करने वाली (आवपनी) हो, कामधेनु अदिति हो, विस्तृत हो, ऋत का प्रथम पुत्र प्रजापति, जो कुछ तुममें अपूर्ण है, उसे पूरा करे ॥६१॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥६२॥

अयि पृथिवी ! तुम पर खड़े रहने वाले, रोगरहित, यक्ष्मारहित, हमारे लिये उत्पन्न हों, अपनी दीर्घ आयु के लिए हम जागने वाले (प्रतिबुध्यमाना) बनें, हम तुम्हारे लिए बलि लावें ॥६२॥

---

१. रोथ-व्हीट्ने-संस्करण में मातृमद्भाः पाठ है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सु प्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मां धेहि भूत्याम् ॥६३॥

मातः भूमे ! मुझे भद्र प्रकार से सुप्रतिष्ठित बनाओ । द्यौः के साथ ऐकमत्य में, कवे ! हमें श्री और भूति में अधिष्ठित कराओ ॥६३॥

पृथिवीसूक्त का सम्प्रदायानुसार विविध विनियोग है—जैसे आग्रहायणीकर्म, कृषिकर्म, ग्रामपत्तनरक्षाकर्म, पुष्टिकर्म, व्रीहियवाद्यन्नप्राप्तिनिमित्त-कर्म, मणिहिरण्यादिप्राप्ति-निमित्त कर्म, महाशान्ति-कर्म आदि में । कौशिक-सूत्र भूकंप (भूचालन) होने पर होम में इसका विनियोग मानता है —सत्यं बृहद् इत्येतेनानुवाकेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः (सायणभाष्य, अथर्व० १२,१ में उद्धृत कौशिक १३,६) ।

राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से, पृथिवीसूक्त, अतिशय उदात्त शब्दों में, क्षेत्रीय अनुराग और भूमि[1] के साथ अनुरक्ति का, जो राष्ट्रवाद का भावनात्मक आधार है, पोषण करता है ।[2] सभा, समिति और ग्राम में प्रिय बोलना उत्कृष्ट राजनीतिक कर्म माना गया है जिससे विदित होता है कि राजनीतिक वाचालता और प्रगल्भता का महत्त्व तत्कालीन परम्परा में स्वीकृत था । वैयक्तिक स्तर पर शत्रु-रहित बनना और अभीषाड् और विश्वाषाड् बनना पुरुषार्थ की अतिशयता व्यक्त करता है । "विवाचसं नानाधर्माणं जनं" की धरित्री नानात्व में एकत्व का परिदर्शन करती है । अनेकता में अद्वैत की खोज़ वेदान्त का सांस्कृतिक योगदान है ।

३३. राजनीतिक सत्ता से परिधिनिर्मुक्त करनेवाला सोम (अथर्व १४,१,१)

यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता में कवि कहता है कि सोम हम ब्राह्मणों का राजा है । इस प्रकार संगठित संवर्धनशील राजसत्ता के चंगुल से, पुरोहितगण, बौद्धिक और धार्मिक

१. प्लेटो के 'फेयडो' नामक ग्रंथ में अधो लोक व्यापी पृथिवीगर्भस्थ, चार नदियों का उल्लेख है—(क) ओसीयानस, (ख) एकेरन, (ग) पिरीफ्लेगेथन और (घ) स्टायक्स । इस अधोलोक में पापकारी लोगों को जाना पड़ता है । यह मन्तव्य पौराणिक वर्णन से मिलता है, किन्तु पृथिवीसूक्त में ऐसी कल्पना नहीं है ।

२. "दैत्यविद्या और आध्यात्मिकता इन दोनों के उष्ण वातावरण में पृथिवी के प्रति कहा गया एकमात्र अपवाद-स्वरूप सूक्त (१२,१) हवा के ठण्ढे झोंके की तरह है । यह अथर्ववेद की आकर्षक रचनाओं में एक है और यत्र-तत्र उच्च कोटि की काव्य-कल्पना से संवलित है एवं वैदिक कवियों की रचनाओं में खलनेवाली कृत्रिमता से अपेक्षाकृत मुक्त है । यहाँ आँखों के सामने की पृथिवी का, मनुष्यों, पशुओं तथा वनस्पतियों के साथ सम्बन्ध प्राचीन आख्यानात्मक एवं रहस्यात्मक विचारों के ऊपर हावी होकर मुखरित हो उठा है ।"—ब्लूमफील्ड : अथर्ववेद एवं गोपथ ब्राह्मण, सूर्यकान्त कृत अनुवाद पृ० १८७)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उत्तमता और ज्येष्ठता का अवलम्बन कर मुक्त होने का विचारात्मक प्रयास करता था। अथर्ववेद में भी सोम को महत्त्वपूर्ण बताकर उस प्रकार की राजनीतिक मुक्ति का गौण प्रयास किया गया है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१॥

सत्य से पृथिवी स्थापित है (उत्तभिता) है, द्यौः सूर्य से स्थापित है, आदित्यगण ऋत से स्थित हैं, द्यौः में सोम अधिश्रित है ॥१॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२॥

आदित्यगण सोम से बली हैं, सोम से पृथिवी बड़ी है अर्थात् पृथिवी के महत्त्व का आधार है सोम। इन नक्षत्रों की गोद में सोम स्थापित है ॥२॥

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥३॥

ओषधि को जब सम्पिष्ट करते हैं अर्थात् पीसते हैं तो मानता है कि सोम का पान कर लिया (पपिवान्), ब्रह्मगण जिस सोम को जानते हैं, उसको कोई पार्थिवजन नहीं खाता है ॥३॥

यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनः।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥४॥

सोम! जब तुम्हें लोग पी लेते हैं तब तुम पुनः अपने को भर लेते हो (आप्यायसे)। वायु सोम का रक्षिता है, वर्षों की आकृति महीना है ॥४॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥५॥

आच्छादन के विधानों से संवृत चौकीदारों से संरक्षित सोम! तुम ग्रावा के शब्द को सुनते हुए खड़े हो, कोई भी पार्थिव तुम्हारा भक्षण नहीं करता ॥५॥

इन पाँच मंत्रों में सोम का ज्यैष्ठ्य प्रतिपादित है। पृथिवी महिमासमन्विता, सोम के बल से ही है। सोम के भक्षण की बात बताती है कि सोम का एक अर्थ सोमलता अवश्य है। वस्तुतः कोई भी पार्थिव वास्तविक सोम का भक्षण नहीं कर सकता (मंत्र ३)। इस प्रकार के सोम का आश्रय लेनेवाला निस्सन्देह सांसारिक अपवादों, अरातियों और भीषण भयस्थलों से त्राण पायेगा। सोमसंश्रित मानव राजनीतिक सत्ताधारियों के आतंक से त्राण पाने के लिए अवश्य ही अतिपार्थिव अर्थात् द्युःश्रित सोम की अर्चना करेगा और विराट् और सम्राट् को चुनौती देने को सोच सकेगा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथर्ववेद (१७,१,१) में इन्द्र को विषासहि (विशेषरूप से शत्रुनाशक), सहमान (सहनशील), सासहन (शत्रु-अभिभविता), सहोजित (शत्रुबलापहर्ता), स्वर्जित (स्वर्गजेता), गोजित (शत्रु-पशुजेता), संधनजित (धनजेता), आदि बताकर राजनीतिक सत्ता के नरपति के रूप में केन्द्रित होने की स्पष्ट सूचना मिलती है। इस सन्दर्भ में यदि पुरोहितगण सोम की अभ्यर्थना करने के कारण अपने को राजनीतिक सत्ताधारियों (इन्द्र, जिनका प्रतीक हुआ) से मुक्त करने का वैचारिक प्रयास भी करे, तो कह सकते है कि सोम सत्ता-प्रतिरोध का प्रतीक हुआ।

३४. स्वराजे नमः (अथर्व १७,२२-२३)

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२॥

उदीयमान के लिये नमस्कार, आगे आते हुए (उदायते) के लिये नमस्कार, उदित हुए के लिये नमस्कार। विराज के लिये नमस्कार, स्वराज के लिये नमस्कार, सम्राज् के लिये नमस्कार ॥२३॥

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२॥

पश्चिम की ओर मुड़नेवाले के लिये नमस्कार, अस्त होने की अवस्था प्राप्त करने वाले के लिए नमस्कार और अस्तंगत के लिये नमस्कार। विराज् के लिए नमस्कार, स्वराज् के लिए नमस्कार, सम्राज् के लिये नमस्कार ॥२३॥

स्वराज् को यहाँ विराज् और सम्राज् के बीच में रखा है। किन्तु राजनीतिक सत्ता के स्तरवार वर्गीकरण में, विराज् का, संप्रभुता की दृष्टि से स्वराज के ऊपर स्थान है।

वैदिक कवि ने जागतिक और सांसारिक प्रदेश का एक ही साथ वर्णन किया है। जिस प्रकार सूर्य का तेज प्रकृष्ट है उसी प्रकार राजनीतिक शक्तिधरों का भी वर्चस् है। पुनश्च, सूर्य जैसे उदित हो अस्त होता है उसी प्रकार राजसत्ता में मस्त दम्भी भी अवश्य नष्ट होगा, मंत्र का यह आशय हो सकता है।

३५. सभा और सभासद् की रक्षा

वैदिक राजनीति धर्मनिरपेक्ष नहीं थी। अथर्ववेद (१९, ५५) में अग्नि और रुद्र की प्रार्थना करने के बाद इन्द्र से दीर्घायुष्य की कामना की है। गृहपति अग्नि को सौमनस्य का दाता और वसुदान कहा है। इसी प्रसंग में सभा और सभासद् के त्राण की भी अनुशंसा है।

अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम्।
अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये।
सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः।
त्वमिन्द्रा[1] पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवम् ॥ १९, ५५, ५-६॥

---

१. रोथ-ह्वीट्ने-संस्करण में "त्वयेन्द्राः" पाठ है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मुझे दग्धान्न (पक्वान्न) की कमी न हो, अन्नभक्षी अन्नपति रुद्र (और) अग्नि को नमस्कार है। हे सभ्य ! मेरी सभा की, और उससे सभा के सभ्य जो और सभा में बैठते हैं (सभासदः) रक्षा करो। तुम्हारा प्रभूत आह्वान कर इन्द्र ! वे पूर्णायुष्य की संप्राप्ति करें। इन मंत्रों में सभेय (सभा योग्य) मानवों की गुप्ति के लिए अभ्यर्थना है। इन्द्र को भी सभ्य मान कर सभा-पालन और जरदष्टि (वृद्धावस्था तक आयु) के लिए अर्चित करने का संदेश है।

३६. अथर्ववेद में उपयोगितावाद

अथर्ववेद का राजदर्शन वैयक्तिक श्रेयों को अतिशय महत्त्व प्रदान करता है। इसी प्रसंग में, प्रियत्व की कामना, ऐहलौकिक संयत भोगवाद से उपयोगितावाद की ओर बढ़ने की सूचना देती है। अथर्ववेद का कवि कहता है—

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये॥ (१९, ६२, १)

मुझे देवताओं में प्रिय बनाओ, राजाओं में प्रिय बनाओ, सभी जो देखते हैं उनमें प्रिय बनाओ, शूद्र और आर्य दोनों में। यहाँ तीन स्तर पर प्रियत्व की कामना है—आधिदैविक, राजनीतिक और सामाजिक। इस प्रकरण में विशेष जोर प्रियत्व-संपादन पर है न कि परमार्थानुशीलन अथवा त्याग पर। इसी प्रकार की भावना अन्यत्र भी प्रकट है (अथर्व १७, २-५), जहाँ ऐसी कामना है कि मैं देवताओं में, प्रजा में, पशुओं में और अपने समानों में प्रिय होऊँ। पशुओं में प्रियत्व की कामना परवर्ती बौद्ध जीवन-दर्शन का एक प्रकार से पूर्व-समर्थन है। समानो में प्रियत्व की भावना लोकतांत्रिक परम्परा का मार्ग प्रशस्त करती है।

३७. अथर्ववेद के कुछ स्पृहणीय कारक

राजनीतिक श्रेयस् की कामना और उनमें प्राथमिकता का निर्धारण व्यापक वातावरण में स्वीकृत आदर्शों की पृष्ठभूमि में ही हो सकता है। अथर्ववेद का सर्वोत्तम विराट् राजनीतिक श्रेयस् अभय है। कुछ अन्य उत्तरस्तरीय और पार्थिव श्रेयस्समन्वित अर्घों की सूची अथर्ववेद के त्रयोदश काण्ड में मिलती है—

श्रेयस् या महार्घ कारक

१. अन्न	२. अन्नाद्य[1]
३. तेजस्	४. वर्चस्
५. ब्रह्मचर्य	६. तपस्
७. श्रद्धा	८. रुचि
९. कीर्ति	१०. यश
११. ब्रह्म	

१. घनदा अस्तु मह्यम् (अथर्व० ३, १५, १)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अन्यत्र शतवर्षीय आयुष्य[1] की कामना की गयी है।

पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम्।
बुध्येम शरदः शतम्। रोहेम शरदः शतम्।
पुष्येम शरदः शतम्। भवेम शरदः शतम्।
भूषेम शरदः शतम्। भयसीः शरदः शतात्। —(अथर्व० १९, ६७, १-८)

१. "इनमें आयुष्, जीवन, असु, प्राणापानों की मांग की गई है। जीवन सौ वर्ष का होगा (शतशारद, शतंहिमाः, शतायुः), बुढ़ापे से पहले मृत्यु नहीं आयेगी (जरस्, जरा, जरिमन्, जरामृत्यु, जरदष्टि)। यह अभिचार शत या शताधिक मृत्युओं से बचावेगा। (मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये, २, २८, १), (अन्ये यन्तु मृत्यवो याना हुरितराञ्छतम् ३, ११, ७, एकशतम् ८, २, २७)" —ब्लूमफील्ड, अथर्ववेद एवं गोपथ ब्राह्मण-सूर्यकान्तकृत अनुवाद, पृ०३१।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्वादश अध्याय

वैदिक राजनीतिक व्यवस्था

१ वैदिक व्यवस्था की आंशिक गतिशीलता (Dynamism in the Vedic System)

निघंटु के अनुसार कर्म के छब्बीस वैदिक नाम हैं—अपः, अप्नः, दंसः, वेषः, वेषः, विष्टी, व्रतम्, कर्वटम्, करुणम्, शक्म, क्रतुः, करणानि, करांसि, करित्क्त्, करन्ती, चक्रत्, कर्त्वम्, कर्तोः, कर्तवै, कृत्वी, धीः, शची, शमी, शिमी शक्तिः और शिल्प। इस प्रकार कर्म पर अतिशय महत्त्व प्रदान करना याज्ञिक, सांग्रामिक और राजनीतिक गतिशीलता का लक्षण है। युद्ध भी तो कर्म का संगठित, दारुण, शत्रुनिषूदक रूप ही है। जब वैदिक कवि विजय और रयि की कामना करता है तब ऐसी कल्पना की जा सकती है कि समाज और राज्य में कुछ लोग ही सही, कर्म में लगे होंगे। परवर्ती कर्मकांड ने यज्ञीय कर्म को ही विशेष प्रश्रय देकर अग्निहोत्र, अभिषेक, पंचमहायज्ञ को ही कर्म का विशिष्ट रूप माना है तथापि प्रारम्भिक व्यवस्था में सब प्रकार के सामान्य और विशिष्ट कर्म को कर्म के अंतर्गत मानते थे। युद्धोन्मुख गतिशीलता और राजनीतिक कर्म को धर्म के कर्मकांडात्मक क्रियान्वयन से कुछ बल मिलता है क्योंकि, राजसूय, वाजपेय, अग्निचयन आदि की निष्पत्ति महान् श्रम अर्थात् कर्म से ही हो सकती थी।

२ वैदिक राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप

वैदिक राजनीतिक व्यवस्था स्थिरतावाद और अनुसरणवाद की ओर झुक रही है। उत्तर-वैदिक काल में वर्णव्यवस्था का विकास आरंभ हुआ और उसे शास्त्रीय आधार देने की चेष्टा हुई। वर्णव्यवस्था का आशय, समाज और राजनीति में, शक्तिधरों की श्रेष्ठता का समर्थन था। वे आधुनिक अमरीकी राजनीतिशास्त्री, जिन्होंने "व्यवस्था-विश्लेषण" (सिस्टम्स ऐनेलिसिस) का समर्थन किया है, समतावादी परिवर्तनोन्मुखी समाज को मानते हैं। किंतु वैदिक समाज समतावादी नहीं था। स्तरवार वर्गीकरण उसका अभीष्ट था। व्यवस्था-विश्लेषण समाज को सतत गतिशील मानता है जहाँ वातावरण और व्यवस्था में विनिमय होता है और वातावरणात्मक चुनौतियों के समक्ष व्यवस्था अपनी स्थिति कायम रखने और प्रशस्ततर बनाने का यत्न करती है। वैदिक सामाजिक और राजनीतिक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्यवस्था को चतुर्मुखी चुनौतियों[१] का सामना करना पड़ता था—(क) भौगोलिक और जागतिक—वर्षा, तूफान, बिजली, झंझा आदि से त्राण के लिए एक ओर इद्र, पर्जन्य, मरुत, रुद्र आदि देवताओं की उपासना की जाती थी और दूसरी ओर आयसी पुरः, सद्म, सभास्थल, आदि का निर्माण किया जाता था। (ख) आर्थिक—तत्कालीन कर्षकप्राय व्यवस्था में अतिशय कृषिजन्य ऊपज की संभावना नहीं थी। वैज्ञानिक खेती के अभाव में आवश्यकतानुसार ही उत्पादन होता था अतः अतिशय (surplus) उत्पादन और संग्रहार्थ उत्पादन नहीं हो सकता था। प्राकृतिक चुनौतियाँ विकट थीं। विस्तृत अरण्य और उनमें रहनेवाले सिंह, व्याघ्र, वृक आदि वन्य जन्तु त्रासदायक थे। नदियाँ अनेक थीं और उनमें मजबूत सेतु का अभाव ही था। कृषि प्राकृतिक जल पर आश्रित थी। पर्जन्य और इन्द्र की स्तुति, जल के लिए, की जाती थी। जलप्रवाह-विमोचन दानवहत्या के समान प्रमुख कार्य माना जाता था। उद्योगों का कोई विशेष विकास न था, यद्यपि "आयसीपुर" और "अश्मपुर" का उल्लेख है। तस्कर और स्तेन से वैश्य ग्रामणी अकेला कहाँ तक रक्षा कर सकता होगा? इन प्राकृतिक और आर्थिक चुनौतियों पर विजय प्राप्त करना और व्यवस्था को बनाये रखना बड़ा विकट कार्य था। (ग) आधिदैविक—बीमारियाँ, सर्प, बिच्छु आदि से। इनसे त्राण-पाने के लिये देवताओं की स्तुति और अथर्ववेदोक्त मणि आदि के प्रयोग किए जाते थे। (घ) सांस्कृतिक—पश्चिमोत्तर प्रदेश और सप्तसिंधु प्रदेश, गंगा-यमुना-दोआब तथा पीछे प्राच्य देश में विभिन्न संस्कृतियों में संघर्ष होते रहे। आर्य और आर्येतर जनों में जो भीषण राजनीतिक युद्ध हुए, उनके कुछ सांस्कृतिक कारण भी थे। व्रात्य, पणि आदि भी तत्कालीन सांस्कृतिक व्यवस्था से कुछ अलग ही थे।

इन चतुर्विध बाह्य चुनौतियों का मुकाबला करना और व्यवस्था में इतनी ऊर्जा उत्पन्न करना कि उसकी प्रक्रिया चलती रहे, निस्संदेह बड़ा कार्य था। व्यवस्था की जीवनीशक्ति का यही प्रमाण है कि अंतर्हित राशि, परिणामगत राशि में सम्यक् प्रकार से बदले और उस जनता में, जो परिणामगत राशि से लाभान्वित हो रही हैं, नयी आशाओं और आकांक्षाओं की सृष्टि हो, और व्यवस्था की राजनीतिक इकाइयाँ इन आशाओं और आकांक्षाओं को माँग में बदलने का यत्न करें। चतुर्विध बाह्य चुनौतियों को देखते हुए, जनता किस प्रकार अपनी कामनाओं और वस्तुनिमित्तक इच्छाओं तथा अपने आदर्शों को मूर्तिमान करती थीं, इसका ज्ञान तत्कालीन साहित्य से प्राप्त करना कठिन है।

वैदिक व्यवस्था की चतुर्विध चुनौतियों का ऊपर उल्लेख हो चुका है। प्राकृतिक और आर्थिक चुनौतियों का मुकाबला करना तभी संभव हो सकता था जब सामाजिक इकाइयाँ व्यवस्थित रहें। अतः सामाजिक तनावों और संघर्षों में सामंजस्य लाना भी आवश्यक था। राट् या विराट् का मात्र बल और क्षत्र, सामंजस्य नहीं ला सकता था।

---

१. चुनौतियाँ = Challenges (आह्वान)। चनौतियाँ व्यवस्था या व्यक्ति के लिए उत्तेजन का काम करती हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सामंजस्य की संसिद्धि के निमित्त सामाजिक इकाइयों के लिए ससाज में वर्तमान व्रत, प्रशिष आदि को मानना जरूरी था। सामाजिक आदेशों को मनवाने का कुछ यंत्र रहा ही होगा। जनता की इच्छाएँ और आकांक्षाएँ, विराट् और सम्राट् के युग में भी कुछ-न-कुछ तनाव समाज में अवश्य उत्पन्न करती थीं और विश्पति या पुरोहित या ऋषि के बीच-बीचाव या उपदेश से, अंशतः ही सही, सामंजस्य स्थापित होता था।

सामाजिक और आर्थिक राशि का उपयोग (क) अंशतः, राजा के अपने काम के लिए (ख) अंशतः, युद्धों में विजय प्राप्त करने के लिए और (ग) अंशतः, जनता की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता होगा। हिरण्य की अधिक राशि तो राजा के पास रहती होगी, किंतु दूसरे धातुओं को जनता भी रखती ही होगी।

दुर्गाह, दिवोदास आदि की शिक्षा-दीक्षा की क्या व्यवस्था हुई थी, इसके विषय में कोई लिखित प्रमाण नहीं है। जनता को शिक्षित करने का कोई प्रश्न नहीं उठता था और जनता की त्विषि, ऊर्जा आदि को प्रवर्धित कर उससे राज्य के उत्पादन-स्रोत को बढ़ाने का भी कोई प्रश्न नहीं था। यजुर्वेद में लिखा है—'घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व', किन्तु जनता के लिए घृत और आज्य की व्यवस्था करने की जिम्मेवारी राज्य पर नहीं थी, व्यक्ति स्वयं ही गो, महिष, अश्व, अज आदि रखता था और अपेक्षित पोषण उनसे प्राप्त करता था।

पुरुष-सूक्त के अध्ययन से पता चलता है कि सामाजिक संघर्ष बढ़ रहे होंगे। यदि सामाजिक तनावों को शिथिल करने का उद्देश्य नहीं होता तब कोई जरूरत यह कहने की नहीं होती कि पुरुष-पशु के अमुक अंग से अमुक वर्ण की उत्पत्ति होती है। यदि पुराकाल में कोई समस्त-जनव्यापी एकता कभी रही थी अथवा समस्त विशः से सौमनस्य की भावना परिव्याप्त रही भी थी, तो अब वह समाप्त हो गयी थी। पुरोहित, शूद्रों को सहस्रशीर्षा पुरुष के पैर से उत्पन्न कहने में गर्व अनुभव करने लगा था। इस काल में पुरोहितवर्ग केवल ब्रह्म और क्षत्र के सामंजस्य से ही संतुष्ट हो रहा था और तत्कालीन समस्त समाज के एकीकरण, आत्मीकरण, समाकलन और सौमनस्य में उसे विशेष अभिरुचि नहीं थी।

राजनीतिक व्यवस्था के आर्थिक, वाणिज्यात्मक, तकनीकी और प्रशासनिक उपकरणों का कोई संगठित चित्र हमें ऋग्वेद से नहीं मिलता है। अतः कुछ दूर तक कल्पना का ही आश्रय लेकर कुछ प्रश्नों का उत्तर हम खोज सकते हैं। राजा का औपचारिक, विधानसम्मत उत्तरदायित्व किसी सभा, समिति, सेना, विदथ या समन के प्रति नहीं था। जिस प्रकार राट्, स्वराट्, विराट्, अधिराट्, सर्वराट् आदि शब्द सत्ताधर की दीप्ति और शक्म के प्रतीक हैं, उस प्रकार विशः और जन के सामूहिक संकल्पों, एषणाओं और आकांक्षाओं को मूर्त्त करनेवाली संस्थाओं का उल्लेख नहीं मिलता है। नीति-निर्णय के लिए, राजा के कौन-कौन दक्षगण और सिद्धविशेषज्ञगण सलाहकार थे, इसका भी कुछ स्पष्ट उल्लेख

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नहीं है। किंतु संभव है, वशिष्ठ, विश्वामित्र, कण्व, गृत्समद, मधुच्छंदा, गौतम रहूगण आदि ऋषि और पुरोहित दक्ष के रूप में भी मान्य रहे हों। नीति-निर्णय और क्रियान्वयन के बीच स्थानगत और कालगत व्यवधान उस समय के जनों और राष्ट्रों में बहुत कम थे। राजनीतिक दलों और दबाव-वर्गों[१] के अभाव में, विशः के हित, स्वार्थ, कल्याण, प्ररुचि आदि मूर्त्त रूप में अभिव्यक्त करने का काम पुरोहित और ग्रामणी को ही, अंशतः, करना पड़ा होगा।

वैदिक व्यवस्था में वस्तुनिष्ठता के बदले व्यक्तिनिष्ठता का ही प्राबल्य था। औपचारिक संस्थाओं और समुदायों के बाहुल्य से सामाजिक और राजनीतिक जीवन में वस्तुनिष्ठता का संचार होता है, किंतु जब सत्ता के प्रस्वीकृत वाहककेन्द्रों की कमी रहती है तब व्यक्तिनिष्ठता का प्रकटीकरण रहता है। वैदिक काल में व्यवस्था का उद्देश्य, परमार्थ सार्वजनिक कल्याण, या ऐहलौकिक भोगसामग्री, या रायस्पोष का उचित वितरण नहीं प्रतीत होता है। शत्रुओं के रन्धन, हनन और प्रजा, पशु, रयि आदि के लिये अनेकानेक वैदिक प्रार्थनाएँ सामाजिक धनराशि के उचित वितरण की कोई सूचना नहीं देती हैं। सैन्यगण और कर्मचारीगण की नियुक्ति में कोई सार्वजनिक तटस्थ नियामक-सूत्र रहे हों, इसकी भी आशा कम है। इन नियुक्तियों में राजा की वैयक्तिक अभिनति, सजातों के प्रति नैसर्गिक सम्मोह, और सत्वर फलप्रदता ही मूलसूत्र रही होगी। सामाजिक और राजनीतिक ढंग से प्रोन्नत, नागरिकों की अधिकाधिक संख्या किस प्रकार ऐहलौकिक अभ्युदय और वित्तपूर्ण, उपकरणाश्रित सम्पन्नता के मार्ग पर आरोहण करे, ऐसा विवरण वैदिक राजनीति में हम नहीं पाते हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि सामूहिक खुशहाली, विस्तार, विकास, आर्थिक अभ्युदय, प्राचुर्य, प्रोन्नति, प्रतिष्ठापित व्यवस्था का समय-समय पर मूल्यांकन, तर्कहीन प्रक्रियाओं का प्रतिरोध और निरोध आदि तत्त्व, उस काल के लिये काल्पनिक आशय थे, जब वैदिक कवि पर्जन्य देव से वर्षा की प्रार्थना करता था—'पर्जन्योऽभिवर्षतु।'

वैदिक व्यवस्था में संचार के साधन अतीव सीमित थे। अतः संचार-साधनों में सहजस्फूर्त या स्वयंचालित नियंत्रण की कल्पना नहीं की जा सकती। राजा, पुरोहित और अंशतः, ग्रामणी, राजनीतिक संचारव्यवस्था के नियामक सूत्रधार थे। वैदिक साहित्य के अनुसार (वा० सं०) आंशिक रूप से, योगपद्धति का विकास हो रहा था, किंतु अभी तक योगपद्धति का सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को मजबूत करने में उपयोग नहीं हो पाया था। व्यक्तिगत रूप में तपस्वी और मुनि योग में प्रवीण होते होंगे, किंतु राजनीतिक सत्ताधारी यौगिक शक्ति का उपयोग राजनीतिक सत्ता को सुदृढ़ करने में नहीं लगाते थे। दूसरी ओर, यद्यपि व्रात्यगण ब्राह्मण-पोषक आर्यत्व से पृथक् थे और उनकी जीवन-

१. दबाववर्ग = Pressure groups (Interest groups)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शैली भी विलक्षण थी, तथापि वे राजनीतिक सत्ता के प्रतिरोधी नहीं थे। ब्राह्मणवाद का निषेध, अंशतः ही सही, उन्होंने किया, किंतु बढ़ते हुए केन्द्रभिगामी क्षत्रवाद का प्रतिरोधक कोई व्यक्ति न हुआ, जो पुराने जमाने के जनों और विशः की क्षीण होती हुई सत्ता का पुनरुद्धार करता। ऐसा मालूम पड़ता है कि जनों और विशः को मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक आधार देने वाली सजात-भावना क्रमशः टूट रही थी। इस प्रकार जनों और विशः का सर्वजनापेक्षी, सावयव, समग्र संगठन विच्छिन्न हो गया और केवल क्षत्र और ब्रह्म के संगठन की भावना सामने आई, जिसमें सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व नहीं हो सका।

३ वेदों में राजत्व

वेदों में राजत्व की विराट् कल्पना का एक प्रबल प्रमाण यह है कि प्रायः समस्त देवों को केन्द्रीकृत शुष्म और उर्जस्युक्त महिमा का आगार माना गया है। वैदिक काल में व्यक्ति राजा, और राजत्व-संस्था का पार्थक्य स्पष्ट नहीं था। राजा, राष्ट्र का प्रतीक, जन का प्रशासक और विशः का नेता था। राजा को क्षपावान्[1] कहा जाता था। राजत्व की शाश्वतता और वाजस् की पूर्णता की अभिकामना अनेक स्थलों पर की गयी है। सभा, समिति, विदथ, समन, यज्ञ आदि नरपति पर कोई उल्लेखनीय संवैधानिक प्रतिबंध नहीं उपस्थित करते थे। निश्चित ही अपराधकर्मियों को राजा दण्डित करता रहा होगा। स्तेन, तस्कर, अघायु, मलिम्लुच, नरहत्यारा, पापमार्गगामी आदि को दंडित[2] किये बिना वैदिक समाज टिक ही नहीं सका होगा। दंडित करने के अधिकार के साथ-साथ क्षमा प्रदान करने का भी अधिकार नरपति को अवश्य रहा होगा। सार्वजनिक विधि और वैयक्तिक विधि में अन्तर नहीं होने से नरपति के संकल्प का, व्यावहारिक और दैनिक जीवन में प्रभूत महत्त्व था। वह अलिखित विधि का युग था अतः, इस कारण भी नरपति के संकल्प का महत्त्व संवर्धित था यद्यपि परम्पराओं, और मर्यादाओं को भंग करना निस्सन्देह

---

१. स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम्। (ऋ० ३,५५,१७)

: : : :

स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान्। (ऋ० ७,१०,५)
यहाँ अग्नि को क्षपावान् कहा है।

: : : :

त्वमिदसि क्षपावान्। (ऋ०, ८,७१, २)
यहाँ भी अग्नि को क्षपावान् कहा है।

२. आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा (ऋ० १०,९७, ११) में रोथ ने जीवगृभः का अर्थ आरक्षी (पुलिस) किया है। उग्रो मध्यमशीरिव (ऋ०, १०, ९७, १२) में मध्यमशीः का अर्थ बीचबीचाव करने वाला किया गया है (mediator)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परम कठिन रहा होगा। राजा की कुछ अपनी जमीन अवश्य ही रही होगी। उस युग में, अरण्यों की अधिकता के कारण, जंगलों को काटकर जोतने लायक भूमि नरपति और साधारण कर्षक भी अवश्य ही बना लेते होंगे। राजत्व को धार्मिक औचित्य प्रदान कराने में पुरोहितों को और वैधिक औचित्य प्रदान करने में क्षीणप्राय सभा, समिति का योगदान अवश्य था। लेकिन यह स्मरणीय है कि वैधिक औचित्य की परिधि का उल्लंघन करने पर कोई संस्थागत नियंत्रण राजा पर नहीं था। हाँ, धार्मिक औचित्य की सीमा का अतिक्रमण, एकवृष एकराट् के मनः क्षेत्र में भी वरुण-पाश के भय और आतंक को उपस्थित करा सकता था। सुदास्, त्रसदस्यु, परीक्षित, पुरुरवा और आयु को वह दम्भोक्ति करने का अवसर नहीं प्राप्त हो सकता था कि "नरपति अपराध नहीं कर सकता" अथवा नरपति और राष्ट्र का तादात्म्य है"। प्रायः मिट्टी के बने हुए दुर्गों के निवासी वैदिक नरेश उस संघर्ष-शील युग में दम्भोक्ति प्रतिपादन के बदले यह देख लेते होंगे कि राजन्य, सेना, विशः आदि कहाँ तक उनका साथ दे सकती है।

४ वैदिक युग में सत्ताधृत राजनीति

वैदिक देवतावाद के राजनीतिक आधारों और निष्कर्षों के विश्लेषण से मालूम पड़ता है कि कवियों के हृदय में शक्तिवाद की प्रधानता व्याप्त थी। देवताओं से वैयक्तिक स्तर पर, रयि, पोष, गौ, अश्व[1], प्रजा आदि की कामना की जाती थी किंतु राज्य के लोककल्याणात्मक कार्यों का विवेचन वैदिक संहिताओं में नहीं मिलता है। अंशतः, सामाजिक और आर्थिक पेचीदगी बढ़ रही थी, किन्तु राजा अथवा उसके अधिकारियों से संग्राम[2] के अवसर पर और बलि देने के समय ही जनता को संपर्क की संभावना थी। राज्यों के क्षेत्र छोटे-छोटे थे, अतः एक प्रकार से सत्ता केन्द्रित थी, क्षेत्रीय और निगमात्मक विकेन्द्रीकरण का प्रश्न उपस्थित नहीं था। राज्य का काम नूतन विधियों का प्रणयन भी नहीं था। कुछ दूर तक राजा न्यायिक क्रियान्वयन भी करता रहा होगा, किंतु वैदिक संहिताओं में संगठित न्यायाधिकरण का उल्लेख नहीं है।[3] तथापि यह मानना ही पड़ेगा कि निदेश, आज्ञापन, आदि के औपचारिक उपकरणों के अभाव में भी व्यवस्था-स्थापन के सामाजिक और राजनीतिक कुछ स्रोत रहे ही होंगे।

शक्ति को गौरवान्वित करनेवाला वैदिक कवि एक प्रकार से व्यवहारवादी विहेभियरलिस्टिक और यथार्थवादी राजनीति का समर्थक ही माना जायगा, क्योंकि शक्ति

१. इन्द्र को अश्वदावन् (ऋ० ५, १८, ३), घोड़ों का दाता, कहा गया है।

२. ऋग्वेद, ६, ७५, संग्राम-सूक्त। क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति (१, १२९, ९)—संभवतः जूर्णि आग्नेयास्त्र है।

३. अथर्ववेद (६, ३२, ३, । ८, ८, २१)—मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त। यहाँ जीमर ने ज्ञातृ से साक्षी का तात्पर्य ग्रहण किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उग्र राजनीति का एक विराट् स्रोत है । कल्पना के प्रदेश में विचरण करने और राट् को व्यक्तित्वपूर्ण अहंममाभिमानयुक्त, नैतिक, उद्देश्यसन्निविष्ट कारक मानने के बदले राज्य को शक्तिधर मानना ही उसका अभीष्ट है। तत्त्वज्ञानात्मक रूप से, वैदिक देवाधिदेव प्रजापति को भी विश्लिष्ट श्रेयस्समन्वित तर्कणापूर्ण सत्तावाहक नहीं माना जा सकता। वह रयि को देनेवाला देव ही है, राष्ट्रीय आत्मा का प्रतीक अथवा राष्ट्र की नैतिक अभिव्यक्ति नहीं ।

वैदिक संहिताओं में सर्वत्र शक्तियोग का प्राबल्य है। देवतागण अधिकांशतः शक्ति और तेज के प्रतीक हैं। राजा वरुण है और क्षत्रसमवेत है। धनुः, बाण और दिद्यु[1] की अनेक मंत्रों में प्रशस्ति है। किंतु इससे यह कल्पना करना कि वैदिक समाज एक सैनिक कैम्प था, सर्वथा भ्रामक होगा। मात्र सैन्यसंघात से कोई समाज नया या पुराना, टिक नहीं सकता। स्थायित्व लाभ के लिए सौमनस्य और समान-समिति की आवश्यकता है। स्वराट् के लिए भी आर्थिक और सामाजिक साधन-स्रोतों का इस प्रकार प्रयोग करना आवश्यक था कि उसकी शक्ति बढ़े और दण्ड-बल की आवश्यकता कम हो। इन्द्र का वज्र दण्ड की दुर्धर्षता का प्रतीक है, किंतु केवल वज्रदण्ड से समाज नहीं चल सकता। अतः यदा-कदा यज्ञ करना आवश्यक था और धार्मिक अर्घों की पूर्ति के लिए भी यत्न करना पड़ता था।

केवल दण्ड-शक्ति के प्रयोग से समाज की अवस्थिति संभव नहीं है। अतः पुरोहित और कवि बार-बार ऐसी कामना करता है कि हमारे शत्रुओं को देवों के जबड़े में फेंका जाय या अग्नि में भस्म कर दिया जाय। इससे स्पष्ट है कि वह अपने या अपने सहायक नरेश के हित के लिए कामना करता है कि शत्रुओं को धार्मिक दण्ड मिले। यदि केवल धनुष से काम चलता तो अग्नि-द्वारा भस्म कराने की क्यों अभिलाषा होती ?

५ वैदिक धर्म और न्याय

न्याय के दो पक्ष हैं व्यावहारिक और सैद्धांतिक। वैदिक काल में न्यायाधिकरण के संगठन और उसके अधिकारों के विषय में कहना कठिन है। संभवतः, फौजदारी अभियोगों का अन्तिम निर्णय नृपति ही करता होगा। वैरदेय[2] शब्द का प्रयोग बताता है कि फौजदारी मुकदमे कौटिल्य का शब्द, (कण्टकशोधन) का अवसर उपस्थित होने पर दोषी की अपराधमुक्ति तथा दुरितशोधन के लिए कुछ वस्तुएँ अपराधी को या उसके परिवार या जन को देनी पड़ती थीं।

---

१. दिद्यु (बाण या प्रक्षेपणास्त्र) के लिए ऋग्वेद १, ७१, ५। ४, ४१, ४। ७, ५६, ९ : दिद्युत् के लिए, ऋग्वेद ५, ८६, ३

२. उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः । स वरदेय इत्समः ॥
(ऋ० ५, ६१, ८)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

न्याय के सैद्धांतिक पक्ष के विषय में यह कहा जा सकता है कि देवताओं की अधीनता में न्याय क्रियान्वित होता था। वरुण के पाश से कोई छुटकारा नहीं पा सकता था। इससे मालूम पड़ता है कि न्यायधर एक बाह्य शक्तिपूर्ण देव था, जिसकी अध्यक्षता में जागतिक न्याय को क्रियान्वित किया जाता था। मात्र सामाजिक संगठन की व्यवस्थाजन्य गति से ही न्याय साकारता नहीं प्राप्त करता था। यूनायी डीके[1] की जो कल्पना थी वह वैदिक कल्पना से मिलती है। दूसरी ओर, यूनान में समाजानुस्यूत और समाजान्तर्गत थेमिस[2] (न्याय) की जो कल्पना थी, वह वैदिक कल्पना से कुछ दूर है यद्यपि वर्णवाद के समर्थक कुछ दूर तक थेमिस को स्वीकार कर सकते थे।

न्याय की कल्पना का आधार है यह भावना कि यथाकर्म, यथापराध, मनुष्य को दण्ड मिले। दारुण कुकर्म के लिए भीषण दण्ड और साधारण अपराध के लिए अल्प दण्ड मिले, यही न्याय का आधार है। न्याय औचित्य (Dueness) पर आधृत है। यह औचित्य की भावना अन्ततः अमरता की कल्पना को पुष्ट करती है। मानव के समस्त अच्छे-बुरे कर्मों का फल सीमित जीवन में नहीं मिल सकता, अतः जन्मान्तर, कर्मविपाक और तत्संबद्ध अमरता की कल्पना की जाती है। जन्मान्तर में कर्मफल-प्राप्ति की कल्पना प्राचीन भारतीय धर्म का एक मौलिक आधारभूत सिद्धांत है।

वैदिक देवतावाद, देवों में श्रद्धालुओं के लिए न्याय की प्राप्ति की कल्पना को परम पुष्ट करता है। किंतु जो अक्रतु, अयज्ञ, ग्रथी, श्रद्धाविरहित दस्यु, इन्द्रद्रोही, दानव आदि हैं, उनके नाश और समूलोच्छेद में विश्वास, इस बात को प्रकट करता है कि जो देवविरोधी हैं, उनका रन्धन करने में देवगण उनके अपराध की लघिमा या गरिमा का ध्यान न कर उनका वध तक कर देते हैं। स्पष्ट है कि यह न्याय का सीमित तात्पर्य है। न्याय की चरम महत्ता तब व्यक्त होती जब दस्युओं, असुरों, दासों और "अनीन्द्रः" को भी यथापराध ही दण्ड मिलता। यह भी न्याय की भावना का आंशिक खंडन ही है कि आर्यों के शत्रुओं और सपत्नों को देव-शरणागति का कोई मार्ग नहीं बताया गया है। क्या उनके एनस्, दुरित आदि खंडित नहीं हो सकते ? क्या वे यज्ञीय कर्मकाण्ड करके इन्द्रजूत नहीं बन सकते ? दस्युओं के प्रति न्याय की भावना की अवहेलना बताती है कि वैदिक कवि न्याय के उस शीर्षस्थ स्तर की कल्पना नहीं कर सका, जहाँ देवों का प्रशिष समान भाव से समस्त मानवों के प्रति न्याय के निष्पक्ष क्रियान्वयन का निदेशन करता है।

सामाजिक न्याय की कल्पना का कोई पुष्ट समर्थन वैदिक संहिताओं से नहीं मिलता है। आर्थिक दुरवस्था को देखते हुए सामाजिक न्याय को क्रियान्वित करने की परम आवश्यकता थी, ऐसा मान सकते हैं। वामदेव कवि कहता है—

1. Dike
2. Themis

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम्।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार॥
(ऋ० ४, १८, १३)

दीनावस्था में कुत्ते की आँत मुझे पकानी पड़ी। देवताओं में से कोई सुख देनेवाला (सुखयिता) न मिला। अपनी पत्नी को अश्लाघनीया अर्थात् हीनावस्था में मैंने देखा। श्येन पक्षी ने अथवा शीघ्रगामी इन्द्र ने मधु (सोम) लाकर दिया। वामदेव को कुत्ते का मांस (सायण—पुरीतंति पेचे) पकाना नहीं पड़ता यदि तत्कालीन राज्य सामान्यहित, मानव अधिकार, लोकमंगल आदि का अवलंबन कर नागरिकों के लिए भोजन, आवास आदि का प्रबंध करना अपनी जिम्मेवारी मानता।

वैदिक आर्थिक व्यवस्था सामाजिक न्याय पर आधृत नहीं थी। सामाजिक धन-राशि का वितरण किसी दार्शनिक या नैतिक आधार पर नहीं किया गया था। नागरिकों और उनके परिवारों की आवश्यकताओं को भी धन-वितरण में ध्यान में नहीं रक्खा गया था। वैयक्तिक सपत्ति ही उस आर्थिक व्यवस्था का मूल सूत्र थी। किंतु यह आशय पुष्ट नहीं किया गया था कि वैयक्तिक सम्पत्ति का सामूहिक कल्याण के लिए उपयोग हो। पुरोहितवाद भी वैयक्तिक सम्पत्ति और उसके पारिवारिक उपयोग पर आधृत था। कह सकते हैं कि एक अंश तक वर्णश्रेष्ठताप्रतिपादक पुरोहितवाद सामाजिक न्याय का विरोधी भी था।

यज्ञ करने पर जो दक्षिणा मिलती थी, उसके मापकरण के क्या आधार थे, यह विदित नहीं होता है। दक्षिणा यजमान की तुष्टि पर न कि गणितात्मक आधार पर आधृत थी। वैदिक दानस्तुतियों से मालूम पड़ता है कि नृपति अथवा अन्य वेदस्युक्त इभ्य जो दक्षिणा देते थे, वह उनके परिश्रम की कमाई नहीं थी। संभव है, दक्षिणा में देय धन भिक्षा या शोषण से ही मिला हो। दूसरी ओर, ऋग्वेद में क्षेत्रपति की स्तुति तो है, किंतु इसका कोई प्रमाण नहीं है कि गृहपति[1] और कीनाश (बलीवर्दरक्षक) को आर्थिक न्याय मिलता था। वैदिक अर्थ-व्यवस्था में गायों और महोक्षों का परम महत्त्वपूर्ण स्थान है, किंतु इनका सामाजिक वितरण किसी न्यायपूर्ण आधार पर हुआ हो, इसका भी कोई प्रमाण नहीं है।

६ वैदिक व्यक्तिवाद

वैदिक संहिताओं में सामष्टिक भाव का प्राबल्य है। जन और विशः की चर्चा है और आर्य, दास आदि की चेतना भी है। किंतु पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, दिवोदास

१. गृहपति—ऋग्वेद ६,५३,२। अथर्ववेद १४, १, ५१। १९, ३१, १३।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आदि के सत्तावाद और वशिष्ठ, विश्वामित्र, आंगिरस के पुरोहितवाद के प्रतिरोध में सामान्य व्यक्ति के अधिकारों का अभिज्ञापन हो, ऐसी कल्पना नहीं मिलती है। निघंटु के अनुसार मनुष्य के पच्चीस वैदिक नाम हैं—मनुष्याः। नरः। धवाः। जन्तवः विशः। क्षितयः। वष्टयः। चर्षणयः। नहुषः। हरयः। मर्याः। मर्त्याः। मर्ताः। व्राताः। तुर्वशाः। द्रुह्यवः। आयवः। यदवः। अनवः। पूरवः। जगतः। तस्थुषः। पञ्चजनाः। विवस्वन्तः। पृतना। पाश्चात्य ऐतिहासिक पद्धति का अवलम्बन करने से पंचजनाः में ही तुर्वशाः, द्रुह्यवः, यदवः, अनवः और पूरवः परिगृहीत होते हैं। मर्याः, मर्त्याः, मर्ताः ये तीन शब्द मरणधर्मा मानव-शरीर के संज्ञाराहित्य और उच्छेद के सूचक हैं। विशः जनवाचक है, व्यक्तिवाचक नहीं। पृतना युद्धवाचक है। किंतु इन नामों से मानव-अधिकारों और राजनीतिक स्वातंत्र्य की चेतना का अभिज्ञापन नहीं होता है। देवतावाद का ऋग्वेद में इतना प्राबल्य है कि आध्यात्मिक और नैतिक व्यक्तिवाद के समर्थक मंत्र नहीं मिलते हैं। हाँ द्यूतकर्मनिरत वैदिक मानव (ऋग्वेद १०, ३४) के कवित्वपूर्ण अवसादयुक्त उद्घोष में लौकिक और भौतिक स्तर पर भावात्मक वैयक्तिक यदृच्छावाद की एक आंशिक छाया मिलती है। इस प्रकार के यदृच्छावादी व्यक्तिवाद का कुछ आभास वहाँ भी मिलता है। जब ऋग्वेद का ऋषि कहता है कि हमलोगों ने सोमरस का पान किया है, अमृतत्व की उपलब्धि की है और देवताओं को जाना है (ऋ० ८, ४८८, ३=तै० सं० ३, २, ५, ४)। संहिता-युग में आर्थिक जीवन की सरलता थी। ऋग्वेद में कर्षकप्राय सभ्यता थी। यजुर्वेद में यांत्रिकता के कुछ विकास के साथ सामाजिक जटिलता और कार्यदक्षता का संवर्धन हुआ। ऐसी व्यवस्था में राज्य द्वारा आर्थिक नियंत्रण और कालक्रम में उस नियंत्रण के शिथिलीकरण का प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं था। कर की कुछ व्यवस्था तो रही ही होगी और बलि भी दी जाती थी, किंतु जनसाधारण के ऋषिकर्म में राज्य द्वारा हस्तक्षेप का कोई अवसर नहीं आता होगा।

ऋग्वेद में देवतावाद, आर्यवाद और नरपतितंत्र का उत्कर्ष व्यक्त हुआ है। यजुर्वेद में राजसूय, वाजपेय और अश्वमेध यज्ञ के सूक्त नरपतितंत्र का ही महत्त्व बताते हैं। जनसाधारण के संकल्प को साकार करनेवाली शक्तिशालिनी संस्था कोई नहीं थी। पुराकाल में समिति, यदि जन के प्रत्येक वयस्क की अनुरक्ति, आसक्ति, कर्तृत्व और औचित्यबोध का माध्यम रही भी हो तो भी संहिताओं में उसका व्यापक रूप प्रकट नहीं हुआ है। संहिताएँ विशिष्ट देवों और मानवों से ही संबंध व्यक्त करती हैं। राजनीति और धार्मिक क्षेत्रों में विभूतिसम्पन्न का ही यशोगान उनका उद्देश्य है। सोमपान, अग्निहोत्र और अन्य यज्ञ विभूतिद्योतक वैशिष्ट्य के ही प्रतीक हैं। व्यक्तिवाद जनसाधारण की आकांक्षाओं, वासनाओं और अधिकारों का समर्थन करता है। वामदेवसूक्त (=ऋ० ४, २६। ४, २७) में लोकोत्तर सत्तावाद और पुरुषसूक्त में वर्णवाद का अभिज्ञापन साधारण मानव को अपनी आवाज बुलंद करने का कोई अवसर नहीं देता।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथापि, व्यक्तिवाद के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक आधारभूत कारकों के अभाव में, तथा व्यक्ति के नैसर्गिक और मौलिक अधिकारों के पोषण के अभाव में भी अभय का दिव्य घोष उच्चारित और प्रचारित कर वैदिक ऋषियों ने एक ऐसा विराट् मंत्र दिया है, जिससे मानव को दुर्दमनीय आत्मा की अप्रतिहत शक्ति का बोध हो सकता है और अभयशील व्यक्ति सर्वदा संगठित सत्ता, जातिवाद, असामाजिक तत्त्वों की गुंडा-गर्दी, पुरोहितवाद के दंभपूर्ण प्रलाप, वैयक्तिक आक्रमण आदि के समक्ष अविचलित रहकर सभ्यता और संस्कृति के अभ्युत्थान का नूतन मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परिशिष्ट : १

वैदिक राजनीतिशास्त्र का दार्शनिक विवेचन[1]

प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति और धर्म के अनुशीलन में वेदों को अत्यंत महत्त्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत का स्थान प्राप्त है। "वेद" शब्द से महर्षि दयानंद केवल चार संहिताओं अर्थात् ऋग्वेद, अथर्ववेद, (शौनक शाखा) सामवेद और यजुर्वेद (वाजसनेयी माध्यान्दिन) को ग्रहण करते थे। किंतु शंकराचार्य "वेद" शब्द से उपनिषदों को भी ग्रहण करते हैं। अन्य धार्मिक पंडित भी उपनिषदों, आरण्यकों और ब्राह्मणग्रंथों को वेद के अन्तर्गत मानते हैं। शाब्दिक स्पष्टता की दृष्टि से "वेद" से केवल संहिताओं का ग्रहण करना उचित होगा।

वेदकालीन भारत में शासन की वास्तविक प्रक्रिया क्या थी, इस प्रश्न पर हमने अन्यत्र विचार किया है।[2] यहाँ पर हमें उन विराट् आदर्शों का विवेचन अभीष्ट है, जिनसे वह शासन-प्रक्रिया अनुप्राणित थी। अतः, पद्धति की दृष्टि से मेरा विवेचन ऐतिहासिक न होकर दार्शनिक और विश्लेषणात्मक है। किसी भी महान् ग्रंथ के दो अंश होते हैं। एक है ऐतिहासिक वस्तुस्थिति का चित्रण और दूसरा है उस ऐतिहासिक वस्तुस्थिति का आश्रय लेकर एक चिरंतन संदेश का अभिज्ञापन। महाभारत युद्ध कब हुआ और कितनी सेनाएँ उसमें सम्मिलित थीं, यह इतिहास का प्रश्न है। किन्तु, गीता के निष्काम-कर्मयोग का वर्तमान जगत् में क्या महत्त्व है, इसका विवेचन करना दार्शनिक का कर्त्तव्य है। वैदिक भारत की शासन-समितियों और विशः, जन, राष्ट्र आदि की निर्माण-प्रक्रियाएँ आज फिर से सप्राण नहीं की जा सकतीं, किन्तु कुछ निर्मल वैदिक आदर्श बहुत अंश तक आज के प्रजातंत्रीय भारत को चेतना प्रदान कर सकते हैं।

---

१. यह निबंध 'साहित्य', (पटना) वर्ष ७, अंक २, जुलाई १९५६, पृ० ९-१२ तथा सरस्वती (प्रयाग), वर्ष ६६ (जून १९६५) पृ० ४४१-४४३ में प्रकाशित है। यहाँ यत्र-तत्र संशोधित रूप प्रस्तुत किया गया है।

२. लेखक का ग्रंथ—हिन्दू पोलिटिकल थॉट ऐंड इट्स मेटाफिजिकल फाउन्डेशन्स।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वैदिक राजनीतिक आदर्शवाद की सबसे बड़ी विशेषता है, व्रतों और नियमों के अनुसार राजकर्म की व्यवस्थापना। राजकीय शक्ति अनियंत्रित दंडप्रवाह में आनंद न लेने लगे, अपितु श्रेयों के अनुकूल बने; यह उस समय का विचार था और आज भी समीचीन है। अथर्ववेद में कहा है—

प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रो भवत् वशी। (अथर्ववेद ११। १६)

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। (अथर्ववेद ११। १७)

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत। (अथर्ववेद ११। १९)

इन मंत्रों में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि राष्ट्र की रक्षा के लिए तपस्या, ब्रह्मचर्य और साधना की आवश्यकता है। यदि साधनाहीन वैयक्तिक जीवन भ्रमपूर्ण और असफल हो सकता है, तो समस्त राष्ट्र को उन्नति-पथ का दर्शन कराने के लिए नियमों के अनुशीलन और अभ्यास की प्रचंड आवश्यकता अवश्य ही है।[१]

इस आदर्शवाद के अनुकूल ही वैदिक स्वराज्य की कल्पना को नैतिक, आध्यात्मिक दृष्टि से परिपुष्ट कर सकते हैं। स्वराज्य का अर्थ, निरंकुशता, स्वच्छंदता और यथा-कामचारवृत्ति नहीं है। स्वराज्य का तात्त्विक अर्थ है, अपनी आत्मा का अपनी प्रवृत्तियों और एषणाओं पर साम्राज्य। जब मानव विराट् श्रेयों से अनुप्राणित होकर अपने तेजपूर्ण अनुच्छित्तिधर्मा, व्यथाहीन आत्मा का महत्त्व अपनी इन्द्रियों और एषणाओं पर व्यक्त करता है, उस समय स्वराज्य का प्रकटीकरण होता है। जब इस प्रकार के चेतन नीतिमान् आध्यात्मिक मानव राजकीय कार्य का सम्यक् संचालन करते हैं, तब सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में आदर्श का दर्शन होता है। ऋग्वेद में कहा है—

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्याः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम्।
(ऋग्वेद १। ८४। १०)

---

१. वेदोक्त तपस्या की महत्ता का समर्थन करते हुए तैत्तिरीय आरण्यक में ऋत, सत्य, स्वाध्यायप्रवचन, तप, दम, शम आदि का वैशिष्ट्य महत्त्वपूर्ण शब्दों में बताया गया है। "सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः। तपइति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः। स्वाध्यायप्रवचन एवेति नाको मौद्गल्यः। तद्धि तपस्तद्धि तपः।" पतंजलि के योगदर्शन में यम और नियम की प्रकृष्ट आवश्यकता बताई गई है। इसी वैदिक परम्परा का आधुनिक युग में अनुमोदन करते हुए महात्मा गांधी और श्रद्धानन्द ने राजनीतिक जीवन में नैतिक नियमों की आवश्यकता बताई है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अर्थात् स्वराज्य की अवस्था तभी व्यक्त हो सकती है जब शांति और संतोष तथा सार्वत्रिक श्रम का पालन हो। अन्यत्र कहा है—

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निःशशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्।
(ऋग्वेद १।८०।१)

इस मंत्र का यदि नैतिक दृष्टि से अर्थ करें तो कह सकते हैं कि स्वराज्य तभी प्राप्त हो सकता है, जब ओज और शक्ति के सहारे आसुरी और राक्षसी प्रवृत्तियों का दमन किया जाय। यह संभव नहीं है कि वर्ग-विशेष या जाति-विशेष अपनी स्वार्थमूलक एषणाओं का भोग करे और देश में स्वराज्य टिका रहे। आज सर्वत्र राजनीतिक स्वतंत्रता की धूम मची है। यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनायसेंस) के बाद यह संदेश मुख्यतः सुनाई पड़ा। अमेरिका और फ्रांस की राज्यक्रांति ने इस संदेश को जोरों से प्रचारित किया। किन्तु, आज विश्व में सर्वत्र नैतिक खोखलापन और हाहाकार है। स्वतंत्रता, भोगवाद, स्वार्थवाद और शोषणवाद में बदल गई है। ऋग्वेद के अनुसार स्वराज्य के लिए परिग्रह और हिंसारूपी "अहि" (सर्प) के बध की आवश्यकता है। मानव-सभ्यता और संस्कृति के इस भयंकर संक्रमण-काल में नैतिक स्वराज्य के मंत्र का क्रियान्वयन अभिप्रेत है। आज दुनिया स्वच्छंदता की खोज में पागल होकर उस निर्मल नैतिक स्वराज्य के मंत्र को भूल चुकी है, जिसमें आत्माभिमुखी परमार्थसाधक नियमों के अनुसार जीवन-यापन करना ही परम कर्त्तव्य माना गया था। नियमों का अभाव अराजकता और मात्स्यन्याय को उत्पन्न करता है। केवल भय के कारण नियमों का अनुवर्तन करना दासों का काम है। सच्ची नैतिकता से युक्त कर्मयोग तभी व्यक्त होता है, जब व्यापक आत्मकल्याण तथा जनकल्याण को सामने रखकर सत्कर्म का पालन होता है। इस प्रकार के कर्मयोग के पालन के लिए आत्मकाम, आत्मज्ञानी मनुष्य समस्त पृथ्वी के क्षणिक भोगों को छोड़ देता है। आधुनिक युग में इसी स्वराज्य का संदेश दयानंद, तिलक, गाँधी और अरविन्द ने भारत को दिया। यह स्वराज्य यूरोपीय सभ्यता द्वारा उच्चारित स्वच्छंदता और स्वतंत्रता से अधिक विशाल, उन्नयनकारी और तेजस्वी है। इस स्वराज्य का रूपकपूर्वक वर्णन यजुर्वेद में किया गया है—

बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्म वीर्यम्
आत्मा क्षत्रमुरो मम।
पृष्ठी मे राष्ट्रमुदरमंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी।
ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः। (यजुर्वेद २०,७-८)

अर्थात् "जो पूर्ण बल है, वही मेरी भुजा है; जो उत्तम कर्म और पराक्रम से युक्त इंद्रिय और मन हैं, वे मेरे हाथों के समान हैं; राजधर्म, शौर्य, धैर्य, और हृदय का ज्ञान

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है, वे सब मेरे आत्मा के समान हैं; जो उत्तम राज्य है, वह मेरी पीठ के समतुल्य है; जो राज्य-सेना और कोश है, वह मेरे हस्त के मूल और उदर के समान तथा जो प्रजा को सुख से भूषित और पुरुषार्थी करता है वह मेरे कंठ और श्रोणी अर्थात् नाभि के अधोभागस्थान के समतुल्य है; जो प्रजा को व्यापार और गणित-विद्या में निपुण करता है, वह अरत्नी और ऊरु अंग के समान है तथा जो प्रजा और राजसभा का मेल रखता है, वह मेरी जानु के समान है। जो इस प्रकार प्रजापालन के उत्तम कर्म हैं, वे सब मेरे अंगों के समान हैं।"[१]

इस व्यापक आदर्श से प्रभावित होकर मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थों को भूलकर समस्त जनता अर्थात् विशः से एकात्मता अनुभव करता है।[२] यही सच्चे नैतिक स्वराज्य का मूल है। जब प्रत्येक मनुष्य न्याय और अन्याय, धर्म और अधर्म, सत् और असत् का भेद भुला कर झूठे "स्व" की उपासना में लिप्त हो जाता है, तब मानो सारी जनता सारी जनता से युद्ध कर रही होती है। यह घोर अशांति,, अंधकार और निगूढ़ राक्षसिकता की अवस्था है। ऐसे अवसर पर कला, विज्ञान, धर्म, दर्शन आदि का तिरोभाव हो जाता है। अतः, वैदिक स्वराज्य के निर्मल आदर्श को आधुनिक विश्व-राजनीति के संचालन में ध्यान में रखना चाहिए। इस स्वराज्य के आदर्श की सिद्धि के लिए स्वधर्म, अर्थात् अपना गुणकर्मस्वभावानुमोदित कर्म करना आवश्यक है। जब मनुष्य अपने कर्म में अनुरक्त होता है, तब वह उसमें कौशल और प्रवीणता प्राप्त करता है। बार-बार एक कार्य करने से दक्षता की उपलब्धि होती है। सभ्यता के विकास के लिए दक्षता, अर्थात् कार्यनैपुण्य परम आवश्यक है। दूसरी ओर स्वकर्म-पालन से अव्यवस्था उत्पन्न नहीं हो पाती। अतः, इस आदर्श को व्यक्त करते हुए गीता में कहा गया है—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्॥ (भगवद्गीता, १८।४७)

यदि स्वराज्य का आदर्श वेदों का प्रथम महान् राजनीतिक संदेश है, तो उनका दूसरा महान् राजनीतिक आदर्श है जनमत को राज्य का आधार बनाना। वैदिक काल में सभा, समिति और विदथ का विकास हुआ था।[३] यदि वैदिक संस्थाओं के नैतिक और आदर्शमूलक पक्ष को प्रशस्त और परिष्कृत करना चाहें तो ऐसा कह सकते हैं नरपति को

---

१. स्वामी दयानन्द, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ० ३२४।

२. दृते दृँह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥
(यजुर्वेद वा० सं०, ३६।१८)

३. त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान्॥
(ऋग्वेद अ० ३, अ० २, व० २४, म० १)
=३, ३८, ६

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अपने मनोनुकूल कार्य न कर विशः की इच्छाओं, आकांक्षाओं, परंपराओं और आदर्श के अनुसार कार्य करना चाहिए। अर्थात् व्यावहारिक संप्रभुता[1] का बीज सामान्य जनता के संकल्प में न कि शस्त्रबल में रहना चाहिए। वेदों के अनुसार क्षत्रबल का ब्राह्मबल से समन्वय होना चाहिए—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥ (यजुर्वेद २०।२५)

ब्राह्मबल और क्षात्रबल का समन्वित क्रियात्मक उदाहरण राम, भीष्म, कृष्ण आदि के चरित्र में प्राप्त होता है। कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में इसी विचार का अंशतः समर्थन किया। केवल ब्रह्मबल सांसारिक उन्नति से उदासीन हो जाता है और इस कारण राष्ट्रीय जीवन कमजोर हो जाता है। केवल क्षत्रबल शक्तिवाद में परिणत हो जाता है। सीजर, सिकंदर, नेपोलियन और हिटलर का लज्जाजनक पराभव इसका उदाहरण है। अतः, वेदों ने ब्राह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति के समन्वय का उपदेश दिया है और सम्यक् राजनीतिक व्यवस्था के लिए दोनों की आवश्यकता है भी। मुख्य तत्त्व यह है कि किसी एक वर्ग या एक अधिनायक के हाथों में शक्ति का केंद्रीकरण न हो। वैदिक संस्थात्मक जीवन का यह परिलक्षित आदर्श माना जा सकता है कि शक्ति का क्षेत्रीय और कर्मीय विकेंद्रीकरण हो।[2] अथर्ववेद में कहा है—

तं सभा च समितिश्च सेना च। (अथर्ववेद १५।९।२)

: : : : : : : : : : : :

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः।
त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमार्युर्व्यश्नवत्। (अथर्ववेद १९,५५,६)

अर्थात् "राजसभा की रक्षा होनी चाहिए सभा के सभासद संस्कृत होकर सत्य और धर्म की रक्षा करें।" राजकीय जीवन के उपयुक्त कर्मयोग का पालन करते हुए आयुर्यापन ही निर्मल आदर्श है। राजकार्य में "विशः" का महत्त्व बताते हुए शतपथ-ब्राह्मण में कहा गया है—

श्रीर्वैराष्ट्रम्।...श्रीर्वैराष्ट्रस्य भारः।...श्रीर्वैराष्ट्रस्य मध्यम्।...
क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतम। विड्वै गभो पसो राष्ट्रमेव
विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः। विशमेव राष्ट्रायाद्यां
करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशु मन्यत इति।
(शतपथ ब्राह्मण, १३।२।९।२—८)

---

१. व्यावहारिक संप्रभुता = Actual and dynamic exercise of sovereignty

२. क्षेत्रीय विकेंद्रीकरण = Territorial decentralization.
कर्मीय विकेंद्रीकरण = Functional decentralization.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्री का अर्थ कुछ भाष्यकारों ने विद्यादि उत्तम गुणों से युक्त नीति किया है। यदि शक्ति का केन्द्रीकरण होता है, तो प्रजाओं का शोषण और उत्पीड़न होता है। जैसे मांसाहारी मनुष्य पशु को देखकर उसको मारने की इच्छा करता है, उसी प्रकार अधिनायक प्रजाओं के उत्कर्ष का हनन करता है और स्वेच्छाचारी होता है। अतः, समष्टि के कल्याण के लिए आवश्यक है कि जनता की सहमति ही राज्य का आधार बने। इसलिये वेद में कहा गया है :—"विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु।" मेरे विचार में नैतिक "स्वराज्यवाद" और "विशः वाद"—आज भी उपयुक्त हैं। जब इनका सम्यक् पालन होता है, तब ऐतरेय ब्राह्मण के शब्दों में कह सकते हैं कि "तद्राष्ट्रं समृद्धम्"[१]।

१. तानहमनु राज्याय साम्राज्याय भौज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय माहाराज्यायाधिपत्याय स्वावश्यायातिष्ठायाऽऽरोहामीति।···
ब्रह्मण एव तत्क्षत्रं वशमेति तद्यत्र वै ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्टं समृद्धं तद्वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते। —(ऐतरेय ब्राह्मण ८।६।९)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परिशिष्ट—२

ऋत-संप्रभुतावाद : वेद का विराट् राजनीतिक दर्शन[1]

दार्शनिक राजनीतिशास्त्र के अनुसार सबसे व्यापक और मूलभूत संप्रभुता ऋत की है। ऋत उस शक्ति का नाम है जो मानव को सत्पथ पर प्रेरित करती है।

ऋतस्य ही शुरुधः सन्ति पूर्वी ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको वधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः॥
ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः॥
ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः॥
ऋताय पृथिवी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते॥-

—(ऋग्वेद ४, २३, ८-१०)

ऋत को शक्तिप्रद विविध भोज्यान्न है। ऋत का विचार नियमानुलंघनों को हटाता है। उत्तेजक, उद्दीप्त, ऋत की स्तुतियां जीवित वधिरों के कर्णों को खोलती हैं।

ऋत का आधार सुदृढ़ है, इसके सुंदर रूप में उत्कृष्ट सौंदर्य है। ऋत के द्वारा दीर्घकालस्थायी अन्न मिलता है। ऋत के द्वारा गायें हमारे यज्ञस्थल (=ऋत) में आती हैं।

ऋत को दृढ़ स्थापित करता हुआ वह इसको धारण करता है। ऋत की शक्ति तेज चलती है और युद्ध-वस्तुओं (booty) को प्राप्त करती है। वृहत्, गहरी पृथिवी और द्युलोक ऋत के हैं। शक्तिमती दोग्ध्री धेनुएँ अपना दूध ऋत को देती हैं।

(ऋ० ४, २३, ८—१०)

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे॥

(ऋग्वेद १, १५६, ३)

---

१. यह निबंध वेदवाणी (वाराणसी) के वेदांक, नवम्बर १९५६ (पृ० ६७-६८) में प्रकाशित है। यहाँ इसका यत्र-तत्र संशोधित और संवर्धित रूप प्रस्तुत है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्तुतिकर्त्ताओ ! तुमने उसे संतुष्ट किया है, जैसा तुम जानते हो (कि वह), जन्म से ऋत का पूर्व गर्भ है। उसका नाम जानते हुए तुमने इसे कह डाला है। हे विष्णो ! तुम्हारी महती सुमति का हम भजन करें । (१, १५६, ३)

वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रभामहे ।
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता ॥ (ऋग्वेद १०, १३३, ६)

हे इन्द्र ! तुम्हारे ऊपर हम आश्रित हैं और तुम्हारे सखित्व में संसक्त हैं। और समस्त दोषों से (अलंग) ऋत के पथ पर हमें ले चलो। (१०, १३३,६)

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥
(ऋग्वेद १, १२४,३)

यह द्यौः की पुत्री, पूर्व दिशा में, प्रकाश के वस्त्रों को धारण करती हुई उदित हुई। वह ऋत के साधु पथ का अनुसरण करती है और दिशाओं को जानती हुई मार्गच्युत नहीं होती है। [ऋ० १, १२४, ३] । सायण के अनुसार ऋत से यहाँ तात्पर्य आदित्य से है। ऋतस्यादित्यस्य पंथां पंथानं मेरोः प्रांतप्रदेशमनुक्रमेण—सायण ।

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥
[ऋग्वेद ७, ६०, ५]

मित्र, अर्यमा और वरुण, समस्त अनृत [अर्थात् माया, वक्रता, छद्म] के जानकार हैं [चेतारो] । ये, अदिति के पुत्र, शक्तिशाली (शग्मासः) और अदब्ध (अहिंसित—सायण) ऋत के गृह में परिवृद्ध हुए हैं। (ऋ० ७, ६०, ५) सायण ने चेतारः का अर्थ हंतारः किया है।

भौतिकवादी और यंत्रवादी दुनिया में शाश्वत, अखिलविश्वांतरानुस्यूत अप्रेमय, अप्रतिहार्थ, दुरतिक्रमणीय प्राथमिक नियम पर विश्वास करना कठिन है। तथापि इतिहास की यही शिक्षा है कि राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए एक अति-राजनीतिक विराट् नियम की आवश्यकता है। ऋत से हमें किसी धर्मविशेष का समर्थन अभीष्ट नहीं है। ऋत से हमारा तात्पर्य उन विशाल व्यापक आदेशों से है जो मानवमात्र के कल्याण के निमित्त आवश्यक हैं। आज की प्रतियोगितावादी संघर्षशील दुनिया में शान्ति और सुव्यवस्था के लिए नैतिक नियमों का माहात्म्य प्रकटीकरण आवश्यक मालूम होता है। केवल राज्य या राज्यविशेष के संविधान पर ही पूरा बल देने से मानवता की भावना शिथिल हो जाती है। हमें सर्वभूतहितवाद का ध्यान रखते हुए मानव-संस्कृति के उन्नायक आदर्शों को संरक्षित करना है। ऋत की संप्रभुता से हमारा केवल यही तात्पर्य है कि राज्यविशेष की जनता अपने को संप्रभुतासंपन्न मान कर मानवता की उपेक्षा न कर दे। ध्यान में रखना है कि संप्रभुता का आधुनिक विचार मध्यकालीन चर्चसमर्थित धार्मिक एकता की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विशृंखलता के कारण ही उत्पन्न हुआ है। मानव की नैतिक एकता हमारा उद्देश्य है। तभी सर्वभूतहितवाद की संसिद्धि हो सकती है। इस व्यापक सर्वभूतहितवाद पर ध्यान आकृष्ट करनेके लिए और क्षणस्थायी सांसारिक भोगों के पीछे पागल दुनिया को सत्पथ पर लाने के लिए और राज्य भी किसी विशिष्ट साध्य का साधन है, इस मंत्र को चरितार्थ करने के लिए ऋत की संप्रभुता मानना आज आवश्यक है। ऋतवाद का, इतिहास में वर्तमान देवतंत्र या पुजारीवाद से किंचिन्मात्र भी संबंन्ध नहीं है। ऋतवाद का अर्थ है –मानव के नैतिक और आत्मिक चैतन्य का पोषण। इस ऋत का ज्ञान व्यवसायात्मिका बुद्धि के द्वारा होता है। ऋतवाद की संप्रभुता मानने के दो व्यावहारिक परिणाम हैं। प्रथम, यह व्यापक मानवता का समर्थन करता है। अतः यदि कोई अधिनायकवादी या नस्लवादी राज्य मानवगरिमा और सम्मान का अपहरण करता है, तो उसके नियम सत्वर अवैधिक घोषित किये जा सकते हैं। युद्ध-लिप्सा, बलवाद, दंडवाद को नियंत्रित करना ऋतसंप्रभुतावाद का परिणाम होगा। इस प्रकार अंताराष्ट्रिय राजनीति की दानवी विभीषिका का भी संशोधन संभव है। इसका दूसरा परिणाम है, आवश्यकता पड़ने पर प्रतिरोध का समर्थन। यदि मानव की व्यवसायात्मिका बुद्धि किसी राजकीय नियम को अन्यायपूर्ण समझती है या विराट् श्रेयों का खंडनकर्त्ता मानती है तो वह उसका अननुवर्तित्व (disobedience) कर सकती है और यदि प्रश्न अत्यंत गंभीर है तो मानव उसका प्रतिरोध (Active resistance) भी कर सकता है। अतः मानव-एकता, शाश्वत शांति और व्यवसायात्मिका बुद्धि के आधार पर समर्थित प्रतिरोध-सिद्धांत का पोषण करने के लिए ऋतसंप्रभुतावाद दार्शनिक राजनीतिशास्त्र का आवश्यक अंग है।

ऋतसंप्रभुतावाद का संबंध मानव-इतिहास और संस्कृति से है। यह मानवता को दृष्टि में रखकर ही क्रियान्वित हो सकता है। किंतु समाजविशेष और राज्यविशेष की दृष्टि से जनता को संप्रभुतासंपन्न मानना, संप्रभुता का दूसरा स्तर है। प्रजातंत्रीय परंपरा की दृष्टि से जनता या लोक या "विशः" की संप्रभुता का अर्थ है—अंतिम दृष्टि से जनता की भावना, आशा, ऐतिहासिक परम्परा और संकल्पशक्ति का महत्त्व स्वीकार करना। जनसंप्रभुतावाद का यह अर्थ नहीं है कि जनता के पास निश्चित ही सैन्यबल की अधिकता है। युद्धकला के विकास के साथ-साथ आज की सरकार की सैन्यशक्ति का अतिरंजित अप्रत्याशित विकास हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी के समान अब बड़े-बड़े शहरों में घेरा डालकर सरकार को पराजित करना संभव नहीं है। अतः जनसंप्रभुतावाद जनता की भौतिकवादी सैनिक शक्ति के समर्थन का सिद्धांत नहीं है। अपितु इसका अर्थ है कि कोई भी सरकार जनकल्याण, जनता की आशा, उसके संकल्प आदि का उल्लंघन कर टिक नहीं सकती है। आज जनता की प्रचंड शक्ति और उसके महान् प्रकृष्ट संकल्प-बल का पता लग रहा है। शक्तिवाद का मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय विश्लेषण बताता है कि राष्ट्र को मजबूत बनाने का मार्ग सैनिकशक्ति की अभिप्राप्ति नहीं है, अपितु जनता की चरित्रशक्ति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

और प्रतिरोध करने को प्रचंड आत्मबल का विस्तार ही है। चेतन जनसमाज का आत्मबल ही प्रतिरक्षा का अमोघ अस्त्र है। जनवाद के प्रकृष्ट महत्त्व को देखते हुए ही प्रजातंत्र में वयस्क मताधिकार का नियम बनाया गया है। कोई भी प्रजातंत्रीय सरकार इस व्यापक जनवाद की उपेक्षा कर खतरे को ही मोल लेगी। जनता की शक्ति ही राज को परिपुष्ट करती है और जनसंकल्प उसको नवचेतना प्रदान करता है। यद्यपि रूसो का यह विचार कि सामान्य संकल्प वस्तुतः स्वयं शासन-व्यवस्था चलावे, आज के विशाल राष्ट्रों के लिए अव्यावहारिक है, तथापि इतना स्पष्ट है कि राजकीय शक्ति को केवल दमनयंत्र के रूप में व्याख्येय मानना असमीचीन है। जनसंप्रभुतावाद का सिद्धांत बताता है कि राज्य में वर्तमान संप्रभुता किसी निर्धारित श्रेणी या दल की बलवत्ता नहीं है, अपितु जनता की पारस्परिक अन्योन्याश्रयिता और सामूहिक कर्तृत्व का चेतनीकरण है। जनता जब संगठित होकर कार्य करती है तब प्रजातंत्र की आशा प्रकृष्ट केंद्र जनतासंप्रभुतावाद या विशः संप्रभुतावाद वेगवान् और फलवान् होता है।

संप्रभुतावाद का पहला स्तर है—ऋतसंप्रभुता और दूसरा स्तर है जनसंप्रभुता। पहला नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों का पोषक है और दूसरा जनता की ऐतिहासिक और सामाजिक विकासधारा का। किंतु संप्रभुतावाद का तीसरा स्तर भी है—संविधान की स्वतंत्रता। जिन प्रजातंत्रीय देशों में लिखित संविधान है, वहां संविधान का प्रकृष्ट महत्त्व है। जहां संविधान में परिवर्तन करने की विशेष प्रणाली है, वहां संविधान को साधारण विधियों से पृथक् किया गया है। इंगलैंड में संविधानात्मक नियम और साधारण विधि में कोई अंतर नहीं है। किंतु अमेरिका में यह पृथक्ता स्पष्ट मानी जाती है। संविधान की संप्रभुता विशिष्ट राजकीय शक्तियों के अधिकार और उत्तरदायित्व का क्रियात्मक नियंत्रण करती है। संविधान का अधिकार अथवा संगतता पाकर ही, राज्य की जो विधियाँ तदनुकूल रहती है, उन्हें नियंत्रणकारित्व प्राप्त होता है। संविधाननिर्माण और तदनुकूल विधिनिर्माण करने का अधिकार जिन राजकीय शक्तियों और अंगों को मिला हुआ है, उनका महत्त्व स्वीकार कर ही आधुनिक विकसित सभ्य समाज में कोई व्यवस्था टिक सकती है।

संप्रभुतावाद के जो तीन स्तर, ऋतसंप्रभुता, जनसंप्रभुता और संविधान-संप्रभुता, हमने स्वीकृत किये हैं, वे क्रियाकारित्व की दृष्टि से हैं। इस प्रकार के तीन स्तरों का स्वीकरण हमें एक ओर आस्टिन और हेगेल के उग्र राज्यशक्तिवाद से बचता है और दूसरी ओर बहुलवाद के भ्रमजाल से भी त्राण करता है। यह संप्रभुता को सामाजिक और राजनीतिक कार्यसंस्थापन का एक साधन मानता है। ऋतसंप्रभुता न केवल नैतिक आदर्शों को पुष्ट करती है, अपितु मानव-एकता का भी पोषण करती है। आज अंताराष्ट्रिय व्यवस्था, मात्र आदर्शवाद की वस्तु नहीं। किंतु सभ्यता के त्राण का एकमात्र मार्ग है। ऋत की संप्रभुता के आधार पर ही न्याय और स्वातंत्र्य के समर्थक मानव-समाज और अंताराष्ट्रिय एकता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

की स्थापना हो सकती है। राज्य को ही वास्तविक रूप में संपूर्ण शक्तियों का आगार मानना आज की दुनिया में असामयिक हो गया है और बड़ा-बड़ा दंड मानवता को इसके लिए भोगना पड़ा है। अतः आज न केवल सामाजिक और राष्ट्रिय क्षेत्र में सामंजस्य-स्थापन की आवश्यकता है, अपितु राष्ट्रों के आपसी संबंधों का भी शांतिपूर्वक सुलझाव करना है। यह तभी संभव है जब मानव को साध्य मानने वाले और सर्वभूतकल्याणवाद के पोषक ऋत को ही संप्रभु मानकर हम स्वार्थसाधक और युद्धोत्तेजक सीमित राष्ट्र की संप्रभुता से त्राण पा सकें। इस प्रकार व्यापक समन्वय कर ही हम मानव-सभ्यता और संस्कृति को प्रशस्त कल्याण-पथ का अनुगामी बना सकते हैं। यद्यपि ऋत का सिद्धांत ऋग्वेद में उद्घोषित हुआ था तथापि इसकी आध्यात्मिक, नैतिक और आदर्शमूलक काव्य का समर्थन कर ही हम इसे राजनीतिशास्त्र का एक विराट् प्रस्ताव बना सकते हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परिशिष्ट—३

प्लेटो और वेद

प्लेटो की महत्ता पश्चिमी सांस्कृतिक इतिहास में अतिशय प्रभावकारिणी है। उसने न केवल सुकरात के पूर्ववर्ती दर्शन और सुकरात के दर्शन को प्रणालीबद्ध किया, अपितु वह यूनान के तत्त्वमीमांसात्मक प्रत्ययवाद का वास्तविक संस्थापक था। ए० एन० ह्वाइटहेड का विचार है कि संपूर्ण आधुनिक पश्चिमी दर्शन प्लेटो की कृतियों पर पादटिप्पणी की शृंखला है। यद्यपि पौपर एवं कतिपय अन्य आलोचकों के द्वारा "स्वर्गिक प्लेटो" की भर्त्सना, फासीवाद और सर्वशक्तिवाद के समर्थक के रूप में की गयी है, तथापि वह राजनीति के प्रति नैतिक एवं श्रेयसात्मक दृष्टिकोण का सर्वोच्च समर्थक और भविष्य-वक्ता है। इस परमोत्कृष्ट कलाकार एवं महान् गणितज्ञ (प्लेटो) ने नैतिक शीलसद्गुण के विचार का समर्थन अतिकाव्यात्मक शैली में किया है। निस्संदेह हम अपने संकटकालीन युग में उससे प्रचुर प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं। वेदों ने, जिनकी आलोचना भारतीय आर्य-बर्बरों के आदिकालीन पद्यबद्ध अवशिष्ट के रूप में की गयी है, भारत के चिंतन पर सशक्त प्रभाव डाला है। मैं अरविन्द के द्वारा की गयी वैदिक ऋचाओं की रहस्यवादी व्याख्या को स्वीकार नहीं करता और न मैं दयानन्द के इस विचार को मानता हूँ कि ये ऋचायें सृष्टिकाल में भारतीय ऋषियों को प्रदत्त ईश्वरीय ज्ञान के याथातथ्यतः शब्दबद्ध रूप हैं। वेदों के सामान्य शाब्दिक अर्थ को स्वीकार करता हूँ तथापि यह विश्वास भी करता हूँ कि आधुनिक भारत वेदों के कतिपय ओजस्वी तथा उत्प्रेरक मंत्रों से कुछ सीख सकता है। प्लेटो और वेद का यह तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय मैंने इनमें पायी जानेवाली महती विभिन्नताओं को विस्मृत नहीं किया है।[२]

१—मैंने अपने दो शोध-निबन्धों में वेदों पर अपने विस्तृत विचारों की व्याख्या की है : "The Origin of the Upanishadic Religion and Philosphy in the Vedas", *Journal of the Bihar Research Society*, दिसंबर १९५० और "अद्वैतवाद और वेद" (हिन्दी में), पारिजात, पटना, १९४६।

२—रिचार्ड गार्बे, ए० बी० कीथ, जॉर्ज पी० कांगर तथा अन्य विचारकों के द्वारा भारतीय और यूनानी चिन्तन के ऐतिहासिक सम्बन्ध की समस्या का विवेचन हुआ है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्लेटो की तार्किक पद्धति एवं उसके संवाद-ग्रंथों में पायी जानेवाली वैचारिक एकता हम वेदों में नहीं पाते। प्लेटो प्रथम कोटि का तत्त्वमीमांसक है, जब कि वैदिक ऋषि अपने श्रेष्ठतम रूप में, काव्यात्मक धार्मिक गायक है। फिर भी मैंने इस तुलनात्मक विश्लेषण का प्रयास किया है, क्योंकि मेरा विश्वास है कि दोनों—प्लेटो के संवाद-ग्रंथों और वैदिक संहिताओं को—जीवन-शैली के चुनाव में मनुष्य को कुछ महत्त्वपूर्ण शिक्षा देनी है। मात्र सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिवर्त्तन, आवश्यक होते हुए भी पर्याप्त नहीं है। आज का मनुष्य पुरातन एवं मध्ययुगीन सभ्यताओं के मानवों से अधिक आत्मचेतन है और उसे मौलिक तथा विवेकशील चुनाव करना है। हमें संकटों और पतन से अपने को बचाने के लिये उपचार ढूंढना है।

प्लेटो प्रत्ययों (Ideas) के सिद्धांत को स्वीकार करता है। उसके अनुसार अपरिवर्त्तनशील आद्यरूपात्मक प्रत्यय ही अंतिम यथार्थ हैं। इन प्रत्ययों का चरम पर्यवसान शिव-प्रत्यय (Idea of Good) में होता है। यह महत्त्वपूर्ण है कि अंतिम यथार्थ अमूर्त प्रत्यय कल्पनामात्र कदापि नहीं है, अपितु उसकी (शिव प्रत्यय की) अवधारणा मूल्यमीमांसात्मक शब्दों में उपस्थित की गयी है। अतः इसका आशय नैतिक तत्त्वों की वस्तुनिष्ठता की गंभीर प्रतिष्ठापना भी है। वेद, ब्रह्मांड एवं विभिन्न देवताओं और देवियों की यथार्थता को स्वीकार करते हैं, परंतु वे उनके परे एक आधारभूत आध्यात्मिक अस्तित्ववान् की तात्त्विक यथार्थता को भी उपस्थित करते हैं :

आनीदवातं स्वधया तदेकम् (ऋग्वेद, १०,१२९,२)

× × ×

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति (ऋग्वेद १,१६४,४६)

यह सत्य है कि आधुनिक विज्ञान और दर्शन में एकत्ववादी निरपेक्षतावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई है। बर्गसाँ, जेम्स और ह्वाइटहेड इस प्रवृत्ति के उदाहरण हैं। प्राचीन देवविद्या की भी पुनर्व्याख्या, प्रक्रिया, "घटना" और "इतिहास" के शब्दों में की जा रही है एवं तात्त्विक स्थायित्व और एकत्व की अवधारणाओं को चुनौती दी जा रही है। अतः यह प्रतीत होता है कि इस हद तक प्लेटो और वेद दोनों पुरावशिष्ट हैं। शुद्ध विवेक की प्रक्रिया से आध्यात्मिक एकत्ववाद की रक्षा करना कठिन है। अतः अरविन्द के समान रहस्यवादी परामानसिक दृष्टि और योगसिद्ध अनुभव का अवलंबन करते हैं। परंतु वैदिक और औपनिषद निरपेक्ष के स्थान पर प्रक्रियात्मक और गत्यात्मकता और क्षणिकवाद को स्थापित करने में बौद्धदर्शन की असफलता से यह परिलक्षित हो जाता है कि मनुष्य की आध्यात्मिक खोज को तुष्ट करने के लिए एक अंतिम आधारभूत यथार्थ का विचार रखना अनिवार्य है। बल, ऊर्जा, ऊर्जाकणिक (क्वांटा), द्रव्यमान, प्रक्रिया, गत्यात्मकता, द्वंद्ववाद, सापेक्षवाद, अच्छी कार्यक्षम अवधारणायें हैं, परंतु एकाकीपन, नैराश्य, अवसाद तथा विषाद के गंभीरतम क्षण में इन अमूर्त्त अवधारणओं की प्रश्नोत्तरी के निर्माण से ही बौद्धिक प्राणी अपनी सम्मानपूर्ण सत्ता कायम नहीं रख सकता। मनुष्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

को विशाल, एकात्मक, निरपेक्ष नैतिक एवं आध्यात्मिक सत्ता की आवश्यकता का अनुभव होता है।

प्लेटो के अनुसार अस्थिरता, विविधता एवं परिवर्त्तन प्रतिबिंब मात्र है। जगत् उस गुफा के समान है जो सर्वोच्च ज्ञान के तिग्मद्युम्न सूर्य के प्रकाश से धूमिलरूप से प्रकाशित है। मनुष्य को ज्ञान के उच्चतम शिखर तक ऊर्ध्वसंचरण करना है एवं तदुपरांत परम बृहत् ऋत-विज्ञान के दिव्य आलोक को अपने साथ नीचे लाना है (Descent)। यद्यपि उत्तरकालीन वेदांत में अध्यासवाद एवं आत्मनिष्ठतावाद प्रधान हो गए हैं, तथापि वेदों और प्राचीन गद्य उपनिषदों में हम शक्तिमान् सत्ताशास्त्रीय यथार्थवाद पाते हैं, जो जागतिक, लौकिक और मानवीय मूल्यों तथा अस्तित्व के महत्त्व को प्रदर्शित करता है। प्लेटो के समान वेद और उपनिषदें भी दैवी ज्ञान की उपलब्धि की अनिवार्य आवश्यकता की शिक्षा देती हैं—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः (ऋग्वेद १, २२,२०)

× × ×

तमेव विदत्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय (यजुर्वेद, ३१,१८)

× × ×

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वाविद्ययामृतमश्नुते (यजुर्वेद, ४०,१४)

आधुनिक प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों में भौतिक और सामाजिक तथ्यों की पराभौतिक व्याख्या की उपेक्षा करने और मात्र प्रक्रियाओं की विस्तृत गवेषणा पर बल देने की सशक्त प्रवृत्ति है। परंतु यह प्रश्न शेष रह जाता है: इतनी विस्मयजनक मात्रा में तथ्यों के विशाल संग्रह से वास्तव में मानवता को क्या उपलब्ध हुआ है? हमलोग स्यात् उन शिशुओं के समान हैं, जो खिलौनों को एकत्र करते हैं और फिर उन्हें नष्ट कर देते हैं। वेदों और प्लेटो में भावनात्मक तटस्थता, वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक गवेषणा और भौतिकशास्त्रीय सूक्ष्मता के अभाव है। किन्तु इसके बावजूद, मैं प्रबलता से अनुभव करता हूँ कि कोई भी व्यक्ति आधुनिक सरकारी प्रतिवेदनों, "नीली पुस्तकों", सर्वेक्षणों, समितियों के प्रतिवेदनों और अभिशंसाओं के विशाल अपरिमेय तथ्यों को स्वायत्त करने की अपेक्षा प्लेटो के संवाद-ग्रंथों एवं वेदों के अध्ययन से अधिक चेतसिक उन्नयन प्राप्त कर सकता है। हमलोगों को देववादी और आस्थावान् नहीं बनना पड़ेगा, लेकिन समन्वित सामाजिक जीवन और संतुलित दृष्टिकोण के निर्माण के लिए प्लेटो और वेद उस किसी भी वस्तु से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जिसे आधुनिक संसार प्रदान कर सकता है। सामाजिक विज्ञानों का उद्देश्य उत्तम मनुष्य और उत्तम नागरिक का निर्माण होना चाहिये और इस रूपांतरकारी, आधारभूत नागरिक और नैतिक शिक्षा के लिए हमें वेदों और प्लेटो के उपदेशों की आवश्यकता है।

प्लेटो जागतिक नियतिवाद के सिद्धांत को स्वीकार करता है। अनिवार्यता की शक्तिशाली धुरी विद्यमान है, जिसमें विश्व के सभी विशाल क्षेत्र शृंखलित हैं। लैकेसिस, क्लेथो और एट्रोपोस, अतीत और वर्त्तमान तथा भविष्य को अपने दृढ़ नियंत्रण में धारण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

करती हैं। नियतिदेव की ये तीन पुत्रियाँ हैं। लेकिन कम-से-कम मनुष्य को अपनी नियति के प्रारंभिक चयन के कार्य में स्वतंत्रता है। उसे नैतिक और मानोवैज्ञानिक[1]—दोनों प्रकार की प्रारंभिक स्वतंत्रता की कुछ मात्रा प्राप्त है। वेद ऋत अर्थात् विराट् नैतिक नियम की जागतिक शक्ति की बात कहते हैं। यूनानी 'मोयरा' के समान ऋत देवताओं और मनुष्यों—दोनों को, नियंत्रित करता है। आधुनिक वैज्ञानिक विश्व, भगवद्गीता या संत ऑगस्टीन या दयानन्द के द्वारा समर्थित देवशास्त्रीय नियतिवाद को स्वीकार नहीं करता है। वह प्लेटो या हेगेल या वेदांत के तत्त्वमीमांसात्मक नियतिवाद को भी नहीं मानता। इसके स्थान पर हमें यांत्रिक वैज्ञानिक नियमों का नियतिवाद प्राप्त है। कभी-कभी इन नियमों को आइंस्टाइन, प्लांक, हाइजेनवर्ग, नील्स बोह्र इत्यादि का अनुसरण करते हुए दृश्यप्रपंचात्मक सामान्यीकरण कहा जाता है। नियत्रणशक्तिसमवेत निर्धारक बल का स्वभाव और संरचना चाहे जो हो, परंतु यदि अनिवार्यता अंतिम तथ्य है, तो संकल्प की आत्म-स्वतंत्रता—कांटप्रोक्त निरुपधिक कर्त्तव्य की आत्मचेतना के रूप में या आत्म-निर्धारक व्यक्ति के द्वारा स्वतंत्र राजनीतिक चयन की जनतांत्रिक धारणा के रूप में—एक मिथ्या कल्पना मात्र रह जाती है। इस कारण से स्वतंत्रता केवल आकांक्षा की वस्तु रह जायगी, सिद्ध लक्ष्य वास्तविकता की वस्तु नहीं। मानवीय अनुभव में नियतिवाद स्थायी तत्त्व है। परंतु स्वतंत्रता भी चिंतनशील आत्मा की सतत विद्यमान महत्त्वाकांक्षा है। दोनों का समन्वय किस भाँति किया जाय? यदि हम विश्व के नैतिक शासन में विश्वास करते हैं और यदि कार्य और व्यवहार की अपनी पद्धतियों को तदनुरूप निर्धारित करते हैं तो हम संभवतः अनिवार्यता की सशक्त संरचना के अंतर्गत स्वतंत्रता की एक मात्रा प्राप्त करते हैं। अस्तित्व के लिए संघर्ष के क्रम में वैयक्तिक जीवन-शक्ति का साम्मुख्य महान् विरोधों से होता है और प्रायः अनेक अवसरों पर जीवन-शक्ति विनष्ट होती हुई प्रतीत होती है। क्या करना होगा? निर्मम दार्शनिक स्तायकवाद भी अपर्याप्त प्रतीत होता है। सत्य की अवश्यंभाव्य व्याप्ति एवं अंतिम विजय में आस्था ही हमें त्राण दे सकती है। इसलिए वेद कहता है: ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु।

रिपब्लिक ग्रंथ में नैतिक आस्था के मूल्य की स्वीकृति का विचार रखा गया है। पोलिमार्कस, थ्रैसीमैकस और ग्लाउन के प्रतिवाद में प्लेटो न्याय की आंतरिकता के विचार का समर्थन करता है। न्याय आधारभूत मौलिक सद्गुण है और यह अन्याय से

---

१ रिपब्लिक, ६१८: "तुम्हारी प्रतिभा तुम्हें आवंटित नहीं की जायगी, लेकिन तुम अपनी प्रतिभा का चयन स्वयं करोगे; और जो पहले भाग्यपत्रक उठाता है, उसे प्रथम चयन करने दो, और जो जीवन वह चुनता है, वही उसकी नियति हो जायगी। सद्गुण स्वतंत्र हैं, और जिस रूप में मनुष्य उसका आदर करता है, उसी न्यनाधिक रूप में वह सद्गुण को उपलब्ध भी करता है; उत्तरदायित्व चयनकर्त्ता का है—परमात्मा का न्यायोचित है।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अतिशय उच्चतर है। अतः नैतिक क्षमताओं को विकसित करना आवश्यक है एवं यदि शक्तिवादिनी राजनीति को पूर्णतया अपसारित नहीं किया जा सके तो इसे द्वंद्वात्मक विवेक के नियम तथा विधिनिर्माताओं के द्वारा उद्घाटित आद्य विधि के द्वारा मर्यादित किया जाना चाहिए। वेद भी अस्तित्व के नैतिक प्रमाओं—धर्म और व्रत, की सर्वोच्चता की शिक्षा देता है :

इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि (यजुर्वेद, १, ५)

यह सत्य है कि नैतिक शिक्षायें, चाहे वे बुद्ध या ईसामसीह, या कांट, या गांधी की रही हों—मनुष्य की नैतिक पुनर्रचना करने में असफल हुई हैं। लेकिन क्या यह नैराश्यपूर्ण विषाद का कारण है ? निहित आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थों के बद्धमूल प्राचीन दुर्बल मनुष्य के शोषण से प्राप्त लाभों के संचय की सामान्य लिप्सा से संगठित हैं। इन स्वार्थों के विरुद्ध मूक मसीहा—सुकरात या प्लेटो या दीर्घतमस् का एकाकी स्वर निष्फल प्रतीत होता है। परंतु यदि मसीहा अपने उपदेशों को बंद कर दे तो हम हॉब्स की कृति लेवायथन में प्रोक्त प्राकृत अवस्था में लौट जायेंगे। नृतत्त्वशास्त्र एवं ऐतिहासिक समाज-शास्त्र इस बात का साक्ष्य देते हैं कि उच्च नैतिक उन्नायकों तथा उपदेशकों के द्वारा नीति-संहिता के विकास के प्रभाव के कारण मनुष्य ने प्रगति की है। यदि नैतिक शक्ति को दुर्बल तत्त्व नहीं रहना है तो द्वंद्वात्मक दर्शन और राजनीतिक शासन के समन्वय की परिकल्पना करना संभव है। दार्शनिक शासक की प्लेटो की अवधारणा ने सिसरो और फिकट को प्रेरणा दी। वेद भी ब्रह्म (आध्यात्मिक शक्ति) और क्षत्र (राजनीतिक और सैनिक शक्ति) के संगतिपूर्ण समन्वय की कल्पना करते हैं :

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्। (यजुर्वेद, ९३०-२-१६)

अथर्ववेद में कहा गया है कि अनुशासन और आत्मसंयम की नैतिक संहिता के अनुवर्तित्व से राजा राष्ट्र की रक्षा कर सकता है :

ब्रह्मचर्येण राजा राष्ट्रं विरक्षति (अथर्ववेद, ३, ५, १६)

इस प्रकार मैं देखता हूँ कि प्लेटो के राजनीति-दर्शन और अथर्ववेद में विशिष्ट सादृश्य है, क्योंकि दोनों, आध्यात्मिक विवेक और राजनीतिक शक्ति और सत्ता के समन्वय के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं।

जब मैं प्लेटो और वेद के कतिपय मंत्रों में राजनीति के प्रति सशक्त नैतिक दृष्टि-कोण पर ध्यान देता हूँ, तब मैं उनकी विचार-संरचनाओं की अनेक दुर्बलताओं को विस्मृत नहीं करता हूँ। प्लेटो यूनानियों और बर्बरों तथा नागरिकों एवं दासों के अंतर को अपने विचार से पूर्णतया अपसारित नहीं कर सका। ऋग्वेद में भी आर्य और दस्यु में पर्याप्त अंतर किया गया है। इस प्रकार प्लेटो और वेद दोनों में हम कुछ संकीर्ण स्थानीयतावाद

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथा सीमित देशभक्तिवाद पाते हैं। शासकों को निरपेक्ष शक्ति से समवेत करने के प्रस्ताव में अभिव्यक्त, प्लेटो का सत्तावाद, आधुनिक जनतांत्रिक संदर्भ में अरक्षणीय है। उसी प्रकार वेद का राजतंत्रात्मक आग्रह असमर्थनीय है।

परंतु इन तथा कई अन्य दुर्बलताओं के बावजूद, जो तत्व मुझे फिर भी प्लेटो और वेद की ओर आकृष्ट करता है, वह है, उनमें प्राप्त प्राणवत्ता, बल और नैतिक शक्ति के संदेश। प्लेटो और वेद में अनेक तार्किक, वैज्ञानिक-ब्रह्मांडशास्त्रीय ऐतिहासिक और अन्य भ्रांतियों के बावजूद, मैं उनके प्रज्ञा के बहुमूल्य शब्दों से उत्कट रूप से उत्प्रेरित अनुभव करता हूँ। वे हमें अपराजेय नैतिक बल, सत्ता के विरुद्ध खड़े होने तथा सत्य और न्याय के नाम पर शक्तिवाद का प्रतिरोध करने की क्षमता प्रदान करते हैं। प्लेटो ने सत्यवीर सुकरात के सर्वोच्च रूप को साहित्यिक अमरत्व दिया है।—"अतएव, ऐ न्यायाधीशो, आज से मृत्यु के विषय में शुभ प्रसन्नता से संयुक्त हो जाओ, और इस बात को निश्चित रूप से जान लो कि उत्तम मानव पर, उसके जीवनकाल में या मृत्यु के बाद, कोई अहित घटित नहीं हो सकता। वह और उसके स्वजन देवताओं के द्वारा उपेक्षित नहीं रहते; मेरा अंतकाल मात्र संयोग या दैवयोग से नहीं आ पहुँचा है। "मैं इसलिए भी अपने अपकर्षकों या अभियोक्ताओं से क्रुद्ध नहीं हूँ, क्योंकि उन्होंने मुझे कोई क्षति नहीं पहुँचायी है, यद्यपि मेरे किसी हित का साधन करना उनका आशय नहीं था; और इसलिए मैं भद्रतापूर्वक उनकी आलोचना कर सकता हूँ।...यदि वे (मेरे पुत्र) संपत्ति के विषय में, या सद्गुण से अधिक किसी अन्य विषय में चिंता करें, या जब वे वास्तविक रूप में कुछ-न होने पर कुछ होने का दंभ करें, तो उनकी निंदा करो।" (प्लेटो : अपोलौजी, ४१,)। वेद का भी सर्वोच्च संदेश अभय है। वेद कहते हैं :

यतो यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु (यजुर्वेद, ३६, २२)

× × × ×

तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योः (अथर्ववेद, १०, ८, ४४)

सामाजिक और राजनीतिक आदर्श के रूप में अभय के संदेश का समर्थन आधुनिक युग के दो महान् नव्य वेदांतियों,—विवेकानन्द और रामतीर्थ ने किया है। भगवद्गीता के आधार पर महात्मा गांधी ने अभयम् को सत्याग्रही के महान् व्रतों में एक व्रत बना दिया।

हमलोगों का देश आकृतिहीनता, गड़बड़ी एवं दुर्बलता के युग से गुजर रहा है। हमें पृथिवी की दो उत्कृष्ट महती सभ्यताओं और संस्कृतियों के दो महान् संस्थापकों—प्लेटो और वेद, के राजनीतिक और नैतिक दर्शन की आवश्यकता है। अधःपतन के भविष्यवक्ता नैतिक निश्चेष्टता और इतिहासविहीनता के विचार की घोषणा कर सकते हैं या पश्चिम की विवेकहीन अभ्यर्थना का हमारी मुक्ति का एक मात्र मार्ग बता सकते हैं। परंतु उत्कट

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आशावाद, नैतिक आस्था एवं आध्यात्मिक गरिमा का स्रोत प्लेटो और वेद में अनुस्यूत हैं। भारत के राजनीतिक दर्शन को मैकियावेली, हॉब्स और नीत्शे के सदृश पाश्चात्त्य विद्वानों एवं विचारकों के नैतिक दृष्टि से घातक सिद्धांतों की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है और न प्लेटो और वैदिक संहिताओं के रचयिता-जैसे भविष्यद्रष्टाओं, महान् ऋषियों एवं दार्शनिकों के उप्रेरित एवं जीवंत उपदेशों की उपेक्षा करने की उपादेयता है। राजनीतिक सफलता के लिये हमें मानव-आत्मा में आस्था की अपेक्षा है। केवल शक्तिशाली मानवतावादी आस्था और सशक्त नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा प्रेरणास्पद विश्वास प्रदान कर सकती है। और केवल वह, जो राष्ट्र और व्यक्तियों को शक्तिमत्ता ऊर्जस्, वर्चस्, भद्रता और श्रेयस् प्रदान करता है, सत्य है एवं जीवित रहने के योग्य है :

सा मा सत्योक्तिः परिपातु (ऋग्वेद, १०, ३७, २)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संदर्भ-ग्रंथों और निबंधों की सूची

(प्रायः ऐतिहासिक क्रम से—पुस्तक-प्रकाशन संवत्सर के अनुसार)

(क) ऋग्वेद (पाठ, अनुवाद और भाष्य)

१. रोजेन (सम्पादक) : ऋग्वेद स्पेसिमेन, लंदन, १८३०

२. ,, : ऋग्वेद (प्रथम अष्टक, लैटिन-अनुवाद सहित) लंदन, १८३८

३-६. लेंगलोया, ए० : ऋग्वेद का फ्रेंच भाषा में अनुवाद। चार खंड। १८४८-५१

४-७ मैक्समूलर : ऋग्वेद संहिता, सायण-भाष्य के साथ। प्रथम संस्करण १८४९-१८७६ छः खंड। द्वितीय संस्करण १८९०-९२, चार खंड

८-१३. विलसन, एच० एच० : ऋग्वेद संहिता का सायण-भाष्याधृत अंग्रेजी अनुवाद। विलसन की मृत्यु के बाद कावेल द्वारा संपूर्णताप्राप्त। छः खंड १८५०-१८६३।

१४-१५. आफेख्ट थि० (सम्पादक) : ऋग्वेद संहिता। रोमन लिपि में सम्पादित (इन्डिश्शे स्टूटियन, खण ६, ७) बर्लिन १८६१, १८६३। संपूर्ण ऋग्वेद का प्रथम प्रकाशित संस्करण

१६. थीबो, जार्ज : जटापटल। ऋग्वेद का जटापाठ मात्र १२ कंडिकाएँ। लायपजिग, १८७०

१७-१८. मैक्समूलर : ऋग्वेद, संहिता और पदपाठ (देवनागरी में)। दो खंड, लंदन, १८७३ द्वितीय संस्करण, लंदन १८७७

१९. ग्रासमैन, हर्मान : वोर्टरबुख त्सुम ऋग्वेद (ऋग्वेद का कोश)। १८७३

२०-२१. ,, ,, : ऋग्वेद : पद्यबद्ध जर्मन अनुवाद। दो खंड। १८७६-७७

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२२-२७. लुडविग, आल्फ्रेड : ऋग्वेद : जर्मन गद्य में अनुवाद और भाष्य, प्राग। छः खंड—खंड—१, १८७६। खंड—२, १८७६। खंड—३, १८७८। खंड—४, १८८१। खंड—५, १८८३। खंड—६, १८८८

२८-३५. दयानन्द सरस्वती : ऋग्वेद पर संस्कृत और हिंदी भाष्य (प्रायः सप्तम मंडल तक) ९ खंड

३६. ,, ,, : ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका। १८७६

३७. मैकडोनल आर्थरएंटोनी (सम्पादक) : कात्यायन-प्रणीत ऋग्वेद-सर्वानुक्रमणी (षड्गुरुशिष्य प्रणीत वेदार्थदीपिका से उद्धरण सहित)। आक्सफोर्ड, १८८६

३८-३९. ग्रिफिथ, राल्फ टी० एच० : हिम्स आफ दि ऋग्वेद। २ खंड। प्रथम संस्करण, १८८९। द्वितीय संस्करण, १८९६

४०. मैक्समूलर, फ्रेडरिक : वेदिक हिम्स (ऋग्वेद के मरुत, रुद्र, वायु और वात सूक्तों का अनुवाद)। सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट सीरीज, १८९१

४१. ओल्डेनबर्ग, हर्मान : वेदिक हिम्स। (ऋग्वेद के प्रथम-पंचम मंडल तक के सूक्तों का अनुवाद)। १८९५

४२-४४. ,, ,, : ऋग्वेद नोटेन (जर्मन में)। प्रथम मंडल से षष्ठ मंडल पर्यंत। दो खंड। बर्लिन, १९०९

४४. अरविंद : हिम्स टु दि मिस्टिक फायर। (आर्य मे प्रकाशित, १९१५-१६)। प्रथम संस्करण, १९४६। द्वितीय सं० १९५२

४५. ,, : दी लायफ डिभायन (कतिपय ऋग्वेद के मंत्रों का अनुवाद) ——

४६-४७. ब्लूमफील्ड, मौरिस : ऋग्वेद रेपिटिशंस। २ खंड, १९१६

४८. : ऋग्वेद संहिता। वैदिक प्रेस अजमेर। चतुर्थ आवृत्ति, १९४१

४९-५३ सायण-भाष्य-सहित ऋग्वेद संहिता : पूना। पाँचवाँ खंड, सूचीपत्र

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

५४. स्कंद स्वामी (सातवीं शताब्दी, गुजरात) : ऋग्वेद-भाष्य (प्रथम अष्टक), कुन्हन राजा द्वारा संपादित

५५-५८. वेंकट माधव (ग्यारहवीं शताब्दी ई०) : ऋग्वेद संहिता पर भाष्य, लक्ष्मणस्वरूप द्वारा सम्पादित । ४ खंड

५९ मैक्डोनोल : हिम्स फ्राम दि ऋग्वेद

६०-६३. गेल्डनर, कार्ल एफ० : डेर ऋग्वेद । जर्मन में संपूर्ण ऋग्वेद का अनुवाद और टिप्पणी । ३ खंड । हार्वर्ड संस्करण, १९५१ । चौथा खंड सूचीपत्र, जोहांस नोवेल द्वारा प्रणीत । १९५७

(ख) ऋग्वेद पर आलोचनात्मक ग्रंथ

६४. केयगी : डेर ऋग्वेद (ऐरोस्मिथ द्वारा अनूदित) । १८८६

६५. ओल्डेनवर्ग, हर्मान : मेट्रिशे उन्ट टेक्सटगेशिक्टलिखे प्रोलेगोमिना । १८८८

६६. शेफ्लेवित्ज : दी एपोक्रायफेन देस ऋग्वेद । (खिल-प्रकरण विषयक)

६७. सीग : दी सागेंस्टौफ देस ऋग्वेद । (ऐतिहासिक आख्यान)

६८. दास, अविनाशचंद्र : ऋग्वेदिक इंडिया । प्रथम संस्करण, द्वितीय १९२७ ।

६९. ,, ,, : ऋग्वेदिक कल्चर । १९२५

७०. ग्रीजवोल्ड : रेलिजन ऑफ दि ऋग्वेद ।

७१. गोंड, जे० : एपिथेट्स (विशेषण) इन दि ऋग्वेद । हेग, १९५९

(ग) सामवेद

७२. स्टिभेन्सन : सामवेद संहिता (राणायनीय शाखा) का अंग्रेजी अनुवाद । १८४२

७३. बेन्फे : सामवेद (राणायनीय शाखा) । पाठ संपादित और पद्यबद्ध जर्मन अनुवाद । १८४८

७४. सामवेद संहिता : (कौथुम शाखा की नैगेय उपशाखा)—केवल सातवाँ प्रपाठक संपादित । १८६८

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

७५. ग्रिफिथ, राल्फ टी० एच० : सामवेद-संहिता का अँग्रेजी-अनुवाद और संक्षिप्त भाष्य। १८९३

७६. सामवेद-संहिता : वैदिक प्रेस, अजमेर। १९२९

(घ) कृष्णयजुर्वेद

(१) तैत्तिरीयसंहिता

७७-७८. बेबर, अल्ब्रेख्ट (संपादक) : तैत्तिरीय संहिता (इंडिशे स्टूडियन, खंड ११, १२)। लायपजिग, १८७१-७२

७९-९०. भट्टभास्कर : तैत्तिरीय संहिता-भाष्य। १२ खंड। शास्त्री और रंगाचार्य द्वारा सम्पादित। मैसूर १८९४-१८९८

९१-९९. सायण : तैत्तिरीय-संहिता-भाष्य। ९ खंड। पूना १९००-०५

१००-१०१. कीथ, ए० बी० : दि वेदाज ऑफ दि ब्लैक यजुष् स्कूल। तै० सं० का अँग्रेजी-अनुवाद। १९१४

१०२. तैत्तिरीय संहिता : सातवलेकर द्वारा सम्पादित। द्वितीय संस्करण, १९५७

(२) मैत्रायणी, काठक, कपिष्ठल-कठ संहिता

१०३-१०४. लियोपोल्ड भान श्रोयडर (संपादक) : मैत्रायणी संहिता। दो खंड १८८१-८६

१०५-१०६. ,, ,, (संपादक) : काठक संहिता। दो खंड १९००-१९११

१०७. रघुवीर (संपादक) : कपिष्ठल-कठ संहिता (दिल्ली), १९६८

(ङ) शुक्ल यजुर्वेद

१०८. अल्ब्रेख्ट वेबर (संपादक) : वाजसनेयी काण्व-संहिता। १८४९-१८५२

१०९. ,, ,, (संपादक) : वाजसनेयी माध्यन्दिन-संहिता, महीधर-भाष्ययुक्त।

११०. सत्यव्रत सामश्रमी : वाजसनेयी माध्यन्दिन-संहिता। महीधर-भाष्य-सहित (अध्याय १२, मंत्र ३७ तक)। बंगला-अनुवाद के साथ।

१११-११४. दयानन्द सरस्वती : यजुर्वेद-भाष्य। हिंदी-अनुवाद-सहित। ४ खंड

११५. ग्रिफिथ : शुक्ल यजुर्वेद-संहिता का अँग्रेजी-अनुवाद (और टिप्पणी), १८९९

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

११६. वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता : उवट और महीधर के भाष्य के साथ। पंसीकर द्वारा संपादित। बम्बई १९२९। दिल्ली, १९७१ (मोतीलाल)

११७. यजुर्वेद-संहिता : वैदिक प्रेस, अजमेर। षष्ठ आवृत्ति, १९४२

(च) अथर्ववेद

११८. रोथ और ह्वीटने (संपादक) : अथर्ववेद (शौनक शाखा)। १८५५-५६

११९. ह्वीटने : अथर्ववेद-इंडेक्स भर्वोरम् (शब्दसूची) :

१२०-१२१. ग्रिफिथ : हिम्स ऑफ दि अथर्ववेद (अथर्ववेद का अँग्रेजी-अनुवाद और संक्षिप्त भाष्य)। दो खंड, १८९४

१२२-१२५. पंडित, शंकर पांडुरंग (संपादक) : अथर्ववेद, सायणभाष्यानुवाद सहित। ४ खंड बम्बई, १८९५-९८

१२६. ब्लूमफील्ड, मौरिस : हिम्स ऑफ दि अथर्ववेद। सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट सीरीज में अथर्ववेद के कुछ मंत्रों का अनुवाद। १८९६

१२७. ,, ,, : अथर्ववेद और गोपथ ब्राह्मण। सूर्यकांत-कृत हिंदी-अनुवाद

१२८-१२९. ह्वीटने : अथर्ववेद संहिता : अनुवाद और संक्षिप्त भाष्य सहित। दो खंड, १९०५

१३०. अथर्ववेद संहिता (शौनक शाखा) : वैदिक प्रेस, अजमेर, १९२४

१३१-१३३. अथर्ववेद संहिता (पैप्पलाद शाखा) : ब्लूमफील्ड तथा गार्बे द्वारा तीन खंडों में संपादित।

१३४. अथर्ववेद (पैप्पलाद शाखा) : रघुवीर द्वारा संपादित।

१३५. शेंदे, एन० जे० : अथर्ववेद का धर्म और दर्शन (अँग्रेजी में) पूना, १९५२

१३६. करम्बेलकर, भी० डब्लू : अथर्ववेदीय सभ्यता। (अँग्रेजी में)। नागपुर, १९५९

(छ) वैदिक संहिताओं पर आलोचनात्मक और भाष्यात्मक ग्रंथ और निबंध

१३७. कोलब्रुक : 'वेद' पर निबंध। मिसलेनियस एसेज में पुनः मुद्रित।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१३८. रोथ, रुडोल्फ : वेद का साहित्य और इतिहास (जर्मन में)। १८४६

१३९-१४५. रोथ और बोयटलिङ्क : संस्कृत-जर्मन-कोश। ७ खंड। १८५२-१८७४

१४६. वेबर, अल्ब्रेख्ट : भारतीय साहित्य का इतिहास। प्रथम जर्मन-संस्करण, १८५२। द्वितीय जर्मन-संस्करण, १८७५। मूल जर्मन से अंग्रेजी-अनुवाद, १८७८

१४७. मैक्समूलर : प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास (अंग्रेजी) १८५९। द्वितीय संस्करण, १८६०

१४८. ,, ,, : धर्म के उद्भव और विकास पर व्याख्यान। अंग्रेजी। १८७८

१४९. ,, ,, : भारत हमें क्या सिखा सकता है? (अंग्रेजी) १८८२

१५०. ,, ,, : (i) नेचुरल रेलिजन। १८८९। द्वितीय संस्करण, १८९२

१५१. ,, ,, : (ii) फिजिकल रेलिजन। १८९१

१५२. ,, ,, : (iii) ऐंथ्रोपोलौजिकल रेलिजन। १८९२

१५३. ,, ,, : (iv) साइकोलौजिकल रेलिजन। १८९३

१५४. ,, ,, : दि सायंस ऑफ लैंग्वेज। दो खंड, १८९१

१५५. ,, ,, : कंट्रिब्यूशन्स टू दि सायंस ऑफ मिथौलोजी। २ खंड, १८९७

१५६. मैनिंग, श्रीमती : लायफ इन एंशियंट ऐंड मेडिभल इंडिया। द्वितीय संस्करण, १८६९

१५७. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-अंग्रेजी-कोश। प्रथम संस्करण, १८७३। द्वितीय संस्करण, १८९९

१५८. ,, ,, : इंडियन विजडम।

१५९. हिलेब्रांट, अल्फ्रेड : अदिति। ब्रेसलउ, १८७६

१६०. ,, ,, : वरुण। १८७७

१६१. ,, ,, : वरुण और मित्र। १८७७

१६२. ,, ,, : दर्शपौर्णमास यज्ञ। जीना, १८७९

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१६३. ,, ,, : वेद-क्रेस्टोमेथी (वेद-संग्रह, जर्मन में) बर्लिन, १८८५

१६४. ,, ,, : वेदिश्शे मिथोलोजी। प्रथम खंड (सोम) १८९१, द्वितीय खंड (उषा, अग्नि और रुद्र), १८९९। तृतीय खंड, १९०२। द्वितीय संस्करण, दो खंडों में

१६५. ,, ,, : रिचूयल लिटरेचर (जर्मन)। स्ट्रासवर्ग, १८९७

१६६. ,, ,, : आल्ट इन्डियेन। १८९९

१६७. ,, ,, : गेडांकेन आल्ट इंडिशेन फिलोजोफन, १९२१

१६८. ,, ,, : आल्ट इंडिशे पोलिटिक। १९२१

१६९. दयानन्द सरस्वती : सत्यार्थप्रकाश। प्रथम संस्करण १८७५ : द्वितीय संस्करण, १८८२-१८८४

१७०. ,, ,, : संस्कार-विधि। प्रथम संस्करण, १८७७। द्वितीय संस्करण, १८८४

१७१. ,, ,, : आर्याभिविनय।

१७२-१७४ बर्गेन, आवेल : वैदिक धर्म (फ्रेंच में) तीन खंड, १८७८-१८८३

१७५. जीमर, हायन्रिख : आल्ट इंडिशेश लेबेन। १८७९

१७६. बार्थ, ए० : दि रेलिजन्स ऑफ इंडिया। (फ्रेंच से अँग्रेजी-अनुवाद)। १८८१

१७७. गुरुदत्त विद्यार्थी : दि टर्मिनौलोजी ऑफ दि वेदाज। १८८८

१७८. हार्पकिन्स : दि रेलिजन्स ऑफ इंडिया। १८९५

१७९-१८१ पिशेल, रिचार्ड तथा गेल्डनर, कार्ल : वेदिश्शे स्टूडियेन। प्रथम खंड, १८८८। : द्वितीय खंड, १८९७। तृतीय खंड, १९०१

१८२. ओल्डेनबर्ग, हर्मान : दि रेलिजन देस वेद। १८९४

१८३. ,, : दि लिटरेचुर देस आल्टेन इंडियेन। १९०३

१८४. मैक्डोनेल, ए० ए० : संस्कृत-साहित्य का इतिहास। (अँग्रेजी)। १८९९

१८५. ,, ,, : दि वेदिक रीडर। १९१७

१८६. ,, ,, : वेदिक ग्रामर।

१८७. ,, ,, : वेदिक मिथोलोजी।

१८८-१८९. ,, और कीथ : वेदिक इंडेक्स। दो खंड, १९१२

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१९०. आर्नल्ड, ई० वर्नन : वेदिक मिटर। १९०५

१९१. ब्लूमफील्ड, मौरिस : वेदिक कन्कॉर्डेन्स। १९०६

१९२. ,, ,, : वेदिक भैरियंट्स

१९३. ,, ,, : "विदथ"। जर्नल ऑफ दि अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी, खंड १९, में लेख।

१९४. विंटरनीत्ज, मौरिस : ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर। १९०५-१९०७। प्रथम खंड का अँग्रेजी में जर्मन से अनुवाद, १९२६

१९५. अरविंद : ऑन दि वेद। आर्य में प्रकाशित १९१४-१९१६। प्रथम संस्करण, १९५६

१९६. रैप्सन (सम्पादक) : दि कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया। प्रथम खंड, १९२२

१९७. आर्बमैन, अर्नेष्ट : रुद्र। उपसला, १९२२

१९८. कीथ, ए० बी० : दि रेलिजन ऐंड फिलासफी ऑफ दि वेद एण्ड उपनिषद्स। २ खंड। १९२५

१९९. सरकार, सुविमलचन्द्र : प्राचीनतम भारत का सामाजिक इतिहास। (अँग्रेजी में)। १९२८

२००. ,, ,, : प्राचीन भारत के शिक्षात्मक विचार और संस्थाएँ (अँग्रेजी में)। १९२८

२०१. शर्मा, रघुनन्दन : वैदिक संपत्ति। १९३०

२०२. प्रियरत्न आर्ष : वेद में इतिहास नहीं। १९३५

२०३. श्रद्धानन्द, स्वामी : धर्मोपदेश। प्रथम खंड

२०४. नारायण स्वामी : वेद-रहस्य

२०५-२०७. अभयदेव : वैदिक विनय। ३ खंड

२०८. ,, : ब्राह्मण की गौ।

२०९. युधिष्ठिर मीमांसक : वैदिक छन्दोमीमांसा

२१०. बेन्फे, थि० : संस्कृतकोश

२११. डेल्ब्रुक : वेदिक सिन्टैक्स

२१२. रैगोजिव, जेनायदे : वेदिक इंडिया

२१३. कुमारस्वामी, आनन्द : ए न्यू एप्रोच टू दि वेदाज

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२१३. ह्वीलर, जे० टी० : भारत—वैदिक और उत्तर-वैदिक । (अँग्रेजी में)

२१४. वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद : भारतीय दर्शन । आगरा, १९६७

२१५, ,, ,, : हिंदू पोलिटिकल थॉट । प्रथम संस्करण १९५४ । द्वितीय, १९५९

२१६. ,, ,, : अर्ली बुद्धिज्म एंड इट्स ओरिजिन्स, १९७३

२१७. ,, ,, : राजनीति और दर्शन । १९५६

२१८. ,, ,, : फिलासफी ऑफ एजुकेशन । १९६४

२१९. ,, ,, : विश्वराजनीति । पर्यवेक्षण । १९६०

२२०. ,, ,, : पोलिटिकल फिलासफी । १९७०

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भारत सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से प्रकाशित

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के

विविध विज्ञान-विषयक उत्कृष्ट प्रकाशन

गृह-विज्ञान

१. गृह-प्रबंध — प्रो० श्रीमता कांति पांडेय
छात्र सं० १८·००
पुस्त० सं० २२·००

२ वस्त्रविज्ञान एवं परिधान
प्रो० (श्रीमती) कांति पांडेय और
प्रो० (श्रीमती) प्रमिला वर्मा २६·००

३. शरीर-क्रिया-विज्ञान
प्रो० (श्रीमती) कांति पांडेय और
प्रो० (श्रीमती) प्रमिला वर्मा ४४·००

मनोविज्ञान

१. आपराधिकी — श्री बदरी नारायण सिन्हा १९·००

२. औद्योगिक मनोविज्ञान :
सिद्धांत और समीक्षा : श्री दिनेशचन्द्र कोचर २४·५०

३. बालकल्याण की रूपरेखा
डॉ० धर्मपाल चौधरी १९.५०

४. मनोविज्ञानकी रूपरेखा
डॉ० कृष्णकुमार जमुआर ८·००

५ मनोविज्ञान : सी. टी. मार्गन ३४·५०

६. शिक्षा मनोविज्ञान डॉ० कृष्णकुमार जमुआर
छात्र संस्करण ८·२५
पुस्त० संस्करण १०·७५

नृ-विज्ञान

७. उत्तर भारत का एक सांस्कृति नगर : गया
डॉ० ललिता प्रसाद विद्यार्थी ७·७५

८. सामाजिक नृ-विज्ञान की भूमिका : लूसी मेयर १०·००

९, बँधी व्यवस्थाएँ और खुले मन: मैक्स ग्लक मैन १५·००

पुस्तकालयविज्ञान

१०. पुस्तकालय-संगठन एवं प्रशासन
डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह छात्र सं० ११·००
पुस्त० सं० १५·००

११. पुस्तकालय एवं समुदाय : डॉ० श्रीनाथ सहाय १५·००

निदेशक,

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

सम्मेलन भवन, कदमकुआँ,

पटना–३

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal